# निवेदन ।

"भारतीय सहकारिता आन्दोलन" पर यह पुस्तक लेकर पाठकों के सामने उपस्थित होते हुए हृदय को अत्यन्त हर्ष हो रहा है। सम्भवतः मैं इस विषय पर पुस्तक लिखने का प्रयास भी न करता यदि श्रीयुत भगवानदासजी केला मुझे पुस्तक लिखने पर वाधित न कर देते। श्री केलाजी साहित्यिक तपस्वी हैं, भारतीय ग्रन्थमाला के द्वारा अर्थशास्त्र तथा राजनीति साहित्य उत्पन्न करके उन्होंने हिन्दी की महान सेवा की है। कोई भी उनके सम्पर्क में आकर मातृ भाषा को पुष्पांजलि चढ़ाये बिना नहीं रह सकता। यही मेरे साथ हुआ, 'केलाजी को हिन्दी में 'सहकारिता' पर एक भी पुस्तक का न होना खटक रहा था। स्वयं अन्य पुस्तकों के लिखने में व्यस्त होने के कारण उन्होंने मुझे पकड़ा। इस विषय में रुचि होने के कारण मैंने पुस्तक लिखने का वचन दे दिया।

एक वर्ष परिश्रम करके गत वर्ष पुस्तक तैयार करली थी किन्तु मेरे यहां चोरी होगई और हस्त लिखित पुस्तक भी हाथ से निकल गई। वचन बध्य हो चुका था, अस्तु, फिर एक वर्ष परिश्रम करके पुस्तक लिखी।

सहकारिता आन्दोलन के बिना भारतवर्ष के ग्रामों का उद्धार नहीं हो सकता। आयरलैंड, डैनमार्क, जर्मनी, तथा इटली में तो इस आन्दोलन की बदौलत किसानों की काया पलट होगई। भारतवर्ष में जहां किसानों के जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित है,

बिना इस आन्दोलन के गति ही नहीं है। अंग्रेजी में इस विष
पर हजारो सुन्दर ग्रन्थो की रचना हो चुकी है, किन्तु
से अंग्रेजी न पढ़े हुए देश वासी कोई लाभ नहीं उठ
हिन्दी भाषा भाषी इस आन्दोलन की अद्भुत राष्ट्र निर्म
शक्ति को जान सके, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई

अन्त मे मै संयुक्त प्रन्तीय सहकारिता विभाग के र
श्री विष्णु सहायजी आई. सी. एस. के प्रति हार्दिक कृ
प्रकट करना चाहता हूँ। उन्होने समय निकाल कर सारी पु
को पढ़ा और इस विषय के अपने अनुभव का मुझे पूरा
दिया है। उनके सौजन्य तथा सहानुभूति का मूल्य मै धन्यव
देकर आकने की धृष्टता नहीं करूँगा।

मुझे आशा है कि भारतीय निर्धन जनता और विशेषतः
ग्राम निवासियो से सम्बन्ध रखने वाले सरकारी विभाग तथा ग़ैर-
सरकारी संस्थाएं इस पुस्तक का यथेष्ट स्वागत करेंगी।

# सहायक पुस्तकें ।


Co-operation in many lands *by* L. S. Smith Gordon. and C. O'Brien. Vols. I and II.

Co-operation in Bombay *Edited by* Prof. H. L. Kaji

Co-operation in India *by* Henry W. Walff.

Peoples Bank ,, ,,

Co-operative Banking ,, ,,

Co-operative movement in India *by* Dr Eleanor M. Hough Ph D.

Rusticus Loquitur *by* M. L. Darling

Co-operative Movement in India *by* P Mukherji M A.

9. Co-operation in India and Abroad *by* Talmaki.
10. Rural Reconstruction in Ireland *by* Linel Smith Gordon
11. Reconstruction and Education in Rural India *by* Dr. Prem Chand Lal Ph D.
12. Up From Poverty *by* Dr. D. Spencer Hatch
13. Remaking of an Indian Village *by* F. L Brayne.
14. Agricultural Co-operation in India *by* John Matthai D. Sc.
15. Indian Year Book 1934.
16. Co-operation in India *by* H. L. Kajl
17. Co-operation in Agriculture *by* H. W. Walff.
18. Co-operative Movement in Indi a *by* J. L. Raina.
19. Report of the Central Banking Enquiry Committee.
20. Report of the Royal Agriculture Commission.

21. Report of the U P Banking Enquiry Committee
22. Report of the Maclagan Committee on Co-operation
23. Report of the Co-operative Committee of U P
24 Annual Reports of the working of Co-operati Departments in Different Provinces.
26 Reports of the Banking Enquiry Committees of t Different Provinces.
26 Review of Rural Welfare Activities in India *by* C Stickland C I. E.
27 The Law and Principles of Co-operation *by* Calvert
28 Co-operation in Germany and Italy *by* M L. Darli
29 Introduction to Co-operation in India *by* C. F Stickla
30 Studies in European Co-operation, Vols. I and *by* C F Stickland
३१. अर्थशास्त्र शब्दावली—भारतीय ग्रन्थमला, वृन्दावन।

# विषय सूची

---

# भारतीय सहकारिता आन्दोलन

## प्रथम परिच्छेद

### सहकारिता के सिद्धान्त

समाज में रह कर मनुष्य बिना एक दूसरे के साथ सहयोग किये, एक दिन भी अपना काम नहीं चला सकता। सभ्यता के प्रारम्भिक काल से भी मनुष्य-समाज सहकारिता के सिद्धान्तों को समझती थी और व्यवहारिक जीवन में उसका उपयोग भी करती थी। यदि मनुष्य समाज सहकारिता को न अपनाती तो मनुष्य-जाति आज इतनी उन्नत तथा सभ्य कदापि न होती। आज से हजारों वर्ष पहले ही अनुभव से यह ज्ञात होगया था कि मनुष्य-जीवन, बिना एक दूसरे के साथ सहयोग किये, असम्भव हो जायगा।

आज कल प्रतिस्पर्धा का युग है; साधारणतया यह समझा जाता है कि जो प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकता उनके लिये संसार में कोई स्थान नहीं है. इस कारण लोगों की यह धारणा बन गई है कि मनुष्य जीवन का मूल मन्त्र प्रतिस्पर्धा है; किन्तु देखने से ज्ञात होता है कि मनुष्य जीवन का मूल मन्त्र सहकारिता है, न कि प्रतिस्पर्धा। यदि देखा जावे तो मनुष्य एक दूसरे पर अपनी साधारण आवश्यकताओं के लिये इतना निर्भर है कि

यदि एक दिन के लिये भी उसको दूसरो का सहयोग न मिले तो उसका जीवन ही कण्टकमय हो जावे।

समाज मे प्रत्येक मनुष्य की कार्य-शक्ति एकसी नहीं है। अस्तु, सहकारिता तथा श्रम-विभाग (Division of labour) के बिना मनुष्य समाज मे रह कर अपनी आवश्यकताये पूरी नहीं कर सकता। मनुष्य-समाज की उन्नति तथा सभ्यता के विकास के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि पूर्ण, श्रम-विभाग का सिद्धान्त काम मे लाया जावे। यदि अधिक क्षमता वाले मनुष्य ऐसे साधारण कार्यों मे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करे, जिनको साधारण क्षमता वाले मनुष्य भी कर सकते है, तो समाज तथा मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति मे भारी बाधा पड़ेगी। मनुष्य-जाति तभी उन्नति कर सकती है, जब मनुष्य को अपनी कार्य-शक्ति के अनुसार किसी एक कार्य मे विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर दिया जावे। उदाहरण के लिये, किसी भी वस्तु के तैयार कराने मे हमे सैकड़ो मनुष्यो का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। मध्य प्रान्त अथवा बम्बई प्रान्त का किसान कपास उत्पन्न करता है। कपास उत्पन्न करने मे उसे स्वयं बहुत से मनुष्यो का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। महाजन, जमींदार, बढ़ई, लुहार, तथा मजदूर सभी उसे कपास उत्पन्न करने मे सहायता देते है। दलाल, आढ़तिया, तथा व्यापारी उस कपास को मोल लेकर अथवा व्यवसायियो के लिये खरीद कर जिनिंग फैक्टरी मे ले जाते है। जिनिंग फैक्टरियो मे सैकड़ो

मज़दूरो के द्वारा कपास ओटी जाती है, और गांठो मे बांध कर अहमदाबाद, बम्बई, अथवा जापान के औद्योगिक केन्द्रो को भेज दी जाती है। इस कार्य मे भी बैलगाड़ी, मोटर, रेल, और जहाज़ों पर कार्य करने वाले, तथा व्यापारियो का सहयोग होता है। इसके उपरान्त कारख़ानो मे हज़ारो मज़दूरों, स्त्रियो, तथा अन्य कार्य-कर्ताओ की सहायता से कपड़ा तैयार किया जाता है। अन्त मे वह कपड़ा रेलो, जहाज़ो, तथा बैलगाड़ियो और मोटरो के द्वारा दूकानदारो के पास आता है। ग्राहक उसको ख़रीद कर दर्ज़ी से कोट, कमीज इत्यादि बनवाता है, तब कहीं वह वस्त्र पहिन सकता है। जब तक इतने लोग एक दूसरे के साथ सहयोग नहीं करेंगे, वस्त्र तैयार नहीं हो सकते। इसी प्रकार, किसान गांवो मे रह कर गेहूँ तथा अन्य अनाज उत्पन्न करता है, और नगरो मे निवास करने वाले अध्यापक, क्लर्क, डाक्टर, वकील तथा दूसरे लोग उस गेहूँ को खाते हैं। गेहूँ उत्पन्न करने मे तथा उसे शहरो तक लाने मे सैकड़ो मनुष्यो की सहायता की आवश्यकता होती है। कोई भी काम क्यो न ले लिया जावे, बिना सहयोग के वह सरलता पूर्वक नहीं हो सकता। आज हम लोगो का जीवन एक दूसरे के सहयोग पर इतना अधिक निर्भर है कि यदि सहकारिता के सिद्धान्त को त्याग दिया जावे तो यह ध्यान मे भी नहीं आ सकता कि संसार का कार्य कैसे चल सकेगा। मनुष्य की शक्ति सहकारिता मे छिपी हुई है, और सहकारिता के द्वारा ही उसकी उन्नति हो सकती है।

मनुष्य जाति अब सहकारिता के सिद्धान्त को भली भांति समझ गई है, और इसको मनुष्य-जीवन के लिये आवश्यक समझती है। समाज मे निर्बल और सबल, बुद्धिमान और मन्द-बुद्धि, साहसी और कायर, चतुर और मूर्ख, शीघ्र कार्य करने वाले तथा आलसी—सभी प्रकार के मनुष्य है, यदि समाज को उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो इन सब को एक साथ कार्य करना होगा। यदि समाज प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त को अपनाले तो समाज की उन्नति अवश्य ही रुक जावेगी। कुछ लोगो का कहना है कि मनुष्य जीवन एक भयंकर संग्राम है और इस संग्राम मे वही जीवित रहकर सफल हो सकता है, जो संग्रास मे ठहर सके। जो निर्वल है—जो जीवन-संग्रास मे ठहर नही सकते, उनके लिये यहां कोई स्थान नही है। उनका कहना है कि यदि इस संग्रास मे सबलो को निर्बलो की सहायता के लिये जाना पड़ा तो उनकी व्यक्तिगत उन्नति मे वाधा पड़ेगी; व्यक्तिगत उन्नति तथा यशोपार्जन के लिये सहकारिता नही, प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता है, सहकारिता इसके लिए घातक सिद्ध होगी। सहकारितावादी शक्तातिजीवन (Survival of the fittest) के सिद्धान्त को स्वीकार नही करते। यह सिद्धान्त मनुष्य को समाज के ऊपर विठा देता है,व्यक्तिगत इच्छाओ की पूर्ति के लिये सामूहिक स्वार्थ को ठुकराकर अपने पथ पर अग्रसर होना ही इस सिद्धान्त के मानने वालो का उद्देश्य होता है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत लाभ के लिए सामूहिक लाभ को नष्ट करने की शिक्षा

देता है और समाज मे घोर असमानता उत्पन्न करता है । आधुनिक युग मे पूँजीपतियो और श्रमजीवियो मे जो भयंकर संग्राम छिड़ा हुआ है, "पूँजी पतियो को नष्ट करदो" की जो आवाज़ चारो ओर से सुनाई देरही है, वह इस सिद्धान्त के द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक असमानता के कारण ही उठाई गई है ।

समाज अपने निर्बल सदस्यो को ठीक उसी प्रकार नष्ट होते नही देख सकती, जिस प्रकार माता पिता अपने लंगड़े अथवा लूले पुत्र को मरते नही देख सकते । समाज का मूल मन्त्र शक्तातिजीवन न होकर "निर्बलो की रक्षा" होना चाहिये । यदि हम चाहते है कि समाज मे उत्पन्न हुई घोर आर्थिक विपमता के कारण, हमे भयंकर क्रांतियो का सामना न करना पड़े तो हमे सहकारिता को अपनाना होगा । सहकारिता निर्बलो की रक्षा करती है, वह उनको निर्बल नही रहने देती, वरन् उनको संगठित करके शक्तिवान बनाने का प्रयत्न करती है । सहकारिता आन्दोलन उन लोगो की उन्नति मे बाधक नही होता जो कि शक्तिवान है और प्रतिस्पर्धा मे अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो सकते है, सहकारिता का ऐसे लोगो से कोई सम्बन्ध नही है । वह तो केवल निर्धन तथा निर्बलो का आन्दोलन है; पारस्परिक सहायता और सहानुभूति इसके मुख्य सिद्धान्त है, और सेवा इसका लक्ष्य है ।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि मनुष्य का कोई भी कार्य विना दूसरो के सहयोग के नही हो सकता, किन्तु आधुनिक

औद्योगिक संगठन मे धन-वितरण की प्रणाली इतनी दूषित है कि जो लोग उत्पादन कार्य मे सहयोग देते है, उन्हे उचित हिस्सा नही मिलता, अर्थात् कुछ लोग तो उचित से अधिक पा जाते हैं, और अधिक संख्या वालो को,जो कि निर्बल है. अपना हिस्सा भी नही मिलता। मिल मे काम करने वाला मजदूर जो मिल को सफलता-पूर्वक चलाने के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि पूँजीपति अथवा मिल-मैनेजर, बहुत थोड़ी मजदूरी पाता है; तथा मैनेजर और पूँजीपति अनुचित रूप से सम्पत्ति का अधिक भाग हड़प कर जाते है, । किसान गेहूँ उत्पन्न करता है, दलाल, थोक व्यापारी, तथा दूकानदार साधारण गृहस्थ को गेहूँ पहुँचाने मे सहयोग करते है, किन्तु गेहूँ का जो मूल्य ग्राहक देता है उसका बहुत थोड़ा अंश किसान को मिलता है,और दलाल, थोक व्यापारी, तथा दूकानदार उसका अधिक अंश खा जाते है। किसान को खेत की पैदावार का इतना कम मूल्य मिलता है कि खेती का खर्चा निकालने पर उसके लिये बहुत कम बचता है; यह उसके परिश्रम को देखते हुये कुछ भी नही होता । रेलवे लाइन को डालने का बड़े बड़े ठेकेदार ठेका लेते है,हजारो मजदूरो तथा कारीगरो को रख कर वे काम करते है, काम करने वाले मजदूरो और कारीगरो को बहुत थोड़ी मजदूरी देकर ठेकेदार सारा लाभ डकार जाता है। सहकारिता धन-वितरण की अन्याय-पूर्ण प्रणाली को स्वीकार नही करती और इसको नष्ट कर देना चाहती है। सहकारिता आन्दोलन वर्तमान दूषित प्रणाली का

विरोध करता है और प्रत्येक मनष्य को, जिसने सम्पत्ति के उत्पादन कार्य मे सहयोग दिया है, उसके परिश्रम के अनुपात में सम्पत्ति देने का समर्थन करता है।

सम्पत्ति का उत्पादन केवल पूँजी के ही द्वारा नही होता, श्रम की भी आवश्यकता होती है। पूँजीपति को अपनी पूँजी पर सूद तो मिलना ही चाहिये; साथ ही वह जोखिम भी उठाता है, उसके लिये भी उसे कुछ लाभ मिलना चाहिये। बेचारे मजदूर को तो पूरी मज़दूरी भी पूँजीपति नही देते; अस्तु, यह सब तथा अन्य खर्चे निकाल कर भी कुछ अतिरिक्त लाभ बचता है। प्रश्न होता है कि यह अतिरिक्त लाभ किसको दिया जावे ? आधुनिक औद्योगिक संगठन मे तो यह सारा का सारा पूँजीपतियो को मिलता है। श्रमजीवी समुदाय इस कारण क्षुब्ध हो उठा है। जब मज़दूर लोग देखते हैं कि उन्हे कठिन परिश्रम करने पर भी भर-पेट भोजन नही मिलता, और पूँजीपति अनन्त धन-राशि प्रति वर्ष हड़प जाते हैं तो स्वभावतः वे लोग असन्तुष्ट हो जाते है। क्रमशः औद्योगिक देशों मे श्रमजीवी समुदाय आज सङ्गठित हो गया है और इस अत्याचार को सहन नहीं करना चाहता। ट्रेड यूनियन आन्दोलन इसी प्रयत्न का फल है। साम्यवाद तो पूँजीपतियो के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना चाहता है। श्रमजीवी आन्दोलन तथा साम्यवाद लाभ को केवल मजदूरो के ही लिए सुरक्षित रखना चाहते है। सहकारिता अतिरिक्त लाभ का न्यायपूर्ण विभाजन करना चाहता है और

मजदूर रखे जाते हैं और लाभ हिस्सेदारों मे पूँजी के अनुपात में बांट दिया जाता है। सहकारी समितियो मे पूँजी को अधिक महत्व नही दिया जाता। उसको सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिये एक साधन मात्र समझा जाता है। यही कारण है कि समिति के प्रत्येक सदस्य को केवल एक 'वोट' मिलती है, उसको समिति के कार्य सञ्चालन मे उतना ही अधिकार होता है जितना कि किसी दूसरे सदस्य को, परन्तु मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियो मे पूँजी का ही सर्वोच्च स्थान होता है, धन्धे का लाभ तथा कार्य-सञ्चालन-अधिकार हिस्सेदारो मे पूँजी के अनुपात मे दिया जाता है।

इन दोनो मे एक भेद और भी है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियो की सफलता, अन्य कम्पनियो की प्रतिद्वन्दता मे सफलता पूर्वक खड़े रहने पर निर्भर है। प्रत्येक कपनी का अपना एक व्यक्तित्व होता है, और प्रत्येक कंपनी दूसरी कंपनियो को कुचल कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है। सहकारिता आन्दोलन इस व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को नही मानता। सहकारी समितियां एक दूसरे की प्रतिद्वन्दता मे नही खड़ी होती। वे मिल कर एक संघ ( Federation ) की स्थापना करती है, और उसकी संरक्षणता मे कार्य करती है। यह संघ सहकारी समितियो को एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा नही करने देता। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रतिस्पर्धा बिलकुल नष्ट नहीं हो गई है—और यहां तक सहकारिता आन्दोलन को अपने ध्येय मे ... ही समझना चाहिये—किन्तु इससे यह न समझना

चाहिये कि यह सिद्धान्त ही ग़लत है। कारण यह है कि समाज का संगठन ही दूषित है, और जब तक सहकारिता के सिद्धान्तो के अनुसार समाज का संगठन नहीं हो जाता, तब तक प्रतिस्पर्धा जड़ से नष्ट नहीं हो सकती। यदि उपभोक्ता भी अपने को सहकारी समितियो मे संगठित करलें, और फिर संगठित उत्पादक सहकारी समितियो से अपनी आवश्यक वस्तुओ को खरीदे तो प्रतिस्पर्धा को नष्ट किया जा सकता है। सहकारिता आन्दोलन का यही लक्ष्य है। अस्तु, सहकारिता तथा अन्य प्रणालियो मे यही मुख्य भेद है कि एक प्रतिस्पर्धा का समूल नाश करना चाहती है, दूसरी प्रतिस्पर्धा को स्वीकार करती है। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि अभी तक यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से कार्य मे परिणित नहीं हो सका है।

सहकारिता आन्दोलन केवल सम्पत्ति को उत्पन्न करने वालो की ही रक्षा नही करता, वह सब वर्गों को सहायता पहुँचाता है। आधुनिक औद्योगिक संगठन मे उपभोक्ता का वस्तुओ के मूल्य निर्धारण मे कोई हाथ नही होता, और न धन्धो के संचालन मे ही उसकी आवाज सुनी जाती है। उत्पत्ति करने वालो तथा उपभोक्ताओ के बीच में अगणित दलाल काम करते हैं, जो उपभोक्ता तथा उत्पत्ति करने वालो को लूटते हैं। उपभोक्ता वस्तु का जो मूल्य देता है उसका बहुत थोड़ा अंश उत्पत्ति करने वाले को मिलता है, अधिक अंश तो दलालो की जेब मे जाता है। सहकारिता आन्दोलन जहां यह प्रयत्न करता है कि उत्पत्ति करने

वालो को अधिक से अधिक लाभ हो, वहां उसका यह भी प्रयत्न होता है कि उपभोक्ताओ को सस्ते दामो पर वस्तुएं मिले, जिससे कि उनका बोझ हलका हो। यदि देखा जावे तो लाभ उपभोक्ताओं से मिलता है, यदि उपभोक्ता तैयार माल को न ले तो केवल उत्पत्ति से लाभ नही मिल सकता। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन केवल श्रमजीवी तथा पूँजीपति को ही लाभ का अधिकारी नही मानता, वरन् उपभोक्ताओ को भी लाभ के कुछ अंश का हक़दार समझता है। सहकारिता के सिद्धान्तानुसार, समाज मे केवल दो वर्ग होने चाहिये, उत्पादन-कर्ता और उपभोक्ता। किन्तु इस पूँजीवाद के युग मे उपभोक्ता तथा उत्पादन-कर्ता के बीच मे अगणित दलाल है, जो दोनो वर्गों को लूट रहे है। सहकारिता दलालो के द्वारा इन दोनो वर्गों के शोपण का घोर प्रतिवाद करती है और दोनो वर्गों को संगठित करके इतना समीप लाना चाहती है कि फिर दलालो की आवश्यकता ही न पड़े। दलालो को अपने स्थान से हटा देना सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य है।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि धन्धो का नियन्त्रण किस वर्ग के हाथ मे होना चाहिये। धन्धो का संचालन उपभोक्ता करें, अथवा उत्पादन-कर्ता। इस विषय मे सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालो के दो मत है। एक मत के लोग कहते हैं उपभोक्ता वर्ग को धन्धो का संचालन करना चाहिये, दूसरे मत के लोग यह अधिकार उत्पादन-कर्ता वर्ग को देना चाहते हैं। सह-

कारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालो का बहुमत इस पक्ष में है कि खेती-बारी को छोड़कर अन्य धन्धो के संचालन का अधिकार उपभोक्ता को होना चाहिये, और इन धन्धो मे काम करने वालो की स्थिति मज़दूरी पाने वालो से अच्छी नही होगी। जहां जहां उपभोक्ता सहकारी समितियो का संगठन हुआ है और उनके सम्मिलित संघ ने स्वयं आवश्यक वस्तुओ को तैयार करने के लिये मिल और कारखाने खोले है, उनमे काम करने वाले मज-दूरो को उस कारखाने के संचालन मे कोई अधिकार नही है। यद्यपि इन कारखानो मे मजदूरो की स्थिति साधारणतः कारखानो से बहुत अच्छी होती है, किन्तु उनका कोई अधिकार नही होता। हां, यदि वे भी उन उपभोक्ता समितियो के सदस्य होते है, जिनके सम्मिलित संघ ने उस कारखाने को चलाया है, तो वे उस रूप मे उस कारखाने की व्यवस्था मे भाग लेते है। मजदूरो को व्यवस्था मे भाग न लेने देने का कारण यह भी है कि उससे व्यवस्था के शिथिल होजाने का भय रहता है। जिन समितियो मे उत्पादन कर्ता ही सदस्य होते है और वे ही मजदूर होते हैं, वहां व्यवस्था उन्ही के हाथ मे रहती है। किन्तु कहीं कहीं ऐसा देखने मे आता है कि ऐसी समितियो मे भी, उन सहकारी साख समितियों अथवा सह-कारी उपभोक्ता समितियों का व्यवस्था मे अधिक अधिकार रहता है जो उत्पादक समितियों को पूँजी देती है। ऐसी दशा में उत्पादक समिति के सदस्य अर्थात् मजदूरो का व्यवस्था में नाम-मात्र को अधिकार होता है। जहा तक सहकारिता आन्दोलन

उत्पत्ति करने वालो को उस धंधे की व्यवस्था का अधिकार नही दिला सका है, वहां तक उसको अपने लक्ष्य मे असफल ही समझना चाहिये।

यद्यपि सहकारिता आन्दोलन विशेषकर आर्थिक आन्दोलन है, किंतु इसकी नीव ऊँचे आदर्श पर जमाई गई है। यह आन्दोलन समाज मे एक नवीन भावना को जागृत करता है। स्वावलम्बन तथा भ्रातृ-भाव ही वह भावना है, जिसके बल पर यह आन्दोलन खड़ा किया गया है। सहकारिता आन्दोलन समाज मे किसी एक वर्ग का अत्याचार सहन नही करता, वह तो समाज के सदस्यो मे आत्म-निर्भरता तथा भाईचारे का भाव उत्पन्न करता है। सब मिलकर एक उद्देश्य के लिये प्रयत्न करे, यही सहकारिता का अर्थ है। व्यक्तिवाद को हटाकर सहकारिता आन्दोलन सामूहिक स्वार्थ को प्रधानता देता है। पूँजीवाद के युग मे व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रधान्य है, किन्तु सहकारिता समूह को व्यक्ति के ऊपर रखता है।

पूँजीवाद के युग मे आर्थिक असमानता तथा अन्य दोषो के कारण समाज घबरा उठी है। कोई कोई तो पूँजीवाद को समूल नाश कर देना चाहते है। साम्यवाद इसी असमानता को नष्ट करने का एक प्रयोग है। किंतु सहकारिता आन्दोलन साम्यवाद के सिद्धान्तो को स्वीकार नही करता। जो लोग संसार के देशो को साम्यवादी होने से बचाना चाहते हैं उन्हे सहकारिता आन्दोलन की शरण मे आना चाहिए। बीसवी शताब्दी मे सहकारिता आन्दोलन ने यथेष्ट उन्नति की है, और आशा है भविष्य मे इसका

अधिकाधिक उपयोग समाज के निर्बल सदस्यो की आर्थिक स्थिति के सुधारने मे किया जावेगा।

भारतवर्ष के लिये सहकारिता का सिद्धान्त नया नहीं है। अत्यन्त प्राचीन काल से सहकारिता का हमारी भारतीय समाज उपयोग करती आ रही है। यद्यपि वर्तमान रूप मे सहकारी समितियां इस देश के लिये नई वस्तु है, किन्तु सिद्धान्त रूप से तो सहकारिता हिन्दू समाज के जोवन मे ओत-प्रोत है। सम्मिलित कुटुम्ब,जो कि हिदुओ की एक अत्यन्त प्राचीन सामाजिक संस्था है, सहकारी संस्था नही तो क्या है? आज भी बहुत से कार्य गावो मे किसान लोग सामूहिक रूप मे करते है। संयुक्तप्रांत के ईख उत्पन्न करने वाले किसानो मे यह बात बहुत से गांवो मे प्रचलित है कि वे एक या दो कोल्हू मिलकर मोल ले लेते हैं अथवा किराये पर ले आते हैं तथा बारी बारी से अपनी ईख पेर लेते हैं। अपने अर्थशास्त्र मे बहुत बार सामूहिक रूप से कार्य करने के लिये आदेश करते हुए,आचार्य कौटिल्य ने सहकारिता का महत्व बतलाया है। प्राचीन काल मे कारीगरो के संघ भारतवर्ष मे बहुत थे जिनका विवरण वेदो तथा मनुस्मृति मे मिलता है। 'रस्टिकस लोकिटर' नामक पुस्तक मे लिखते हुए, श्री० एस. एल. डार्लिंग ने पञ्जाब के गांवों के विषय में जो विवरण दिया है,उससे ज्ञात होता है कि वहां के गांवो मे आज भी सामूहिक रूप से बहुत सा कार्य होता है। किसी किसी गांव मे दो से दस तक किसान सम्मिलित होकर एक वर्ष के लिये भूमि जोतते हैं। फसल के कटने

पर पैदावार को,प्रत्येक किसान द्वारा खेत पर किये गये काम तथा उसके बैलो के उपयोग के अनुपात से, बांट दिया जाता है। यह वार्षिक साझेदारी कभी कभी कई वर्षों तक चलती है। बहुत से गांवो मे जब फसल पकने पर होती है तो एक रखवारा सब खेतो की देख भाल के लिये रख दिया जाता है। फसल काटने तथा बोने के समय भी पड़ौसी एक दूसरे की सहायता करते है। प्रत्येक घर के मनुष्य गाव के कुओ की मरम्मत के लिये बारी बारी से काम करते है। कही कही सड़क भी गांव के लोग मिल कर बनाते है। मदरास प्रान्त मे सहकारिता आन्दोलन के श्रीगणेश के पूर्व वहां ' निधि ' स्थापित हो चुकी थी। निधियां एक प्रकार की अर्ध-सहकारी संस्था होती है।

लेखक को बहुत बार राजस्थान में यात्रा करने का अवसर मिला है और उसको यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि राजस्थान के बहुत से गांवो मे शुद्ध सहकारिता का उपयोग ग्रामीण समाज करती है। राजस्थान के दक्षिण मे मेवाड़ का प्रसिद्ध राजपूत राज्य है जिसकी राजधानी उदयपुर है। उदयपुर से लगभग ३० मील की दूरी पर मैनार नामक एक गांव है। बहुत समय हुआ जब कि उदयपुर के महाराणाओ ने यह गांव कुछ ब्राह्मणो को दान कर दिया था। आज भी वह गांव उन्ही ब्राह्मणो की संतानो के अधिकार मे है। दो हजार की आबादी वाले इस गांव मे अधिकतर ब्राह्मण लोगो की बस्ती है। कुछ निम्न जाति के लोग पंचायत ने बसा लिये है जो कि गांव की सेवा करते हैं। गांव की एक

पञ्चायत है जो कि यहां का शासन करती है। गांव के बीच में एक शिवालय है जो कि पञ्चायत का न्यायालय है। प्रति दिन पञ्च लोग वहीं बैठ कर गांव की समस्याओं पर विचार करते है और मुक़दमो को निपटाते है। मन्दिर मे एक पुजारी रहता है जिसको पञ्चायत थोड़ी सी भूमि दे देती है। घर पीछे पञ्चायत छटांक भर घी, सवा सेर तेल, पावभर रुई प्रति वर्ष मन्दिर के खर्चे के लिये लेती है। मेवाड़ मे सिंचाई के लिये तालाबों का उपयोग अधिक होता है। मैनार मे भी एक विशाल जलाशय है, जिसका क्षेत्रफल लगभग तीन वर्ग मील होगा। प्रति वर्ष, वर्षा के पूर्व पंचायत उसके बांध की मरम्मत करवाती है। यह मरम्मत गांव वाले स्वयं कर लेते है। नियम यह है कि गांव का प्रत्येक पुरुष स्त्री, तथा लड़का एक घन फुट मिट्टी खोद कर बांध पर डाले। गांव की लड़कियों से यह कार्य नहीं लिया जाता, क्योंकि हिन्दुओं में लड़की को पूज्य समझा जाता है। पञ्च लोग खुदी हुई भूमि को नाप लेते हैं।

बारी बारी से एक दिन कुए पर अपने बैल और चरस लेकर उपस्थित रहता है और जब गांव के पशुओं को जल की आवश्यकता हो तो उन्हे जल पिलाता है। भारतवर्ष मे ऐसे बहुत से प्रांत है जहां के ग्रामीण जीवन मे हमे शुद्ध सहकारिता का स्वरूप देखने को मिलता है। किन्तु,जहां जहां पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अधिक पड़ गया है, वहां व्यक्तिवाद के कारण सामूहिक जीवन नष्ट हो गया है।

भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश मे जहां कि कृषि ही मनुष्यो की जीविका का प्रधान साधन है, सहकारिता आन्दोलन कितना आवश्यक है, यह आगे के परिच्छेदो मे स्पष्ट हो जावेगा। यदि पुरानी संस्थाओ को पुनर्जीवित किया जावे और आधुनिक सहकारी संस्थाओ का उन्हे रूप देदिया जावे तो देश मे ग्राम-सुधार का कार्य सफलता पूर्वक हो सकता है।

# द्वितीय परिच्छेद

## भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितियां

पिछले परिच्छेद मे सहकारिता के सिद्धान्तो की चर्चा कीगई है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता आन्दोलन का उपयोग प्रत्येक आर्थिक समस्या के हल करने मे किया जासकता है। वास्तव मे सहकारिता आन्दोलन का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि किसी भी देश मे सब प्रकार की सहकारी समितियो की एक-सी उन्नति दिखाई नहीं देती। यदि इंगलैंड मे उपभोक्ता-सहकारी-स्टोर्स को आश्चर्यजनक सफलता मिली है, जर्मनी मे सहकारी साख समितियो तथा बैंको ने आशातीत सफलता प्राप्त की है, फ्रांस ने उत्पादक सहकारी समितियो की ओर अधिक ध्यान दिया है, इटली मे श्रमजीवी सहकारी समितियां विशेष हुई है तो डैनमार्क ने सहकारिता का उपयोग खेती-बारी के लिये किया है। भारतवर्ष मे सहकारी साख समितियां ही अधिक संख्या मे दृष्टि-गोचर होती हैं। बात यह है कि प्रत्येक देश ने अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिये सहकारिता आन्दोलन का उपयोग किया है। जहां जिस प्रकार की सहकारी समितियों की अधिक आवश्यकता थी, वहां उसी प्रकार की समितियां स्थापित कीगई। हमे अब देखना यह है कि सहकारी समितियां कितनी तरह की होती हैं, और उनकी विशेषता क्या है।

समाज का यदि हम आर्थिक दृष्टि से विभाजन करें तो वह

तीन समूहो मे बांटी जा सकती है :— सम्पत्ति की उत्पत्ति करने वाले, सम्पत्ति का उपभोग करने वाले, तथा दलाल जो उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ताओ तक पहुँचाते है। उत्पन्न करने वालो मे वे सभी लोग आजाते है जो कि किसी रूप में सम्पत्ति का उत्पादन करते है, जैसे किसान, सब प्रकार के कारीगर जो कि गृह उद्योग-धन्धो मे लगे हुये है, मिल मालिक तथा मिल-मजदूर। दलालो की श्रेणी के अन्तर्गत वे सभी लोग आते है जो कि उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ता के समीप पहुँचाते है, जैसे बडे बड़े व्यापारी, जो विदेशो से व्यापार करते है, थोक व्यापारी, फुटकर बेचने वाले, बैलगाड़ी मोटर तथा रेलवे लाइनो पर काम करने वाले, जहाज चलाने वाले, तथा कमीशन एजन्ट। तीसरा समूह उपभोग करने वालो का है। देश की समस्त जन संख्या ही इस समूह मे आजाती है, क्योकि कुछ चीजे ऐसी है जिन्हे उत्पन्न तो थोड़े से ही लोग करते है, किन्तु उपभोग प्रत्येक मनुष्य करता है। अस्तु, उपभोक्ता समूह सब से बड़ा है, इसके बाद उत्पादक समूह आता है, और सबसे छोटे दलाल समूह है।

सहकारिता आन्दोलन मुख्यत. आर्थिक आन्दोलन है। जिस वर्ग की आर्थिक स्थिति कमजोर है, उस वर्ग को संगठित करके सबल बनाना ही उसका उद्देश्य है। किसी ने ठीक ही कहा है " सहकारिता तेरा नाम निर्धनता है। " जो निर्धन है, वे ही धनिको की प्रतिद्वन्दिता मे खडे होने के लिये सहकारिता की शरण

आते हैं। वे ही अपना संगठन करते हैं क्योंकि ऐसा किये बिना ये धनी प्रतिद्वन्द्वी की प्रतिस्पर्धा में खड़े नहीं रह सकते। दलाल समूहों के लोगों को, जो कि शक्तिवान और सम्पन्न होते हैं, और जिन्होंने बाजार पर अपना एकाधिपत्य जमा रखा है, सहकारिता की सहायता नहीं चाहिये। दलाल, उत्पादक समूह को उसके परिश्रम के लिये कम से कम मूल्य देकर उपभोग करने वालों से अधिक से अधिक मूल्य लेते हैं। सहकारिता आन्दोलन ऐसे समूह की कोई सेवा नहीं कर सकता। उत्पादक समूह तथा उपभोक्ता समूह में से भी सहकारिता उन्हीं लोगों की सेवा कर सकती है जो कि निर्बल हैं और जिन पर आर्थिक अन्याचार हो रहा है।

जा सकता है। अस्तु, सहकारी समितियों के दो मुख्य भेद हैं, उत्पादक समितियां और उपभोक्ता समितियां। उत्पादक समितियों का उद्देश्य यह होता है कि माल को कम व्यय करके तैयार किया जावे और उसे अच्छे दामो पर बेचा जावे, जिससे कि उत्पत्ति करने वालो को अधिक लाभ हो। उपभोक्ता स्टोर्स का ध्येय यह होता है कि तैयार माल को सस्ते दामो पर खरीदे और अपने सदस्यों को सस्ते दामो पर दे। इस प्रकार दोनों ही तरह की सहकारी समितियां दलालो को अपने स्थान से हटा देने का प्रयत्न करती हैं। उपभोक्ता स्टोर्स बीच के दलालो को तो हटा ही देते है, उनका लक्ष्य यह होता है कि आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन भी वही करे। जहां उपभोक्ता समितियां अधिक संख्या मे स्थापित हो गई है वहां वे उत्पादन कार्य भी करने लगी हैं। दूसरी ओर उत्पादक समितियां बीच के सब दलालो को अपने स्थान से हटा, उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहती हैं। पाठक कह सकते है कि तब तो यह दो प्रकार की समितियां एक दूसरे की विरोधी हुई, और देखने से ऐसा प्रतीत भी होता है। किन्तु जब समाज का आर्थिक संगठन सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार होगा और समाज एक वृहद सहकारी संगठन का रूप धारण करलेगी तब इन दो प्रकार की समितियो का पारस्परिक विरोध मिट जायगा, और उत्पत्ति करने वालो को अपने माल का उचित मूल्य मिलेगा तथा उपभोग करने वालो को उचित मूल्य देना होगा।

इन दो प्रकार की समितियो के अन्तर्गत बहुत प्रकार की समितियां होती हैं, उदाहरण के लिये साख समितियां, तथा बैंक। भारतवर्ष मे सहकारी साख समितियां ही अधिकतर स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है; देश की तीन चौथाई जन संख्या खेती बारी पर अपने उदर पालन के लिये निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त देश की ६० प्रति शत जन-संख्या गांवो मे निवास करती है। गांव की आवश्यकतायें शहरो से भिन्न होती है। गांव वालो की खेती-बारी के लिये साख की अत्यन्त आवश्यकता होती है। प्रत्येक मनुष्य को जो कि किसी धंधे में लगा हुआ है साख की अवश्यकता पड़ती है। उसकी स्थिति इतनी खराब होती है कि उसको कोई व्यापारिक बैंक पूंजी नहीं देता, इस कारण उसको महाजन की शरण जाना पड़ता है। महाजन किसान का इस प्रकार दोहन करता है कि वह कभी पनप ही नही सकता और सर्वदा ऋणी रहता है। सहकारी साख समितियां उसकी आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करती हैं। साख समितियो के अतिरिक्त किसानो के लिये अन्य प्रकार की सहकारी समितियां भी स्थापित की गई हैं, जैसे चकबंदी सहकारी समितियां, दूध सहकारी समितियां, सिचाई सहकारी समितियां, क्रय समितियां, विक्रय समितियां इत्यादि। भारतवर्ष मे किसानो के अत्यन्त ऋणी होने के कारण तथा साख का विशेष महत्व होने के कारण, यहां सहकारी समितियां दो श्रेणियों मे बांटी जाती हैं, साख समितियां, गैर-साख-समितिया।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि इंस्टीट्यूट ने समितियो का निम्न लिखित विभाजन किया है:—( १ ) साख, ( २ ) उत्पादक, (३) क्रय, (४) विक्रय। एक ही समिति एक, या एक से अधिक कार्य कर सकती है। उदाहरण के लिये एक ही समिति क्रय विक्रय का कार्य करती है।

वास्तव मे सहकारी समितियां कितने प्रकार की होती हैं, यह बताना कठिन है। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि प्रत्येक आर्थिक समस्या को हल करने लिये सहकारिता का उपयोग किया जासकता है और किया गया है। अब आगे के परिच्छेदों मे हम भारतीय सहकारी समितियो के विषय मे विस्तार पूर्वक लिखेगे, किन्तु इससे पहले हमे भिन्न, भिन्न प्रकार की समितियो का संगठन कैसे होता है यह जान लेना चाहिये।

**खेती-बारी के लिये साख समितियां**—भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, इस कारण हम प्रथम साख समितियो पर विचार करेगे। आधुनिक आर्थिक संगठन मे साख का अत्यन्त महत्व है, बड़े से बड़ा व्यवसायी और छोटे से छोटा कारीगर भी बिना साख के अपना कार्य नही चला सकता। बड़े बड़े व्यवसायी आरम्भ मे लाखो रुपये लगाकर मिल खड़ी करते है, जब मिल चलने लगती है और तैयार माल बिकने लगता है तब कहीं मिल मालिक को रुपया मिलता है। व्यवसायियो को औद्योगिक बैको से आरम्भ मे पूॅजी मिलजाती है और मज़दूरो के वेतन के

लिये व्यापारिक बैंको से पूँजी उधार लेलेते है । व्यापारी तथा दलालो को, जो कि तैयार माल का अथवा खेती-बारी की पैदा-वार का व्यापार करते हैं, माल लेते समय तो उसका मूल्य देना पड़ता है, परन्तु वह माल बहुत दिनो के बाद बिकता है। ऐसी स्थिति मे यदि उन्हे कहीं से पूँजी न मिले तो उनका व्यापार ही चौपट होजावे । अस्तु, व्यापारियो को व्यापारिक बैंक से रुपया मिल जाता है। जो व्यापारी कि विदेशी व्यापार करते है उन्हे विनिमय बैंक ( Exchange Bank ) से साख मिल जाती है। साख के साथ जोखिम भी है। जो बैंक अथवा मनुष्य किसी को ऋण देता है वह पूँजी के मारे जाने की जोखिम भी उठाता है। अस्तु, बिना जमानत के कोई भी साख नहीं देता । साख और जमानत का साथ है; बिना जमानत के साख नहीं मिल सकती । एक निर्धन किसान अथवा कारीगर जिसके पास पूँजी नहीं है, इन बैंको से ऋण नहीं पासकता, क्योंकि उनके पास जमानत कुछ भी नहीं होती। बड़े बड़े व्यापारी व्यवसायियो के पास निजी पूँजी यथेष्ट होती है, इस कारण व्यापारिक बैंक उन्हें कर्ज देदेते है। जो बैंक जमानत के बिना कर्ज देदेता है उसका दिवाला निकलने मे देर नहीं लगती। निर्धन किसानो के पास अधिक सम्पत्ति तो होती नहीं कि जिससे उनकी साख हो, इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और भी उपस्थित होती है, उनकी पूँजी की मांग इतनी थोड़ी होती है कि बड़े बड़े व्यापारिक बैंक ऐसा काम लेना पसन्द नहीं करते। मान लीजिये कि एक हज़ार किसान जो कि

भिन्न भिन्न गांवो मे रहते हैं, बैंक से फसल बोने के समय कुल पचास हजार रुपया उधार लेना चाहते है, अर्थात् प्रत्येक किसान केवल पचास रुपये लेना चाहता है। यदि बैंक इन किसानो को रुपया देना स्वीकार करे तो उसे चार या पांच कर्मचारी केवल इस लिये नियुक्त करने होगे कि वे इन किसानो की हैसियत की जांच करे और यह बतलावे कि वे ईमानदार है अथवा नही और उनको रुपया उधार देना चाहिये या नही। प्रत्येक बैंक क़र्जा देने से पूर्व, क़र्जा लेने वाले की आर्थिक स्थिति, वह ईमानदार है अथवा नहीं, उसका कारबार कैसा चल रहा है, इत्यादि बातो की पूरी जाच करने के उपरान्त ही क़र्जा देता है। जो बैंक इस विषय मे सतर्कता से काम नही लेता उसको हानि उठानी पड़ती है। बैंक व्यापारिक केन्द्रो मे होते है, इस कारण बड़े बड़े व्यापारियो की आर्थिक स्थिति की जांच सरलता पूर्वक होसकती है। व्यापारिक केन्द्र के बड़े बड़े व्यापारियो तथा व्यवसायियो के विषय मे बैंक पूरी जानकारी रखता है। किन्तु भिन्न भिन्न गांवो मे बिखरे हुये किसानो की आर्थिक स्थिति की ठीक ठीक जांच करना कठिन ही नही, व्यय-साध्य भी होगा। इसके अतिरिक्त एक हजार किसानो का हिसाब रखना तथा उनसे समय पर वसूल करना भी कठिन तथा व्यय-साध्य होता है। यदि एक व्यापारी पचास हजार रुपये उधार लेता है तो बैंक उसकी स्थिति की जांच भी करलेता है। उसके हिसाब के रखने तथा उससे रुपया वसूल करने मे न तो अधिक

कठिनाई और न अधिक व्यय ही करना पड़ता है। इन्ही कारणो से किसान, छोटे कारीगर तथा अन्य निर्धन लोग इन वड़े वैको से क़र्ज़ नहीं पासकते। यह तो पूर्व ही कहा चुका है कि विना पूँजी के उत्पादन कार्य चल नहीं सकता,इस कारण किसान और कारीगर को पूँजी की आवश्यकता होती है और उनकी आवश्यकता को महाजन और साहूकार पूरी करते है। महाजन और साहूकार किस प्रकार किसान और कारीगर का दोहन करते है यह तो अगले परिच्छेदो मे लिखा जावेगा, किन्तु यहां यह कह देना अतिशयोक्ति न होगा कि महाजनो का क़र्जदार होकर किसान चिर-दास वन जाता है। वह कठिन परिश्रम करता है,किंतु उसका लाभ मिलता है महाजन को। किसान को तो भूखे रहकर महाजन की थैलियो को भरना पडता है। किसानो और कारीगरो को इस आर्थिक दासता से छुड़ाने के लिये, और उनको अपने धन्धे के लिये उचित मूल्य पर पूँजी देने का आयोजन करने के लिये सर्व प्रथम जर्मनी मे सहकारी साख समितियो की स्थापना हुई। जर्मनी मे शुल्ज और रैफीसन नामक दो सज्जनो को निर्धन किसानो और कारीगरो की अत्यन्त शोचनीय आर्थिक स्थिति ने आकर्पित किया और दोनों ने ही लगभग एक ही समय देश के दो भिन्न भिन्न भागो में दो प्रकार की सहकारी साख समितियों की स्थापना की।

**रैफ़ीसन तथा शुल्ज़ प्रणाली की सहकारी साख समितियां**—रैफीसन तथा शुल्ज दोनों ही ने निर्धन किसानों

और कारीगरो की सामूहिक साख पर पूँजी उधार लेने का आयोजन किया । कुछ लोगो का विचार है कि रैफीसन सहकारी साख समितियां केवल गांव वालो के लिये उपयुक्त हैं तथा शुल्ज सहकारी साख समितियां नगर निवासी कारीगरो के के लिये उपयुक्त है । वास्तव मे वात ऐसी नही है । रैफीसन सहकारी साख समितियां उन स्थानो के लिये उपपुक्त है जहां अधिक जन संख्या न हो, निवासी एक दूसरे से भली भाति परिचित हो. तथा वहां के निवासी उस स्थान पर स्थायी रूप से रहने वाले हो, साथ ही जनसंख्या अधिक निर्धन हो । गांवो के निवासियो मे अधिकतर ऊपर लिखो हुई वाते मिलती है, इस लिये गांवो मे रैफीसन सहकारी साख समितियां अधिकतर पाई जाती है। यही कारण है कि साधारणतः लोग समझते है कि रैफोसन सहकारी साख समितियां गांवो के लिये है ।

इसके विपरीत शुल्ज सहकारी साख समितियां ऐसे स्थानो के उपयुक्त होती है, जहां जन सख्या अधिक हो जिसके कारण निवासी एक दूसरे से भली भांति परिचित न हो, जन संख्या स्थायी रूप से निवास न करती हो अर्थात् वहां के निवासी काम की खोज मे दूसरे स्थानो पर चले जाते हो तथा वे अत्यन्त निर्धन न हो । यह स्थिति अधिकतर नगरो मे होती है, इस कारण शुल्ज सहकारी साख समितियां शहरो मे कारीगरो तथा अन्य लोगो के लिये खोली जाती है ।

वात यह है कि रैफीसन सहकारी साख समितिया अपरिमित

दुखी हुआ। इसके उपरान्त वे उसी प्रदेश मे एक दूसरे जिले मे भेज दिये गये, वहां की दशा पहले से भी बुरी थी। बस, रैफीसन ने निर्धनता तथा भयकर क़र्ज़दारी से युद्ध छेड़ दिया। क्रमश रैफीसन ने सहकारी साख समितियो का देश मे एक जाल सा फैला दिया। यह ध्यान मे रखने की बात है कि रैफीसन को कोई सरकारी सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई, आन्दोलन सफल होगया तब भी उन्होने सरकारी सहायता लेना पसंद नही किया। सहकारी साख समितियो ने जर्मनी के गांवो की काया पलट कर दी। किसान साहूकारो के चॅगुल से निकल कर ऋण-मुक्त होगये और उनकी आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गई।

रैफीसन पद्धति की साख समितियो की निम्न लिखित विशेपतायें है :—

रैफीसन महोदय एक गांव मे एक ही साख समिति की स्थापना ठीक समझते है। यदि गांव अधिक छोटे हो तो दो या तीन गांवो के लिये एक समिति की स्थापना की जा सकती है। रैफीसन का मत है कि समिति के सदस्य बनाने मे बहुत छानबीन की आवश्यकता है। अधिक सदस्यो की इतनी आवश्यकता नही है जितनी कि चरित्रवान सदस्यो की।

सदस्यो मे चाहे कितनी ही आर्थिक विषमता क्यो न हो, किन्तु गरीब और अमीर को समिति के प्रबन्ध मे बराबर अधिकार है।

सब सदस्यो की सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा ही समिति की नीति को निर्धारित करती है और वही प्रबंधकारिणी समिति के सदस्यो को चुनती है। साधारण सभा प्रबन्धकारिणी समिति को समिति का कार्य चलाने तथा सभा द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार कार्य करने का अधिकार देती है। साधारण सभा अपने मे से ही एक निरीक्षण कौंसिल का चुनाव करती है। निरीक्षण कौंसिल प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यो के कार्य का निरीक्षण करती है। प्रबन्धकारिणी समिति तथा निरीक्षण कौंसिल के सदस्यो को कोई वेतन, फीस, अथवा कमीशन नहीं दिया जाता। केवल कैशियर को थोड़ा वेतन दिया जाता है, किन्तु उसको कोई अधिकार नहीं होता वह केवल समिति का नौकर होता है।

रैफीसन के अनुसार साख समितियो के सदस्यो से न तो फीस लेने की आवश्यकता है और न उन्हे समिति का हिस्सा खरीदने की। जब जर्मन सरकार ने एक क़ानून बना दिया कि सदस्यों को हिस्से खरीदने चाहिये तब भी रैफीसन सहकारी समितियो ने अपने हिस्से का मूल्य नाम मात्र को रखा; इसका उद्देश्य यह है कि ग़रीब किन्तु सचरित्र किसान समिति का सदस्य बनने से वंचित न रह जावें।

रैफीसन, समिति के लाभ को बांटने नहीं देता। उसका कथन है कि यदि लाभ सदस्यां मे बांटा जावेगा तो उन मे लालच बढ़ जावेगा। वार्षिक लाभ रक्षित कोष मे जमा होना चाहिये।

रक्षित कोष को क्रमशः बढ़ाते रहने पर रैफीसन ने बहुत जोर दिया है। वह कहता था कि रक्षित कोष ही इस आन्दोलन का स्तम्भ है। यदि किसी वर्ष समिति को हानि हो तो वह इस कोष से पूरी की जा सकती है, किन्तु इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ यह है कि अधिक कोष हो जाने से समिति के पास अपनी निज की कार्यशील पूँजी हो जायगी और उधार नही लेनी होगी। इसका फल यह होगा कि समिति सूद की दर को घटा सकेगी और सदस्यो को कम सूद पर कर्ज मिल सकेगा।

यदि रक्षित कोष अधिक होजावे तो यह रुपया गांव मे किसी सार्वजनिक हित के कार्य मे व्यय किया जाता है। यदि कभी समिति टूट भी जावे तो भी सदस्य रक्षित कोष को आपस मे नही बांट सकते, समिति के टूट जाने पर कोष मे जमा किया हुआ रुपया किसी ऐसी सार्वजनिक संस्था के पास जमा कर दिया जाता है जो भविष्य मे, यदि उस गांव मे कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित हो, तो उसको देदे। कुछ समय व्यतीत होजाने पर भी कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित न हो तो वह रुपया उसी गांव के सार्वजनिक हित के कार्यो पर व्यय कर दिया जावे। रैफीसन ने यह नियम इस लिये बनाया कि कहीं ऐसा न हो कि अधिक कोष जमा हो जाने पर सदस्य समितियो को तोड़ कर कोष का धन बांट ले।

कर्ज देने के लिये रैफीसन ने यह सिद्धान्त निश्चित किया कि ऋण केवल उसी आदमी को दिया जाना चाहिये जो समिति की

प्रबन्ध कमेटी को निश्चय करा सके कि उसको पूँजी की आवश्यकता है और जिस कार्य को वह करने जारहा है उसमे सफल होने की सम्भावना है। समिति उत्पादक कार्यो के लिये ही रुपया दे, अनुत्पादक तथा व्यर्थ कार्यो के लिये रुपया न देना चाहिये। जब समिति एक बार सदस्य की आवश्यकता के विषय में छानबीन करके क़र्ज़ा देदे तब यह देखना चाहिये कि जिस कार्य के लिये सदस्य ने क़र्ज़ा लिया है उसके अतिरिक्त और किसी कार्य मे तो व्यय नही किया। निरीक्षण कौंसिल प्रत्येक तीन महीने के उपरान्त सदस्य तथा उसकी जमानत देने वालो की आर्थिक स्थिति की, तथा उस रुपये के उपयोग की जांच करती है। यदि यह ज्ञात हो कि सदस्य ने क़र्ज़ा का ठीक उपयाग नही किया तो उस से फौरन ही रुपया वापिस मांगना चाहिये। समिति की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाये रखने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

सदस्य को क़र्ज़ा देते समय ही उस पर सूद का हिसाब लगाकर किश्ते बांध दीजाती हैं। रैफीसन ने किश्तो को ठीक समय पर वसूल करने के लिये बहुत जोर दिया है। उसका कहना हैं कि समिति इस नियम के पालन करने तथा सदस्यो से पालन करवाने मे बड़ी कड़ाई से काम ले। सदस्य को ठीक समय पर ही किश्त का रुपया देना चाहिये। इससे सदस्यो को एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि वे अपने क़र्ज़ा को ठीक समय चुका देने के लिये बाध्य होते हैं: इस लिये वह लापरवाह नहीं होते।

रैफीसन का मत था कि सदस्य को कर्ज़ा देने का कार्य ऐसी

सरलता पूर्वक होना चाहिये कि न तो उसमें सदस्य को कोई कठिनाई ही हो, और न क़र्ज़ा मिलने मे देरी हो। कर्ज़ के विषय मे जांच कर चुकने के उपरान्त एक या दो जमानत लेकर रुपया देदेना चाहिये।

जर्मनी मे रैफीसन सहकारी साख समितियो ने तो देश की दशा ही पलट दी। जर्मनी की ग्रामीण जन संख्या कर्जे के भयंकर बोझ से दबी हुई आर्थिक दासता को भोग रही थी, वही निर्धन किसानवर्ग रैफीसन सहकारी समितियो की सहायता से स्वावलम्बन का पाठ सीख गया और महाजनो की दासता से स्वतंत्र होकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा। सच तो यह है कि रैफीसन ने अपने देश के लिये वह कार्य किया जो कि बड़े से बड़ा राजनीतज्ञ भी नही कर सकता था। यही कारण था कि सन् १८१८ मे जब किसानो की सेवा से अपने जीवन को लगा देने वाले श्री० रैफीसन का स्वर्गवास हुआ तो आधा जर्मन साम्राज्य शोक-ग्रस्त होगया था। आज भी जर्मनी मे पिता रैफीसन का नाम अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है।

रैफीसन सहकारी साख समितियां जब जर्मनी मे फैल गईं तो उत्पादक, क्रय, विक्रय, दूध सहकारी समितियां तथा अन्य सभी प्रकार की समितियां स्थापित होगई। सहकारी समितियां अधिक होजाने के कारण, समितियो के समूहो की यूनियन स्थापित की गई हैं। जर्मनी मे इस प्रकार की १३ यूनियन है जो कि सब रैफीसन सहकारी समितियो का संरक्षण करती है। इन यूनियनो

के भी ऊपर एक कौंसिल है जो कि रैफीसन सहकारिता आन्दोलन की बागडोर संभालती है। कौंसिल की देखभाल मे एक बैंक भी स्थापित किया गया है जो कि साख समितियो की आवश्यकताओ को पूरी करता है।

किन्तु रैफीसन सहकारी साख समितियो की विशेषता अपरिमित दायित्व ( Unlimited liability ) है। रैफीसन ने अपरिमित दायित्व पर बहुत जोर दिया है। रैफीसन के अनुसार वास्तविक सहकारिता वही है जहां प्रत्येक सदस्य अपने को समिति-रूपी बड़े कुटुम्ब का सदस्य समझे; और, उन सदस्यों का आदर्श हो—"एक सब के लिये, सब एक के लिये"। इस आदर्श को वास्तविक रूप मे सदस्यो को समझाने के लिये अपरिमित दायित्व अत्यन्त आवश्यक है। दायित्व का अर्थ है कि प्रत्येक सदस्य समिति के समस्त ऋण को सम्मिलित तथा व्यक्तिगत रूप मे देने का जिम्मेदार है। रैफीसन सहकारिता आन्दोलन का यह आधार-स्तम्भ है, जिस पर इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा किया गया है।

**शुल्ज़ सहकारी साख समितियां**—सहकारिता साख आन्दोलन को जन्म देने का श्रेय जर्मनी को है। सहकारिता के के दो भक्त रैफीसन तथा शुल्ज़ लगभग एक ही समय मे एक ही देश मे स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे थे। किन्तु प्रारम्भ मे वे एक दूसरे को बिलकुल न जानते थे और न उनको एक दूसरे के कार्य का ही परिचय मिला। एक पूर्व जर्मनी में सहकारिता आन्दोलन

का प्रचार कर रहे थे तो दूसरे सज्जन पश्चिम मे सहकारिता आन्दोलन को चला रहे थे। रैफीसन तथा शुल्ज दोनो ही के हृदय मे अपने ग्राम-वासियो की दरिद्रता को देखकर सेवा भाव जागृत हुआ, और उसके फल-स्वरूप उन्होने सहकारिता आन्दोलन चलाया। अस्तु, शुल्ज ने अपने मित्र डाक्टर बर्नहार्डी की सहायता से अपने गांव डैलिट्ज तथा अपने मित्र के गांव ईलनबर्ग मे वहां के चमारो तथा अन्य कारीगरो के लिये कच्चा माल खरीदने के लिये दो सहकारी समितियां खोली। तबसे क्रमश. क्रय समितियो का प्रचार बढ़ता गया और अब वे जर्मनी मे सर्वत्र पाई जाती है। क्रय समितियो की सफलता से उत्साहित होकर शुल्ज ने १८६० मे पहली साख समिति स्थापित की। किन्तु वह पूर्णतया सहकारी समिति नही थी। इसी बीच मे शुल्ज को कुछ समय के लिये कार्यवश बाहर जाना पड़ा और उसके मित्र डाक्टर बर्नहार्डी ने ईलनबर्ग मे एक शुद्ध सहकारी साख समिति स्थापित की। १८५२ मे जब शुल्ज डैलिट्ज को लौटा तो वह अपने मित्र द्वारा स्थापित समिति के शुद्ध सहकारी रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने वही सिद्धान्त अपना लिया।

अब शुल्ज ने बड़े उत्साह से इस सिद्धांत का प्रचार करना प्रारम्भ किया। शुल्ज के व्यक्तित्व, उनकी धारा-प्रवाहिणी भाषण शक्ति, तथा उनकी सच्ची लग्न का फल यह हुआ कि साख समितियां बहुत बड़ी संख्या मे स्थापित होगई। किन्तु अभाग्यवश

जर्मन सरकार उसके इस कार्य से अप्रसन्न होगई और शुल्ज (जो कि न्यायाधीश था) को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके उपरान्त शुल्ज़ ने अपना समय इस कार्य मे लगा दिया।

शुल्ज सहकारी समितियो का अध्ययन करते समय यह बात ध्यान मे रखने की है कि शुल्ज़ ने यह आन्दोलन मध्य श्रेणी के मनुष्यो और विशेषकर कारीगरो के लिये चलाया था। और, अब भी इन समितियो से मध्य श्रेणी के मनुष्यो को ही लाभ होता है। शुल्ज ने अपने आन्दोलन को चरित्र सुधार का साधन नहीं बनाया, उसने केवल आर्थिक समस्या को ही सुलझाने का प्रयत्न किया। इन सहकारी समितियो मे निर्धनो के लिये स्थान नहीं है क्योंकि शुल्ज़ समितियो मे सदस्यों को हिस्सा अवश्य खरीदना पड़ता है, और हिस्से का मूल्य अधिक होता है। उसका मत था कि समिति को उधार ली हुई पूँजी पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, सदस्यो को हिस्से खरीदने चाहिये और बैंक के पास निजी यथेष्ट पूँजी होनी चाहिये।

जिस समय शुल्ज ने आन्दोलन चलाया उस समय परिमित दायित्व का सिद्धान्त जर्मनी मे किसी को ज्ञात नहीं था और न राजकीय क़ानून ही उसको मानता था। इस कारण प्रारम्भ मे यह समितियां अपरिमित दायित्व वाली थीं। किन्तु शुल्ज ने रैफीसन की भांति अपरिमित दायित्व को आवश्यक नहीं माना। उसका फल यह हुआ कि उसकी मृत्यु के उपरान्त जब जर्मनी में परिमित दायित्व का सिद्धान्त मान लिया गया तो बहुत सी समितियों

ने परिमित दायित्व के सिद्वान्त को अपना लिया । किन्तु इस समय भी यथेष्ट संख्या मे शुल्ज समितियां अपरिमित दायित्व को अपनाये हुये है।

शुल्ज समितियो की विशेपता यह है कि वे अपनी यथेष्ट पूॅजी इकट्ठी करना चाहती है। इसी कारण सदस्यो के लिये हिस्सो का ख़रीदना आवश्यक समझा गया। इसके अतिरिक्त शुल्ज ने सुरक्षित कोष को जमा करने पर बहुत जोर दिया है क्योकि उसका उद्देश्य किसी प्रकार वैक की निजी पूॅजी को बढ़ाना था। किन्तु यह न समझ लेना चाहिये कि यह सहकारी साख समितिया लाभ नहीं बाटती। लाभ का कुछ भाग सुरक्षित कोप मे जमा करने के उपरान्त, लाभ सदस्यो मे बांट दिया जाता है।

शुल्ज ने व्यक्तिगत जमानत पर कर्ज़ देने के सिद्धान्त को अपनाया है, तथा क़र्ज़ को समय पर वसूल करने पर बहुत जोर दिया है। इन समितियो मे सदस्य अपनी वार्षिक बैठक मे एक कमेटी का निर्वाचन करते है, और यह कमेटी अपने सदस्यो मे से एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। कार्यकारणी समिति, समिति का कार्य चलाती है तथा कमेटी उसके कार्य का निरीक्षण करती है। शुल्ज, कार्यकारिणी समिति के सदस्यो तथा पदाधिकारियो को वेतन देने के पक्ष मे है।

वास्तव मे यह सहकारी साख समितियां विस्तृत क्षेत्र के लिये उपयुक्त है। इस कारण वे पूर्ण रूप से व्यापारिक संस्था

होती हैं। अस्तु, व्यापारिक काय सफलता-पूर्वक करने के लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और वेतन-भोगी कर्मचारी रखने पड़ते है।

**लुज़्ज़ती समितियां ( पीपुल्स बैंक )**—लुज़्ज़ती ने शुल्ज प्रणाली का सुधार करके उसे अपनाया। आस्ट्रिया राज्य का कोप-भाजन बन कर भागा हुआ लुज्जती इटली मे अपनी योग्यता के कारण अर्थशास्त्र का अध्यापक बन गया और उसने शुल्ज के विचारो का अध्ययन करने के उपरान्त मिलन मे बैंक स्थापित किया। किंतु लुज्जती जैसा योग्य व्यक्ति यह भली भाति समझता था कि जर्मन संस्था इटली मे सफल न होगी। इस कारण उसने शुल्ज समितियों का नवीन संस्कार करके उसका प्रचार किया।

लुज्जती ने अपरिमित दायित्व के स्थान पर सिद्धात रूप से परिमित दायित्व को अपनाया। इसके अतिरिक्त उसने शुल्ज की भांति अधिक मूल्य के हिस्से न रखकर बहुत थोड़े मूल्य के हिस्से रक्खे और बहुतसी किश्तों मे हिस्सों के मूल्य चुकाने का नियम बनाया जिससे कि निर्धन मनुष्य समिति के सदस्य बन सकें। लुज्ज़ती ने यह नियम बनाया कि दस मास के अन्दर सदस्य को हिस्से का मूल्य चुका देना होगा। लुज्ज़ती का विचार यह था कि यह थोड़ीसी पूँजी बाहर की पूँजी को आकर्षित कर सकेगी, अर्थात् इसकी गारंटी पर बाहर से कर्ज़ा मिल सकेगा। साथ ही उसने अधिकतर सेविंग्स डिपाज़िट लेकर अपनी कार्यशील पूँजी को बढ़ाने पर ज़ोर दिया। उसका कहना था कि यदि कार्यशील

पूँजी की आवश्यकता हो तो सेविंग्स डिपाजिट आकर्षित करो। यद्यपि हिस्सो की पूँजी तो बाहरी कर्ज के लिये जमानत का काम देगी ही, किन्तु लुज्जती के मतानुसार वास्तविक जमानत तो समिति के सदस्यो की ईमानदारी होगी। उसने कहा कि "ईमानदारी को पूँजी मे परिणित करो"। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने ऐसा संगठन बनाया कि जिससे सदस्यो को ईमानदार रहने मे ही अपना हित दिखलाई दे और वे एक दूसरे को ईमानदार बनाने मे सहायक हो। लुज्जती ने इस बात को लक्ष्य मे रखकर समिति के कार्य की जिम्मेदारी को बांट दिया जिससे कि प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ जिम्मेदारी का कार्य करना पड़े। इस कारण लुज्जती समितियो मे सदस्यो को लेते समय उनके चरित्र पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है। प्रत्येक सदस्य को समिति का थोड़ा बहुत कार्य करना पड़ता है, जो कर्ज दिया जाता है वह बहुत जांच करने बाद दिया जाता है तथा कोई बात गुप्त नही रक्खी जाती जिससे कि प्रत्येक सदस्य समिति की दशा से पूर्ण परिचित रहे। लुज्जती, प्रबन्धकारिणी समिति तथा अन्य पदाधिकारियो को वेतन देने के पक्ष मे बिलकुल नहीं है।

लुज्जती समितियो मे प्रबन्ध का कार्य एक कमेटी करती है जिसका निर्वाचन साधारण सभा करती है। प्रबन्ध कमेटी के सदस्य संख्या मे अधिक होते है और यह आवश्यकता समझी जाती है कि प्रबन्ध कमेटी मे सब प्रकार के सदस्यो के प्रतिनिधि हो। किन्तु कमेटी बड़ी होने के कारण उसके सदस्य बैक के

दैनिक कार्य को सुचारु रूप से नहीं चला सकते, इस कारण कमेटी अपने मे से एक उप-समिति बना देती है जो इस कार्य को करती है। यह उप-समिति केवल एक वर्ष के लिए बनाई जाती है, फिर दूसरे वर्ष दूसरे सदस्यो की उप-समिति बनाई जाती है। उप-समिति का एक सदस्य प्रति दिन बैंक मे रहता है और उसकी आज्ञा के बिना कार्य नहीं होसकता।

**इटली की ग्रामीय साख समितियां**—इटली मे जिस प्रकार शुल्ज के विचारो को अपना कर लुज्जती ने पीपुल्स बैंक स्थापित किये, ठीक उसी प्रकार इटली ने अपने रैफीसन को भी ढूँढ निकाला। पीपुल्स बैंक छोटे व्यापारियों तथा सम्पन्न किसानों के लिये अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुए, किन्तु निर्धन छोटे छोटे किसानो के लिये, जो गावों मे निवास करते हैं, उनका कोई उपयोग नहीं था। साथ ही गांव मे निवास करने वाले छोटे छोटे किसानों को साख की अत्यन्त आवश्यकता थी। इटली के ग्रामो की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, किसान निर्धन हैं, लगान अधिक है, भूमि की कमी है और खेती-बारी भी अधिक उन्नत नहीं है; इसका फल यह है कि छोटे किसान अधिकतर कर्जदार हैं और महाजन उनका शोषण करते हैं।

की स्थापना की। प्रारम्भ मे तो सदस्य बहुत कम थे और डिपाजिट भी बहुत ही कम आई, किन्तु डाक्टर अथक परिश्रम से कार्य करते रहे। जब समिति को स्थापित हुए तीन महीने हो गये और समिति के मन्त्री ने सदस्यो को लिखा कि वे १॥ प्रति शत सूद, लिए हुये कर्ज़ पर देजावे तो सदस्यो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पहिले तो उन्होने समझा कि लिखने मे कुछ भूल होगई है,किन्तु जब उन्हे ज्ञात हुआ कि यह ठीक है तो यह खबर बड़ी तेजी से समीप के गांवो मे फैलगई और धड़ाधड़ समितियां स्थापित होने लगी।

डाक्टर वोलैम्बर्ग ने अपनी समितियो का संगठन रैफीसन के भांति ही रक्खा, भेद केवल इतना ही है कि इटली की ग्रामीण समिति जर्मनी की समिति से छोटी होती है। प्रत्येक कार्य मे किफायत पर अत्याधिक ध्यान दिया जाता है। इन समितियो मे सदस्य समिति के कार्य मे खूब भाग लेते है। प्रत्येक सदस्य जो कि साधारण बैठक मे आने के योग्य होता है अवश्य आता है। साधारण बैठक जल्दी जल्दी होती है,और जो सदस्य बिना उचित कारण के सम्मिलित नही होता, वह और सदस्यो की दृष्टि मे गिरजाता है, और उसको नाम मात्र का जुर्माना देना होता है। समिति का संचालन सब सदस्य मिलकर करते है। साधारण बैठक प्रबन्धकारिणी समिति के लिये आज्ञा देती है और प्रबन्धकारिणी समिति केवल उन आज्ञाओ का पालन करती है। साधारण बैठक का संचालन मे अधिक हाथ रहता है।

---

# तीसरा परिच्छेद

## भारतीय ग्रामीण ऋण

भारतवर्ष मे लगभग ६० प्रति शत जनता गांवो में निवास करती है और ग्रामीण जन संख्या अधिकतर खेती-बारी पर ही निर्भर रहती है। अधिकतर तो ग्रामीण किसान ही होते हैं और कुछ ग्रामीण उद्योग धन्धो में लगे रहते हैं। किन्तु गांव के धन्धे भी अप्रत्यक्ष रूप से खेती-बारी पर ही निर्भर हैं। यदि हम यह कहे कि समस्त ग्रामीण जन संख्या खेती-बारी पर निर्भर है तो अतिश्योक्ति न होगी। जो मनुष्य कि भारतीय ग्राम्य जीवन से परिचित नहीं है, वह सम्भवतः ग्रामीण जनता के विषय मे धोखा खा जावे। जिस देश का अवलम्बन ही खेती-बारी है उस देश मे किसानों की अत्यन्त शोचनीय दशा का कौन ध्यान कर सकता है। किन्तु बात उलटी है, आज भारतीय किसान की आर्थिक दशा जितनी पतित है सम्भवतः संसार के अन्य किसी देश के किसानो की नहीं है। भारतीय ग्रामीण आज कर्ज के भयंकर बोझ से बहुत दबा हुआ है और कर्जदार होने के कारण उनका राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र-विषयक पतन हो रहा है। यह तो आगे के पृष्ठों में बतलाया जावेगा कि ऋणी होने का कैसा भीषण परिणाम किसान वर्ग को भुगतना पड़ रहा है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिये इस समस्या को हल करना

होगा। जब तक कि देश की जन संख्या का एक बहुत बड़ा भाग आर्थिक दासता का जीवन व्यतीत करता रहेगा तब तक देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना स्वप्न मात्र है।

१६३० मे सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के साथ सहयोग करने के लिये प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी बैठाई। प्रांतीय बैंकिग इनक्वायरी कमेटियो ने अपने अपने प्रान्तो मे ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि प्रान्तीय कमेटियो का अनुमान बिलकुल सही नहीं होसकता फिर भी हमे कर्ज की भयंकरता का अनुमान भली भांति होसकता है।

यदि प्रान्तीय कमेटियो के अनुमान किये हुये कर्ज को जोड़ा जावे तो ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण ६०० करोड़ रुपया होता है। ध्यान रहे देशी राज्यो के अंक इसमे नहीं जोड़े गये हैं। ऋण का व्यौरा इस प्रकार है:—

| प्रान्त | ऋण |
|---|---|
| असाम | २२ करोड़ |
| बंगाल | १०० ,, |
| बिहार-उड़ीसा | १५५ ,, |
| बम्बई | ८१ ,, |
| बर्मा | ५०-६० ,, |
| केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित प्रदेश | १८ ,, |
| मध्य प्रान्त | ३६ ,, |

| | | | |
|---|---|---|---|
| कुर्ग | ... | ... | ३५-५५ लाख |
| मदरास | ... | ... | १५० करोड़ |
| पंजाब | ... | ... | १३५ ,, |
| संयुक्त प्रान्त | ... | ... | १२४ ,, |

अभी तक किसी भी कमेटी ने सारे देशी राज्यो के ग्रामीण ऋण को मालूम करने का प्रयत्न नहीं किया। किन्तु जिन्होंने राज्यो का आर्थिक स्थिति का कुछ भी अध्ययन किया है, वे जानते है कि देशी राज्यो के ग्रामीणो की आर्थिक दशा ब्रिटिश भारत के ग्रामीणो से कुछ अच्छी नही है। यदि हम सारे देशी राज्यो का ग्रामीण ऋण ब्रिटिश भारत का एक तिहाई मानले तो कुछ भूल न होगी। इस हिसाब से समस्त देश का ग्रामीण ऋण १२०० करोड़ रुपये होता है।

अब प्रश्न यह होता है कि यह कर्ज घट रहा है अथवा बढ़ रहा है। प्रान्तीय कमेटियो की सम्मति मे भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षो मे बराबर बढ़ता गया है। सर ऐडवर्ड मैकलेगन ने १६११ मे कहा था "यह तो स्पष्ट है कि ग्रामीण ऋण भारतवर्ष के लिये कोई नई बात नही है, इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रिटिश शासन के पूर्व भी यह समस्या उपस्थित थी। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि यह ऋण ब्रिटिश शासन मे और विशेषकर पिछले पचास वर्षों मे, बहुत बढ़गया है।" शाही कृषि कमीशन की भी इस विषय मे लगभग यही सम्मति है। कमीशन का कहना है कि प्रान्तो का ग्रामीण ऋण अवश्य ही

पिछले वर्षों मे बढ़ गया है। पिछले दस वर्षों मे तो इस की भयंकरता बहुत ही बढ़गई है। इसका अनुमान केवल अंको से नहीं किया जासकता। १६२१ के वाद खेती की पैदावार का मूल्य लगभग ५० प्रति शत घटगया। अस्तु, किसानों के कर्ज़ का वाझ पहले से दुगना होगया है। इस भयकर बोझ को किसान किस प्रकार संभाल सकेगा यह तो अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिये भी एक समस्या है।

प्रान्तीय कमेटियो ने यह जानने का भी प्रयत्न किया है कि प्रति शत कितने लोग क़र्ज़दार नहीं है। निम्न लिखित चार प्रातो मे ऋण-मुक्त किसानो की संख्या इस प्रकार है:—

आसाम प्रान्त मे ६ प्रति शत से लेकर ३८ प्रति शत किसान भिन्न भिन्न ज़िलो मे मुक्त है।

विहार उड़ीसा मे १६ प्रति शत से लेकर २१ प्रति शत मुक्त हैं।

मध्य प्रान्त मे १३ प्रति शत से लेकर ७० प्रति शत मुक्त हैं।

संयुक्त प्रान्त मे ३३ प्रति शत से लेकर ६१ प्रति शत मुक्त हैं।

इन अंको से यह स्पष्ट नही होता कि वास्तव मे कितने किसान ऋण मुक्त है। अर्थशास्त्र के कतिपय विद्वानो का मत है कि लगभग ७५ प्रति शत किसान कर्ज़दार है।

प्रान्तीय वैंकिंग इन्कायरी कमेटियो ने विस्तार पूर्वक उन कारणो का विवेचन किया है जो किसान को कर्ज़दार बनाते हैं। ग्रामीण जन संख्या के कर्ज़दार होने के बहुत से कारण है।

किसान का पुराना ऋण उसको कर्जदार बनाने मे बहुत सहायक है। किसान पुराने कर्जे को चुकाने के लिये नया कर्जा लेता है। भारतीय किसान को भयंकर सूद देना पड़ता है क्योकि उसकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि भारतीय किसान के पास इतनी भूमि नही है कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन पोषण कर सके। कारण यह है कि देश के अन्य धन्धे विदेशी माल तथा देशी मिलो की प्रतिद्वन्दिता के कारण नष्ट हो गये और उनमे लगी हुई जन संख्या खेती बारी मे लग गई। भारतवर्ष मे खेती-बारी की भूमि का अकाल पड़ गया और प्रति किसान भूमि कम हो गई। यही नही. हिन्दुओ तथा मुसलमानो मे पिता के मरने पर सब लड़को मे बराबर बराबर भूमि बांटने की प्रथा के कारण वह थोड़ी भूमि भी छोटे छोटे टुकड़ो मे विभाजित होजाती है और एक स्थान पर सारे खेत न होकर खेत मीलो मे बिखरे होते हैं, जिसके कारण खेती वैज्ञानिक ढंग से नही की जासकती और न इस धन्धे मे लाभ ही होसकता है। इस कारण किसान साधारणतया बिना कर्जा लिये अपना काम नही चला सकता। इसके अतिरिक्त बैलों की आकस्मिक मृत्यु तथा अनिश्चित खेती भी किसान को कर्जदार बनाती है। भारतवर्ष के किसान के पास पशुधन ही उनकी अत्यन्त मूल्यवान पूँजी है. किन्तु पशुओं की बीमारी इतनी भयंकर हैं और पशुओ की मृत्यु संख्या इतनी अधिक है कि किसान को उससे बहुत हानि होती है और कर्जा लेकर नये

पशु खरीदने पड़ते हैं । भारतवर्ष मे खेती अधिकतर वर्षा पर निर्भर है, किन्तु वर्षा यहां अनिश्चित होती है जिसके कारण फसल भी अनिश्चित होती है । यदि वर्षा आवश्यकता से बहुत कम हो, अथवा अति वर्षा हो तो फसल खराब होजाती है। कभी टीड़ीदल नष्ट करदेता है तो कभी कोई हवा अथवा कीड़ा फसल को नष्ट कर देता है। जिन वर्षों मे फसल अच्छी होती है उनमे तो किसान किसी प्रकार अपना काम चला लेता है किन्तु फसल खराब होने पर तो उसको कर्जा ही लेना पड़ता है । कुछ अर्थशास्त्रज्ञो का मत है कि किसान विवाह,मृत्यु संस्कार,तथा अन्य सामाजिक कृत्यो मे अपनी स्थिति को देखते बहुत अधिक व्यय कर देता है और उसे कर्जा लेना पड़ता है। हो सकता है कि इस मे कुछ सत्य हो किन्तु इसमे अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। कुछ प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियो की भी इस विषय में यही सम्मति है। हां, जिस वर्ष फसल अच्छी होतीहै और किसान को कुछ अधिक रुपया मिलजाता है, तब बैंक इत्यादि न होने के कारण वह उसे सामाजिक तथा अन्य धार्मिक कार्यो पर खर्च कर डालता है। लेखक के मतानुसार मुक़द्दमेबाजी भी किसान के कर्जदार होने का एक मुख्य कारण है। किसान मुक़द्दमेबाजी मे फंसकर कर्जदार बनजाता है। जो लोग भारतीय अदालतो से परिचित हैं वे जानते हैं कि किसान भूखे रहकर भी कर्जा लेकर मुक़द्दमे मे व्यय कर देता है, मुक़द्दमेबाजी भारतीय किसान का जातीय खेल है वह उसमे अंधाधुन्ध धन फूंकता है।

इनके अतिरिक्त लगान और मालगुज़ारी* भी किसान के कर्ज़दार होने का एक मुख्य कारण है। सरकार तथा सरकारी वेतन-भोगी अर्थशास्त्र के विद्वान इस बात को मानने के लिये तैयार नही है कि लगान और मालगुज़ारी अधिक है। किन्तु लेखक का तथा अन्य बहुत से विद्वानो का मत यह है कि लगान तथा मालगुजारी उचित से अधिक है, क्योकि खेती-बारी मे लाभ बहुत कम है। लगान व मालगुजारी अधिक है अथवा कम, इस विषय मे मतभेद है किन्तु इसमे तनिक भी सन्देह नहीं कि तीस वर्ष के लिये लगान और मालगुजारी पहले से निश्चित कर देने के कारण, जब कभी फसले नष्ट होजाती है अथवा खेतो को पैदावार की कीमत बहुत गिरजाती है तो किसानो को लगान या माल-गुज़ारी देना कठिन होजाता है। यद्यपि ऐसे समय मे छूट देने का प्रयत्न किया जाता है किंतु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। निर्धन किसान को कर्ज लेकर मालगुजारी या लगान देना पड़ता है, क्योकि ज़मींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बड़ी सख्ती से वसूल करते है। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि खेती मे लगे

* ज़मींदारी प्रथा वाले प्रांतो मे किसान भूमि के उपयोग के लिये जो रक़म ज़मींदार को देता है वह लगान कहलाती है, और सरकार जो रक़म ज़मींदार से लेता है उसे मालगुज़ारी कहते है।

रैयतवारी प्रान्तो मे किसान का सीधा सम्बन्ध सरकार से होता है और वह जो रक़म सरकार को देता है, उसे मालगुजारी कहते है। मालगुजारी, बन्दोवस्त करके सरकार ३० वर्ष के लिये निश्चित करती है।

हुए मनुष्यों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, इस कारण खेती के योग्य भूमि का गांवो मे अकाल है। अस्तु, किसान भूमि लेने के लिये लम्बे पट्टे लेता है और उचित से अधिक लगान देता है। कभी कभी कर्ज लेकर वह भूमि भी मोल लेलेता है। कही कही इन दो कारणो से भी वह कर्जदार बना हुआ है। इन सब कारणो के होते हुए तथा महाजन के कर्ज देने के ढंग और भयंकर सूद को देखते हुए यह आश्चर्य की बात नही है कि किसान सदा क़र्जदार रहता है। किन्तु इन सब कारणो के अतिरिक्त एक कारण जिसके विषय मे ऊपर के पृष्ठो मे संकेत किया जा चुका है, मुख्य है; अर्थात् खेती मे लगी हुई जन संख्या की वृद्धि। १८९१ की मनुष्य गणना मे ६१ प्रति शत मनुष्य खेती-बारी मे लगे हुए थे, यही संख्या १९०१ मे ६६ प्रति शत, १९११ मे ७१ प्रति शत, १९२१ मे ७२ प्रति शत, तथा १९३१ में ७३ प्रति शत होगई। ग्रामीण उद्योग-धन्धो का नष्ट हो जाना भी इस बढ़ी हुई क़र्जदारी का एक कारण है।

इस बढ़ी हुई क़र्जदारी का फल बहुत भयंकर हो रहा है। किसान और कारीगर महाजन के क्रीत दास बन गये है। वर्ष भर परिश्रम करने के उपरान्त भी उनको भर पेट भोजन नहीं मिलता, एक बार क़र्ज ले लेने पर वह लोग महाजन के चँगुल से बचकर कभी निकल ही नही सकते। महाजन उनका दोहन करके आनन्द करता है, और निर्धन किसान परिश्रम करता है महाजन के लाभ के लिये। किसान किसी प्रकार अपनी आवश्यकताओं

को घटा कर गुज़ारा करता है। किसी वर्ष भी यदि फसल नष्ट होगई तो उसे महाजन की शरण जाना पड़ता है, और एक बार वह महाजन के पास गया नही कि चिर-दास बना नही।

क़र्ज़ लेना कोई बुरी बात नहीं है और न क़र्ज़दार होना ही आर्थिक-हीनता का सूचक है, यदि कर्ज उत्पादक कार्य के लिये लिया गया हो; किन्तु अनुत्पादक कार्य के लिये लिया हुआ कर्ज किसान की आर्थिक मृत्यु का कारण होता है। भारतीय किसान का ऋण अधिकतर अनुत्पादक कार्यों के लिये लिया गया है और जो ऋण उत्पादक कार्यों के लिये भी लिया जाता है, उस पर इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि किसान दिवालिया हो जाता है। किसान को इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि खेती बारी मे उसे लाभ हो ही नही सकता। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में सूद की दर भिन्न भिन्न है, परन्तु २० प्रति शत से ले कर ३७ प्रति शत तक साधारण सूद की दर है। किन्तु कही कही ५० प्रति शत से लेकर १०० प्रति शत तक सूद देना पड़ता है। भारतीय अदालतों मे ऐसे बहुत से मुक़दमे आये जिनमे सूद की दर १००० प्रति शत से भी अधिक थी। कभी कभी चतुर महाजन जितनी रकम देता है उससे कई गुनी लिख लेता है और अशिक्षित किसान उस पर अंगूठा लगा देता है। महाजन किसान से मूलधन तो नहीं मांगता और सूद लेता रहता है। महाजन का सूद निकालना ही किसान के लिये कठिन हो जाता है, मूलधन की तो वात ही क्या। फल यह होता है किसान सदा के लिये क़र्ज़दार वन जाता

है और वर्ष भर परिश्रम करके महाजन की थैलियां भरता रहता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि भारतीय किसान ऋणी जन्म लेता है, ऋणी ही मरता है और ऋण को भावी पीढ़ियो के लिये छोड़ जाता है। यह ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। क्रमश. भारतीय किसान के हृदय मे यह बात बैठ गई है कि क़र्ज़दार होना अवश्यम्भावी है, इससे छुटकारा हो नही सकता और महाजन को अपने वर्ष भर के परिश्रम द्वारा उत्पन्न की हुई पैदावार सूद मे देना अनिवार्य है। अस्तु, वह मुक्त होने का प्रयत्न करना भी छोड़ देता है। भारतीय किसान की मनोदशा इतनी दयनीय हो गई है कि आप चाहे कितना ही उसको समझावे उसकी समझ मे यह आही नही सकता कि मै इससे मुक्त भी हो सकता हूॅ। जिस प्रकार जीवन होते हुए मरण अनिवार्य है वैसे ही भारतीय ग्रामीण के लिये कर्जदार होना अनिवार्य है। यह उसका दृढ़ विश्वास है। फल यह होता है कि जब कभी सामाजिक रूढ़ियो तथा बिरादरी के दबाव के कारण उसको सामाजिक कार्यों मे धन व्यय करना पड़ता है तो वह निश्चिन्त होकर और कर्ज ले लेता है। वह जानता है कि कर्जदार तो अवश्य रहूॅगा फिर थोड़े से अधिक खर्चे के लिये बिरादरी से हॅसी क्यो करवाऊँ। क़र्ज़दार होने के कारण भारतीय किसान तथा गृह उद्योग-धन्धो मे लगे हुए कारीगर इतने हताश हो चुके है कि यदि आप किसान को वैज्ञानिक ढंग से खेती करके अधिक पैदावार प्राप्त करने का आदेश दे तो वह कदापि मानने को तैयार नहीं

होता, क्योंकि वह जानता है कि यदि अच्छा बीज, खाद और यन्त्रो का उपयोग करके मैने अधिक पैदावार की भी तो वह महाजन के पास जावेगी; मै तो जैसा पहले था वैसा फिर भी रहूँगा, मैं क्यो व्यर्थ मे परिश्रम करूं। यदि हम चाहते हैं कि कृषि की उन्नति हो और भारतीय ग्रामीणो की आर्थिक दशा सुधरे तो हमे उनको इस भयंकर बोझ से मुक्त करना होगा। जब तक भारतीय किसान इस भयंकर बोझ से पिसा जारहा है तब तक देश की आर्थिक दशा का सुधारना स्वप्न-तुल्य है; केवल एक सुन्दर कल्पना है, इसमे तथ्य कुछ भी नही है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाये अथवा डयोढ़े पर बीज लाता है तथा खाद इत्यादि डालने के लिये कर्ज़ लेता है। फसल तैयार होनेपर अधिकतर उसे अपनी फसल शीघ्र ही बेच देना पड़ती है क्योंकि जमींदार लगान के लिये, सरकार आबपाशी के लिये, तथा महाजन अपने कर्ज़ के लिये जल्दी मचाते है। उस समय किसान महाजन के हाथ फसल बेचकर अपना पीछा छुड़ाता है। महाजन बाजार भाव से बहुत सस्ते दामो पर फसल मोल लेता है। कभी कभी तो कर्ज देने के समय यह निश्चय होजाता है कि किसान फसल महाजन के ही हाथ बेचेगा। यदि कोई किसान समीपवर्ती मंडी मे फसल बेचने जाता है तो वहां दलाल, आढ़तिया तथा व्यापारी उसको लूटते है। साथ ही फसल कटने के थोड़े दिनो के बाद तक बाजार का भाव बहुत मन्दा रहता है और किसान को मन्दे भाव पर अपनी

फ़सल बेच देना पड़ती है। जूट, गन्ने तथा अन्य औद्योगिक कच्चे माल के किसान तो खड़सारियो तथा जूट के व्यवसायियो के चिरदास बने रहते है। खड़सारी फसल वोने के समय कुछ रुपया किसान को पेशगी देदेता है और उससे तय करलेता है कि इस कीमत पर तुम्हे गन्ना अथवा रस हमे देना होगा: गन्ने अथवा रस का मूल्य सालभर पहिले से ही निश्चित होजाता है। निर्धन किसान को गन्ने की फसल वोने के लिये रुपया चाहिये और उसे खड़सारियो से रुपया लेना ही पड़ता है। वास्तव मे स्थिति तो यह है कि परिश्रम करता है किसान और उसका लाभ उठाते है महाजन। अधिकतर किसानो की स्थिति यह है कि फसल काट चुकने के उपरान्त, जमींदार सरकार तथा महाजन का देना चुकाने पर उसके पास कठिनता से आठ महीने का भोजन वच रहता है। पिछले चार महीनो के लिये उसे महाजन से सवाये ड्योढ़े पर अनाज उधार लेना पड़ता है। कही कही तो कर्जदारों की स्थिति मोल लिये हुए दासो से भी गई बीती हो जाती है। बिहार उड़ीसा के छोटा नागपुर प्रान्त मे कम्यौती पद्धति प्रचलित है। जमींदार किसी मजदूर को कुछ रुपया (१०० या २००) देदेता है, इस रुपये पर न तो सूद लिया जाता है और न यह रुपया वापिस किया जाता है। किन्तु इसके बदले कम्यौत को इक़रारनामा लिखना पड़ता है कि वह जब जमींदार को आवश्यकता होगी तब उसका काम करेगा। जमींदार को फसल वोने तथा काटने के समय कम्यौत की आवश्यकता पड़ती है, तब

वह उसे बुला लेता है और दो आना प्रति दिन के हिसाब से मजदूरी देदेता है। गांवो में यही समय मजदूरी का होता है। इन महीनो को छोड़कर और महीनो मे कम्यौत को गांव मे मजदूरी नहीं मिल सकती। ठीक इन्हीं दिनो जमींदार भी कम्यौत को अपने यहां नही रखता। उन दिनो कम्यौत को वे दो आने भी नहीं मिलते। कम्यौत जीवनभर इस दासता में रहता है क्योकि जब तक वह लिया हुआ रुपया न लौटा दे तब तक उसका इस बन्धन से छुटकारा नही होता। कुछ वर्ष हुये बिहार सरकार ने एक एक्ट बनाकर इस प्रकार के इकरारनामों को गैर-क़ानूनी घोषित कर दिया, किन्तु अशिक्षित कम्यौत को इसका ज्ञान धीरे धीरे होगा।

इसी प्रकार कारीगर भी व्यापारियो और महाजनो के चंगुल मे फंसे हुए हैं, और महाजन उनका शोषण कर रहे है। बुनकरों का ही धंधा ले लीजिये। निर्धन बुनकर कपड़े तथा दरी के व्यापारी से सूत उधार लाता है तथा कर्घे इत्यादि आवश्यक, वस्तुओं के लिये भी रुपया लेता है। कपड़े का व्यापारी सूत का भी व्यापारी होता है। वह सूत का मूल्य अधिक लेता है। बुनकर को तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना पड़ता है। कहीं कहीं व्यापारी बुनकरो को कुछ रुपया एक साथ देदेता है जिसे बाकी कहते है। बुनकर को उसके बदले उसी व्यापारी से सूत खरीदना पड़ता है और उसी व्यापारी के हाथ तैयार माल बेचना होता है। व्यापारी सूत का अधिक दाम लेकर तथा तैयार माल

का कम मूल्य देकर बुनकर को लूटता है। जब तक कि बुनकर बाकी का रुपया न चुका दे तब तक वह दूसरे व्यापारी के पास नहीं जासकता। इस प्रकार महाजन कारीगरो का शोषण करते है। जब तक कि पूँजी के उचित मूल्य पर मिलने का तथा तैयार माल के बिकने का प्रबन्ध सहकारी समितियो के द्वारा नहीं किया जाता तब तक गृह उद्योग-धन्धे पनप नहीं सकते।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि साहूकार की ऋण देने की पद्धति तथा सूद की दर इतनी भयंकर है कि किसान कभी मुक्त नही हो सकता। भिन्न भिन्न प्रान्तीय बैंकिग इनकायरी कमेटियो ने अपने अपने प्रान्तों मे जो सूद की दर लिखी है वह इस प्रकार है:—

आसाम—१२ प्रति शत से ७५ प्रति शत तक।

बम्बई—१२ " ५० "

बंगाल—कम से कम १० से ३७½ तक, अधिक से अधिक ३७½ से ३०० तक।

बिहार उड़ीसा—१८¾ से ५० प्रति शत तक।

बर्मा—१८ से २४ प्रति शत तक। छोटे तथा बिना जमानत के कर्जों पर ३८ से ६० प्रति शत तक।

मध्य प्रान्त—१२ से ३७½ प्रति शत तक। अनाज के ऋण पर २५ से १०० प्रति शत तक।

मदरास—१२ से लेकर ४८ प्रति शत तक।

संयुक्त प्रान्त—व्यापारिक कार्यों के लिये ६¼ से १२½ तक, तथा अनाज के कर्ज़ पर २५ प्रति शत से ५० प्रति शत तक।

पंजाब कमेटी ने केवल उन ऋणो के सूद की दर बतलाई है जिनके लिये कुछ सम्पत्ति बंधक रूप मे रख दी गई है। वह सूद की दर ६ से १२ तक है।

क्रमशः इस भीषण ऋण के बोझ को न सह सकने के कारण किसानो की भूमि उनके हाथ से निकल कर महाजनो के हाथों मे जाने लगी। इस भयंकर परिस्थित की ओर भारत सरकार का ध्यान किसान विद्रोह ने आकर्षित किया। दक्षिण भारत, अजमेर-मेरवाडा तथा मध्य प्रान्त के छोटा नागपुर डिविजन मे किसान विद्रोही हो उठे, उन्होने महाजनो के घर जला दिये और उन्हे मार डाला, तथा बही खातो को जला कर भस्म कर दिया। सरकार ने एक कमीशन दक्षिण के किसानो के विद्रोह के कारणो की जांच करने के लिये बिठाया। कमीशन की सम्मति मे किसानो की गिरी हुई आर्थिक दशा और भयंकर सूद की दर ही इन विद्रोहो का कारण थी। शान्ति-प्रिय किसान जब महाजन का अन्याचार न सह सके तो वह विद्रोही हो उठे। सरकार ने किसान की रक्षा के लिये एक एक्ट बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे किसी भी नालिश के मुकदमे में न्यायोचित सूद की ही डिगरी दें, फिर किसान ने महाजन से चाहे जितना अधिक सूद देने का इकरार क्यों न किया हो। किन्तु

इस एक्ट का कोई फल न हुआ, क्यो कि किसान निर्धन हैं और न्यायालयो मे व्यय अधिक होता है, साथ ही अदालतो ने इस ओर विशेष ध्यान भी नही दिया। सरकार ने फसलो के नष्ट होने पर मालगुजारी तथा लगान मे छूट करने की नीति को अपनाया, किंतु इससे भी किसान को कुछ विशेप लाभ नही हुआ। सरकार एक तो छूट बहुत कम करती है और उस छूट मे भी यह शर्त लगाई जाती है कि यदि किसान एक निश्चित तारीख़ तक लगान नही दे देगा तो छूट नही मिलेगी। फल यह होता है कि क़िसान को महाजन से क़र्ज़ लेकर लगान देना पड़ता है। भारतीय सरकार का ध्यान इस ओर आकर्पित किया गया कि भारतीय क़िसानो में मितव्ययिता का भाव जागृत करना चाहिये। अस्तु, पोस्ट आफिस सेविंग बैंक खोले गये। किंतु इन बैंको ने किसानो मे मितव्ययिता का कितना प्रचार किया है यह पाठक भली भांति जानते है। अशिक्षित किसान भला उन पोस्ट आफिस सेविंग बैंको से कैसे लाभ उठा सकता है जिनका कार्य विदेशी भापा मे होता है और जो अधिकतर शहरो और बड़े क़स्बो मे होते हैं। जिस देश में किसानो को मनीआर्डर और तार की लिखाई दो आने और ख़त की लिखाई एक आना देनी पड़ती हो, वहां भला पोस्ट आफिस सेविंग बैंक किस प्रकार किसानो को अपनी ओर आकर्षित कर सकते है। सरकार ने कई बार क़ानून मे सुधार इस दृष्टि से किये कि किसान को कुछ सुविधा दीजावे किंतु क़ानूनो के द्वारा सरकार किसानों को कुछ भी सहायता न पहुंचा सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती बारी का धंधा करने के लिये साख की आवश्यकता होती है। किसान को दो प्रकार की साख चाहिये अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। किसान को फसल तैयार करने के लिये जो क़र्ज़ा लेना पड़ता है वह लगभग एक वर्ष के लिये लिया जाता है। फसल के लिये किसान को बीज, खाद, हल तथा अन्य औजारों और मजदूरों की मजदूरी का प्रबन्ध करना पड़ता है। किसान इनके लिये क़र्ज़ा लेकर फसल कटने के उपरान्त अदा कर सकता है। किन्तु कुछ कार्य ऐसे हैं जिन मे पूँजी लगाने मे तुरन्त ही लाभ नहीं होता जैसे कुआ खोदना, खेती के मूल्यवान यन्त्र मोल लेना तथा भूमि को अधिक उपजाऊ बनाना इत्यादि। इन कार्यों के लिये क़र्ज़ा अधिक समय के लिये चाहिये। अस्तु, सरकार ने दो एक्ट बनाकर प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनों प्रकार की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये क़र्ज़ा दे सकती है। इस सरकारी क़र्ज़ा को तक़ावी कहते हैं किन्तु तक़ावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तक़ावी का अधिक उपयोग ही किया।

होती है। आवश्यकतानुसार तक़ावी मिलने मे कठिनाई होने से तथा वसूलयाबी मे कड़ाई होने के कारण तक़ावी का अधिक प्रचार न होसका।

कर्ज़दार होने के कारण किसानो के हाथ से भूमि महाजनो के पास चली जाती है और किसान उस पर मजदूर की भांति काम करता है। पंजाब मे इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया था, इस कारण वहां एक एक्ट बना कर इसको रोक दिया गया। 'पंजाब लैंड एलीनियेशन एक्ट' के अनुसार कुछ जातिया किसान जातियां मान ली गई है और खेती की भूमि इन जातियो के अतिरिक्त अन्य जातियां नही ले सकती। इस एक्ट से यह लाभ हुआ कि महाजन कर्ज़ के लिये डिगरी करा कर अब किसान की भूमि नही ले सकते। संयुक्तप्रान्त के बुन्देलखण्ड नामक प्रदेश मे, तथा मध्यप्रान्त के कुछ भागो मे इसी प्रकार का कानून लागू किया गया है।

किन्तु ऋण समस्या जैसी पहले थी वैसी ही बनी रही। इसी बीच मे भारत सरकार का ध्यान सहकारिता आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश सरकार के द्वारा भारतवर्ष मे किया गया। जर्मनी और इटली मे सहकारी साख समितियो ने वहां के किसानो की आर्थिक स्थिति सुधारने मे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की थी। भारत सरकार ने भी ऋण की समस्या हल करने के लिये सहकारिता आन्दोलन की शरण ली।

इस देश मे तीस वर्षों से ऊपर इस आन्दोलन को चलते हो गये। सहकारिता आन्दोलन कहां तक सफल हुआ है और भविष्य मे उससे क्या आशा है यह तो आगे के पृष्ठों मे लिखा जायगा किन्तु इन तीस वर्षों के अनुभव से यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि किसानो का पिछला कर्जा चुकाने तथा अधिक समय के लिये किसान को कर्जा देने का कार्य सहकारी साख समितियां सफलता पूर्वक नही कर सकती। और जब तक किसान पुराने कर्जा के बोझ से दबा रहेगा तब तक उसकी आर्थिक उन्नति नही हो सकती। यदि किसान सहकारी साख समिति का सदस्य बनता है किन्तु महाजन का पुराना कर्जा नहीं चुका सकता तो महाजन उसको तंग करता है और किसान को पुराने कर्जा पर तो भयंकर सूद देना ही पड़ता है। फल यह होता है कि किसान की मुक्ति का कोई उपाय नही रहता। इसी समस्या को हल करने लिये भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) स्थापित करने का आयोजन किया जारहा है। यह बैंक भी उन्हीं किसानो का पिछला कर्जा चुका सकेंगे जिनके पास भूमि है और जो उसे बैंक के पास बधक स्वरूप रख सकेंगे। बैंक किसान से सूद सहित उस कर्जा को बीस अथवा पचीस वर्षों मे किश्ते लेकर वसूल कर लेगा। यह प्रयोग अभी नया है, बहुत कम बैंक देश मे स्थापित किये गये हैं, इस कारण इनकी सफलता के विषय मे कुछ नही कहा जा सकता। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि भूमि बंधक बैंक को कार्य-शील पूँजी (Working Capital)

इकट्ठा करने की समस्या हल करनी होगी और यदि इन बैंको के डिबैंचर बेच कर कार्यशील पूँजी इकट्ठी भी हो गई तो भी यह बैंक उन्ही किसानो को कर्ज दे सकेगे कि जो भूमि को वंधक रख सकेंगे। बहुत से प्रान्तो मे किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नही है, वहां यह बैंक किसानो की सहायता न कर सकेगे।

**ऋण परिशोध**—यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि पुराने कर्ज को चुकाने की समस्या बहुत कठिन है। अधिकतर यह ऋण पैतृक होता है, यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर आता है। किसान की आर्थिक स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि वह इस कर्ज को चुका ही नहीं सकता। जब साधारण रूप से फसल अच्छी होती है तब भी खेती-बारी का खर्चा काटकर, फ़सल तैयार करने के लिये महाजन अथवा सहकारी साख समिति से लिये हुए क़र्ज को देकर उसके पास वर्ष भर के लिये खाने को नही रहता, तब वह किस प्रकार पुराने कर्ज को चुका सकता है। जिस वर्ष फसल ख़राब हो जाती है, बैल मर जाते हैं, अथवा और कोई अनिवार्य ख़र्च आ जाता है, तो ऋण अधिक बढ़ जाता है। जब तक पुराने कर्ज को चुका नही दिया जाता अथवा इसको गैर-क़ानूनी नही बना दिया जाता, तब तक किसानो की आर्थिक स्थिति सुधर नही सकती। शाही कृषि कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे इस विषय पर लिखा है कि इस ऋण की ओर से उदासीन रहना बहुत भयंकर होगा।

सेंट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की सम्मति मे सरकार को

इस ओर ध्यान देना चाहिये और निम्नलिखित योजना के अनु-सार कार्य करना चाहिये :—

प्रान्तीय सरकार इस कार्य के लिये विशेष कर्मचारी नियुक्त करे जो कि गांवो मे दौरा करके महाराज को इस बात पर राजी करे कि वह किसानो से एक मुश्त अथवा किश्तो में रुपया लेकर उन्हे ऋण-मुक्त करदे। इन कर्मचारियो का यह भी कर्तव्य होगा कि वे किसानो को यह बतलावे कि क़ानून द्वारा निश्चित सूद की दर को घटवाया जा सकता है।

जब कर्मचारी महाजन से तय करले कि वह कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋण मुक्त कर देगा तब किसान को सहकारी साख समिति का सदस्य बनवा दिया जावे। समिति उसका कर्ज़ा इकठ्ठा अथवा किश्तो मे चुका दे तथा खेती-बारी के लिये किसान को आवश्यक साख दे।

जब महाजन रुपया वार्षिक किश्तो में लेना स्वीकार करे तो जितना किसान स्वयं अदा कर सकता हो, करदे, और बाक़ी का ऋण समिति, सदस्य की जमा के रूप मे, अपने यहां लिख लेगी और प्रति वर्ष जब किश्त का रुपया अदा करेगी तो जमा किया हुआ रुपया कम कर दिया जावेगा।

यदि महाजन एक मुश्त रुपया मांगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार देदेना चाहिये; समिति उस कर्ज़ को वार्षिक क़िश्तो मे चुका देगी। तदुपरांत यह निश्चय किया

जावेगा कि किसान प्रति वर्ष कितनी किश्त अदा करे। यदि किसान रुपया अदा न कर सके और समिति को हानि हो जावे तो सरकार उस हानि को पूरा करदे।

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज़ा के इस प्रकार चुकाये जाने के लिये तैयार न हो और समझौता न करे। ऐसी परिस्थिति मे उन्हे क़ानून बना कर समझौते के लिये वाधित किया जावे।

शाही कृषि कमीशन ने भी पैतृक ऋण के विषय पर अपनी सम्मति दी है। कमीशन की सम्मति मे ग्रामीण 'इन्सालवैंसी (दिवाला) ऐक्ट' बनाया जावे। इससे यह लाभ होगा कि जो ग्रामीण ऋण के बोझ से इतना दबा हो कि उसकी सम्पत्ति के बिक जाने पर भी वह कर्ज अदा न कर सके तो वह दिवालिया होने का प्रार्थना पत्र देदे और अपनी सम्पत्ति लेनदारो को देकर ऋण मुक्त हो जावे, और स्वतन्त्र रूप से आजीविका उपार्जन करे। चाहे उसकी सम्पत्ति से लेनदारो का आधा रुपया भी वसूल न हो सके, वे उस किसान से रुपया भविष्य मे वसूल नहीं कर सकते। किसान सदा के लिये उस ऋण से मुक्त हो जावेगा। यह ऐक्ट पास हो गया है।

**लेखक का मत**—यदि देखा जावे तो यह सभी योजनाएं त्रुटिपूर्ण है। किसान को ऋण मुक्त करने की समस्या ने आज पचास वर्षों से सरकार तथा जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करलिया है। बहुतसी योजनाएं तैयार की गई, उनके अनुसार कार्य भी किया गया, किन्तु किसी से भी सफलता प्राप्त नहीं

हुई। सफलता प्राप्त न होने का एक कारण यह है कि किसी भी विद्वान ने इस समस्या पर स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया।

यह तो पहले कहा जाचुका है कि जन संख्या के बढ़जाने से तथा गृह उद्योग-धन्धो के नष्ट होजाने से खेती बारी करने वालो की संख्या पिछले पचास वर्षों मे बहुत बढ़ गई है । इस कारण प्रति किसान,भूमि बहुत कम रहगई है। भूमि का अकाल पड़गया है। किसान को बहुत अधिक लगान देकर भूमि लेनी पड़ती है। किसान के सारे खेत एक ही स्थान पर नही होते, भूमि के छोटे छोटे टुकड़े दूर दूर बिखरे होते है जिसके कारण व्यय अधिक, और पैदावार कम होती है । साधारणतः जब फसल अच्छी होती है तो भी किसान को वर्षभर क लिये खेती से यथेष्ट आय नही होती। फिर,हर तीसरे अथवा चौथे साल फसल नष्ट हो जाती है। उपर से धार्मिक, सामाजिक कार्यों के लिये तथा मुक़-दमेबाज़ी के लिये उसे ऋण लेना अनिवार्य होजाता है । वह ऋणी तो होता ही है,फ़सल के वास्ते,लिये हुए ऋण पर सूद तथा मूल चुकाने के अतिरिक्त उसे पुराने ऋण पर भयंकर सूद देना पड़ता है। परिस्थिति ऐसी बन गई है कि किसान को यह दृढ़ विश्वास होगया है कि वह कभी ऋण मुक्त नही हो सकता, और न उसकी भावी पीढ़ियां ही मुक्त हो सकती है। वह तो कहता है यह कर्ज़ा तो ऐसे ही चला,आया है और ऐसे ही चलता रहेगा। उसकी मनोदशा निराशामय है। वह स्वप्न मे भी ध्यान नही करता कि मै कभी मुक्त हो सकता हूँ। यही कारण है कि उसमें मित-

व्ययिता का भाव जागृत नही होता, वह सोचता है कि क़र्ज़दार तो रहना ही है फिर किफायत करने की चिन्ता क्यो !

यह समस्या तभी हल हो सकती है कि जब राज्य कानून बना कर किसान को ऋण मुक्त करदे। यह मानी हुई बात है कि जब तक क़र्ज़दारी की समस्या हल नही होगी तब तक ग्रामीण सुधार होना असम्भव है। आज तक जितनी भी योजनाएं सोची गई उनमे कोई योजना ऐसी नही जो किसान को ऋण-मुक्त कर सके। प्रत्येक योजना किसान को ऋण चुकाने मे सुविधाएं प्रदान करती है। सुविधाओ की आवश्यकता तो तब होती है जब कि देनदार मे ऋण चुकाने की ताक़त हो। जहां चुकाने की ताकत ही नहीं है, वहां सुविधाओ से क्या लाभ ! भला विचारिये तो सही कि जो किसान वर्ष भर परिश्रम करने के उपरान्त केवल आठ महीने का भोजन पाता हो. वस्त्र, औषधि तथा शिक्षा पर कुछ व्यय न कर सकता हो, वह किस प्रकार पुराने ऋण को अदा कर सकता है।

यदि हम चाहते है कि भारतीय किसान महाजनो की आर्थिक दासता से स्वतंत्र होकर अपने धंधे मे उत्साह पूर्वक लग कर खेती-बारी की उन्नति करे, ग्रामीण उद्योग धन्धो की सहायता से अपनी आय को बढ़ावे, और मनुष्यो का सा जीवन व्यतीत करे तो उसे ऋण मुक्त करना होगा। इसके लिये एक क़ानून बना कर सारा ग्रामीण ऋण गैर-क़ानूनी बना दिया जावे; किसान महाजन का देनदार न रहे और ऋण मुक्त हो जावे। जब एक

बार किसान मुक्त होकर स्वतंत्र वायु मण्डल मे सांस लेगा तब उसकी मनोदशा मे परिवर्तन होगा। उसका जीवन निराशामय न होकर आशामय बनेगा। खेती बारी के लिये आवश्यक माल प्रति वर्ष सहकारी समितियों से मिल जावेगी, फिर वह कृषि विभाग द्वारा बतलाई हुई वैज्ञानिक ढंग की खेती करेगा और खराब सालों के लिये, अच्छे सालों में कुछ रुपया बचाकर रखने की भी बात उसकी समझ मे आजावेगी। ग्रामीण उद्योग धंधे तभी पनप सकेंगे और किसान को अपनी फसल महाजन के हाथ कम दामों पर बेचने के लिये विवश नहीं होना पड़ेगा। सच बात तो यह है कि सहकारिता आन्दोलन तभी सफल होगा और ग्राम संगठन का कार्य तभी सम्भव हो सकेगा।

से अधिक वह किसी भी अवस्था मे वसूल नही कर सकता, चाहे सूद के हिसाब से रुपया कितना ही क्यो न होगया हो। उदाहरण के लिये यदि किसी किसान ने महाजन से १०० रु० क़र्ज़ लिये और २० प्रति शत सूद ठहरा, और किसान १० वर्ष तक रुपया नही देता तो भी महाजन किसान से २०० रु० से अधिक नही पासकता। प्राचीन समय मे न्यायालय इसी नियम के अनुसार डिगरी दिया करते थे। अब भी कतिपय हिन्दू देशी राज्यों मे यह नियम लागू है। जब किसान दुगने से बहुत अधिक दे चुका है फिर यदि उसका क़र्ज़ा गैर-कानूनी कर दिया जावे तो कौनसा अन्याय होगा ? मुसलमान महाजन देश मे बहुत कम हैं और उनके धर्मग्रंथ कुरान के अनुसार तो सूद लेनाही मना है। ऐसी दशा मे उनके प्रति भी अन्याय नही होगा। सम्भव है कि कुछ नये महाजनो के प्रति इस योजना से अन्याय हो जावे। उन नये महाजनो को राज्य आधा या चौथियाई देकर किसान को ऋण मुक्त करदे। अधिकतर महाजन किसानो को वर्षों से चूस रहे है और दिये हुये क़र्ज़ से कई गुना वसूल करचुके हैं। अबभी उन्हे जो किसानो के दोहन का अधिकार मिला है वह क्या किसान वर्ग पर भीषण अन्याय नही होरहा है। फिर, यदि इस भयंकर अन्याय को हटाने से देश की लगभग तीन चौथियाई जन संख्या आर्थिक दासता से मुक्त होती है और राष्ट्र के लिये अधिकाधिक सम्पत्ति उत्पन्न करने का आयोजन हो सकता है तो क्यो न देश इस कार्य को बिना विलम्ब करडाले !

---

कमीशन ने भी किसानो की शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए अपनी रिपोर्ट मे कृषि बैंक खोलने के विषय मे सम्मति देदी। जर्मनी मे इसी समय सहकारिता आन्दोलन बड़ी तेजी से बढ़ रहा था,मद्रास सरकार ने अपने एक कर्मचारी श्री० फ्रैडरिक निकलसन को जर्मनी मे सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन करने के लिये भेजा। श्री० निकलसन ने वहां की साख समितियो का अध्ययन करने के बाद एक रिपोर्ट लिखी और उसमे यह बतलाया कि किस प्रकार भारत मे यह आन्दोलन उपयोगी हो सकता है। श्री निकलसन ने अपनी रिपार्ट मे लिखा है कि यदि भारतीय किसान की आर्थिक दशा को सुधारना हो तो देश मे रैफीसन को ढूँढ निकालो। इसके उपरान्त सयुक्त प्रान्त के श्रीयुत ड्यूपरनैक्स ने इस आन्दोलन का अध्ययन करके पीपुल्स बैंक नामक पुस्तक लिखी। इन सब प्रयत्नो का फल यह हुआ कि भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और एक कमेटी इस विषय पर विचार करने के लिये बैठाई गई। इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर उसकी सम्मति के अनुसार १६०३ मे प्रथम सहकारिता एक्ट पास होगया। इस कमेटी के सभापति सर एडवर्ड ला थे जो उस समय भारत सरकार के अर्थ-सचिव थे।

२५ मार्च सन् १६०४ को भारतवर्ष मे सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश होगया। इस एक्ट के अनुसार किसानो, गृह उद्योग-धंधो, तथा नीची श्रेणी के लोगो के लिये साख समितियो के खोलने का आयोजन किया गया। एक्ट संक्षेप मे इस प्रकार

था। अठारह वर्ष से अधिक के कोई दस मनुष्य सहकारी साख समिति स्थापित कर सकते हैं। सदस्यो को एक ही गांव तथा एक ही स्थान का होना आवश्यक है जिससे वे एक दूसरे के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सके। समितियां दो प्रकार की होगी, ग्रामीण और नगर समितियां। ग्राम्य समिति मे ८० प्रति शत सदस्यो का किसान होना, और नगर समितियों मे ८० प्रति शत कारीगरो तथा अन्य पेशे वालो का होना आवश्यक है। ग्राम्य समितियों के सदस्यो का दायित्व, अपरिमित होगा, किन्तु नगर समितियो के सदस्यो का दायित्व यदि वे निश्चय करले, परिमित भी हो सकता है। ग्राम्य समिति का सब लाभ सुरक्षित कोप मे जमा करना आवश्यक है। हां, जब सुरक्षित कोप एक निश्चित रक़म से ऊपर पहुँच जावे तो तीन चौथियाई लाभ सदस्यो मे बांटा जा सकता है। नगर समितियो मे लाभ के बांटने पर कोई रुकावट नही लगाई गई, हां यह नियम बनाया गया कि २५ प्रति शत लाभ सुरक्षित कोप मे जमा किया जावे। समितियां व्यक्तिगत ज़मानत पर रुपया दे सकती है, परन्तु चल सम्पत्ति की ज़मानत पर रुपया नही देसकती। समितियो का आय व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार के द्वारा भेजे हुए निरीक्षकों के द्वारा होगा। एक्ट ने समितियो को कुछ सुविधाएं भी प्रदान की। समितियो के लाभ पर आय-कर नही लिया जाता, समितियो को स्टाम्प फीस नही देनी पड़ती, और किसी भी सदस्य के व्यक्तिगत ऋण के लिये उसका (समिति मे) हिस्सा कुर्क नहीं कराया जा सकता।

सहकारिता एक्ट के पास होते ही सब प्रान्तो मे प्रान्तीय सरकारो ने रजिस्ट्रार नियुक्त कर दिये जिन्होने प्रान्तो मे सहकारिता आन्दोलन की देख भाल प्रारम्भ करदी। रजिस्ट्रार आरम्भ मे समितियो का संगठन, उनकी देख भाल, तथा उनको रजिस्टर करने का कार्य करता था। किन्तु थोड़े ही समय के उपरान्त रजिस्ट्रार तथा अन्य कार्यकर्त्ताओ को एक्ट के दोपो का अनुभव होने लगा। कई बार सब प्रान्तो के रजिस्ट्रारो के सम्मेलन हुए और उन्होने एक्ट के संशोधन की आवश्यकता बतलाई। १६०४ के एक्ट के अनुसार साख समितियो के रजिस्टर करने की तो व्यवस्था होगई, किन्तु गैर-साख समितियो, सैन्ट्रल बेक, बैंकिंग यूनियन, तथा सुपरवायजिग यूनियन के रजिस्टर करने की सुविधा नहीं हुई। १६०४ के उपरान्त जब देश मे साख समितियो की स्थापना होने लगी, उस समय यह आवश्यक समझा गया कि साख समितियो का निरीक्षण करने के लिये तथा उनको पूॅजी देने के लिये सैन्ट्रल बैक तथा बैंकिंग यूनियन की स्थापना की जावे, क्योकि साख समितियो के पास सदस्यो की आवश्यकताओ को पूरी करने के लिये यथेष्ट पूॅजी नही थी। सैन्ट्रल बैको की स्थापना कम्पनी एक्ट के अनुसार ही हो सकती थी, न कि सहिकारिता एक्ट के अनुसार। साथ ही इस बात का अनुभव हुआ कि देश को गैर साख समितियो की भी अत्यन्त आवश्यकता है, उदाहराणार्थ गृह-उद्योग धंधो को प्रोत्साहन देने के लिये, खेतो की पैदावार को उचित मूल्य पर बेचने के लिये,

तथा उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर वस्तुएं देने के लिये सहकारी समितियो की स्थापना की आवश्यकता प्रतीत हुई। किन्तु १९०४ के एक्ट मे ग़ैर-साख समितियो के संगठन के लिये कोई भी सुविधा न थी। इन सब दोषो को देखते हुये यह आवश्यक समझा गया कि एक नया एक्ट बनाया जावे। अस्तु, १९१२ मे दूसरा एक्ट बनाया गया जो अब तक भारतवर्ष मे प्रचलित है। केवल बम्बई, ( बम्बई एक्ट १९२५ ) और बर्मा, ( बर्मा एक्ट १९२७ ) प्रान्तो ने अपने प्रान्तीय एक्ट बना लिये है। संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रान्त मे भी १९१२ के एक्ट मे कुछ संशोधन कर दिये गये हैं। यह परिवर्तन प्रत्येक प्रान्त ने अपनी आवश्यकतानुसार कर लिये है। एक्ट के अतिरिक्त प्रत्येक समिति अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये उपनियम बनाती है।

एक्ट के अनुसार प्रत्येक प्रान्त सहकारिता आन्दोलन की देख भाल के लिये रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकता है। रजिस्ट्रार का कार्य केवल समितियो को रजिस्टर करना ही नही है, वरन उनका निरीक्षण, तथा उनके आय-व्यय की जांच करना भी है। यदि वास्तव मे देखा जावे तो सहकारिता आन्दोलन का सर्व सर्वा रजिस्ट्रार ही होता है। सहकारिता के एक प्रसिद्ध विद्वान् के शब्दो मे वह आन्दोलन का मित्र, पथ-प्रदर्शक, तथा उपदेशक है। रजिस्ट्रार की आधीनता मे डिप्टी रजिस्ट्रार से लेकर आय व्यय निरीक्षको तक बहुत से कर्मचारी होते है जो आन्दोलन की देख भाल करते रहते है। ( धारा ३ )

रजिस्ट्रार को पंचायत के भी अधिकार प्राप्त है, और समितियो के झगड़ो को या तो वह स्वयं सुनकर निर्णय दे देता है, अथवा और किसी को नियुक्त कर देता है। जब कभी कोई समिति टूट जाती है तो रजिस्ट्रार लिक्वीडेटर नियुक्त कर देता है। लिक्वीडेटर उस समिति की अन्तेष्ट क्रिया करता है।

एक्ट के अनुसार कोई भो समिति जो अपने सदस्यो की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न, सहकारिता के सिद्धान्तो के अनुसार करने के लिए स्थापित की गई हो रजिस्टर की जा सकती है। बड़े बड़े व्यवसायी अथवा पूँजीपति इस एक्ट की आड़ मे अपने धन्धो का संगठन सहकारी समितियो के रूप मे न करले, इस लिये वही सहकारी समितियां रजिस्टर की जा सकती हैं जिनके सदस्य किसान, कारीगर, अथवा छोटी हैसियत के आदमी हो। ( धारा ४ )

समितियो के सदस्यो का दायित्व परिमित तथा अपरिमित भी होसकता है। यदि समिति साख का काम करती है और उस के सदस्य समिति न होकर व्यक्ति है, अथवा अधिकांश सदस्य किसान है, तो ऐसी समिति के सदस्यो का दायित्व अपरिमित होगा। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना क़र्ज़ ही चुकाने का जिम्मेवार नही है वरन् उसको समिति का सारा क़र्ज़ चुकाना होगा। उदाहरण के लिये यदि मान लिया जावे कि अनन्तपूर नामक गांव मे एक सहकारी साख समिति स्थापित कीगई जिसके सदस्यो का दायित्व अपरिमित है,

कालान्तर मे वह साख समिति दिवालिया होजाती है और उस की लेनी ( assets ) से देनी (Liabilities) अधिक हो जाती है। तो उस समय समिति का कोई भी लेनदार समिति के किसी एक सदस्य से अपना सारा ऋण वसूल कर सकता है । मान् लीजिये कि अनन्तपूर साख समिति के और सब सदस्य अत्यन्त निर्धन है, केवल दो या तीन सदस्य ऐसे है जिनके पास अधिक सम्पत्ति है, तो समिति के सारे ऋण दाता समिति का सारा कर्जा उन धनी सदस्यो से वसूल कर सकते है, और उन सदस्यों को अपनी सारी सम्पत्ति भी बेचकर समिति का क़र्जा चुकाना पड़ेगा।

यदि सहकारी समिति ऐसी है जिसके सदस्य व्यक्ति भी है, तथा अन्य समितियां भी है; या फिर समिति के सदस्य अधिकतर किसान नही है, तो उन समितियो के सदस्यों का दायित्व उनके हिस्सो के मूल्य से अधिक नही होगा। यदि किसी सदस्य ने किसी परिमित दायित्व वाली समिति मे १०) रुपये का हिस्सा लिया है और उसने हिस्से का पूरा मूल्य चुका दिया है तो उसको किसी दशा मे भी अधिक कुछ नही देना होगा। ( धारा ४ )

इस आशंका को दूर करने के लिये कि कहीं कोई व्यक्ति-विशेष, सहकारी समिति पर अपना एकाधिपत्य न जमाले यह नियम बना दिया गया है कि परिमित दायित्व वाली समितियों मे कोई एक सदस्य अधिक से अधिक, मूल धन के बीस प्रति शत के हिस्से, ( यदि कोई समिति चाहे तो उपनियम बनाकर इससे भी कम रकम निश्चित कर सकती है ) या एक हजार

रुपये के हिस्से ( इनमे जो रकम भी कम हो ) खरीद सकता है। बम्बई प्रांतीय एक्ट के अनुसार साधारण समितियो के लिये यह रकम ३ हजार रुपये, तथा गृह निर्माण समितियो के लिये दस हजार रुपये निश्चित की गई है। किन्तु यह पाबन्दी केवल व्यक्तियो के लिये है, समितियो के लिए कोई भी पाबन्दी नहीं है। सदस्य समितियां चाहे जितने भी मूल्य के हिस्से खरीद सकती है। ( धारा पांच )

जिन समितियो के सदस्य केवल व्यक्ति है वे तभी रजिस्टर की जासकती हैं जब कि नीचे लिखी बाते पूरी हो ( धारा ६ ):—

( अ ) समिति के कम से कम दस सदस्य हो और उनकी आयु १८ वर्ष से कम न हो।

( ब ) यदि समिति साख का काम करना चाहती है तो सदस्यो का एक ही गांव, समीपवर्ती गावो के समूह, अथवा एक कस्बे का निवासी होना आवश्यक है। यदि सदस्य एकही स्थान के निवासी नहीं है तो उनका एकही जाति, पेशे, अथवा कौम का होना आवश्यक है। किन्तु रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो ऐसी समिति को भी रजिस्टर करले जिसमे भिन्न भिन्न जातियो के सदस्य हो।

(क) समिति का ध्येय अपने सदस्यो की आर्थिक स्थिति को सहकारिता के द्वारा सुधारना होना चाहिये।

जिन समितियो के सदस्य अन्य समितियां भी है, और व्यक्ति भी हैं, उनके लिये यह शर्तें लागू नही है।

जिन समितियो मे केवल व्यक्ति ही सदस्य हों उसकी रजिस्ट्री के लिये कम से कम दस व्यक्तियो को अपने हस्ताक्षर सहित रजिस्ट्रार को प्रार्थना पत्र देना चाहिये। जिन समितियो मे व्यक्ति तथा समितियां दोनो ही सदस्य हो उनकी रजिस्ट्री के लिये व्यक्ति तथा समितियो के प्रतिनिधियो के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। प्रार्थनापत्र के साथ ही समिति के उपनियमों को भी भेजना चाहिये। ( धारा आठ ) जब रजिस्ट्रार को यह निश्चय हो जाता है कि सब कार्य नियमानुसार हुआ है तो वह समिति को रजिस्टर कर लेता है, और समिति अपना कार्य आरम्भ कर सकती है। रजिस्ट्रार समिति को एक सर्टिफिकेट देता है जो समिति के रजिस्टर होने का प्रमाण होता है। ( धारा ९ और १० ) यदि रजिस्ट्रार किसी कारण वश समिति को रजिस्टर करने से इन्कार करता है तो समिति के सदस्य दो मास के अन्दर प्रान्तीय सरकार से इस विषय मे अपील कर सकते हैं। ( धारा ९ )

समितियो के उपनियम समितियो की अन्दरूनी बातो से सम्बन्ध रखते हैं। समिति के सदस्यो से समिति का सम्बन्ध तथा अन्य भीतरी बातो को निर्धारित करने के लिये उपनियम बनाये जाते हैं। किन्तु इन उपनियमो से समिति तथा बाहर वालो के सम्बन्ध निर्धारित नही होते। मानलो कि समिति के उपनियमो मे उधार पर कोई भी वस्तु बेचने की मनाही हो और यदि किसी बाहर वाले को कोई वस्तु साख पर देदी गई हो, तो इस नियम के होते हुए भी समिति अपना रुपया वसूल कर सकती है।

जो समितियां कि परिमित दायित्व वाली होगी उनके नाम के आगे लिमिटेड लिखा रहेगा और रजिस्ट्रार किन्हीं दो समितियो को एकही नाम न रखने देगा।

समिति का सदस्य वही व्यक्ति होगा जो कि या तो रजिस्टर किये जाने के समय हस्ताक्षर करने वालो मे से हो, अथवा उप-नियमो के द्वारा बनाया गया हो। भारतवर्ष के कुछ प्रांतो मे ऐसी समितियां है जिनमे हिस्से होते है और कहीं कहीं हिस्से नही भी होते, केवल प्रवेश फीस होती है।

सहकारी साख समितियो तथा अन्य प्रकार की समितियो मे एक मनुष्य की एक ही वोट होती है। सहकारी समितियो मे हिस्सो के मूल्य के अनुपात मे वोट देने का अधिकार नही होता। जब कि कोई समिति किसी दूसरी समिति की सदस्य होती है तो वह अपने किसी प्रतिनिधि को उस समिति के कार्य मे भाग लेने के लिये भेजती है। ( धारा १३ )

भूतपूर्व सदस्य, सदस्य न रहने के दो वर्ष उपरान्त तक सह-कारी साख समिति ( अपारमित दायित्व ) के ऋण के लिये उत्तरदायी होता है। वह केवल उस समय तक के लिये हुए ऋण का ही जिम्मेदार होता है जब तक कि वह सदस्य था। ( २३ )

स्वर्गीय सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उनके उत्तराधिकारी, एक वर्ष तक मृत सदस्य के व्यक्तिगत ऋण को चुकाने के लिये उत्तरदायी है। किन्तु समिति का सम्मिलित बाहरी ऋण (जिसको अपरि-

मित दायित्व वाली समितियो के सदस्यो को चुकाना होता है ) मृत सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उसके उत्तराधिकारियो से उसी दशा मे वसूल किया जासकता है, जब कि साधारण रूप से अदालत मे मुकदमा चलाकर डिगरी करवाई जावे। किन्तु वर्मा तथा बम्बई के प्रान्तीय एक्टो के अनुसार समिति का लिक्टीडेटर मृत सदस्य की रियासत से समिति के सम्मिलित ऋण का वह भाग कि जो सदस्य को देना है वसूल करसकता है। ( धारा २४ )

समितियो के हिस्से स्वन्त्रता पूर्वक बेचे नहीं जासकते। समिति के हिस्सों के बेचने के विपय मे कुछ प्रतिबन्ध एक्ट ने लगाये है, और कुछ समितियां ( उपनियम बनाकर ) लगाती है। ( धारा १४ )

परिमित उत्तरदायित्व वाली समितियों मे यह नियम है कि कोई भी बाहरी मनुष्य हिस्से उतने ही मूल्य के खरीद सकता है जितने मूल्य से अधिक के हिस्से खरीदने का किसी को अधिकार नहीं है। मानलो कि नियमानुसार कोई भी मनुष्य १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं लेसकता, तो कोई भी बाहरी मनुष्य सदस्यों से १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकेगा।

अपरिमित दायित्व वाली समितियो का कोई सदस्य तब तक अपना हिस्सा दूसरे को नहीं देसकता जब तक उसको हिस्सा लिये हुये एक वर्ष न होगया हो। फिर भी उसे हिस्सा समिति को, अथवा समिति के किसी सदस्य को ही देना होगा। किसी बाहरी आदमी को वह हिस्सा नहीं बेच सकता। ( धारा १४ )

रजिस्टर्ड समितियो को अपना आय व्यय रजिस्ट्रार द्वारा निश्चित किये हुये ढंगे पर रखना होता है। रजिस्ट्रार द्वारा मनोनीत किया हुआ आय-व्यय निरीक्षक आय-व्यय निरीक्षण करता है। ( धारा १७ )

सहकारी समितियो को निम्न लिखित विशेष सुविधाये प्राप्त है:- सहकारी समितियो को अपना रुपया वसूल करने की कुछ सुविधाये प्रदान की गई है। यदि समिति, ने किसो वर्तमान सदस्य अथया भूतपूर्व सदस्य का बीज अथवा खाद उधार दिया है, अथवा बीज और खाद मोल लेने के लिये रुपया उधार दिया है, तो समिति को उस रुपये अथवा खाद और बीज के द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। यदि वह सदस्य और किसी का भी कर्ज़दार है, तो वह लेनदार उस फसल को,जो कि समिति के बीज या खाद से पैदा की गई है कुर्क नही करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यो को बैल, चारा, खेती बारी तथा उद्योग धन्धो मे काम आने वाले यंत्र, और उद्योग-धधो के लिये कच्चा माल उधार दिया है, अथवा इन वस्तुओ को खरीदने के लिये रुपया उधार दिया है, तो उन वस्तुओ पर,तथा उस कच्चे माल के द्वारा तैयार किये हुये पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा। किन्तु कलकत्ता हाईकोर्ट ने एक मुकदमे मे यह रूलिग दे दी कि जब तक कि समिति अदालत से डिगरी न कराले तब तक वह और लेनदारो को डिगरी कराने से नही रोक सकती। इस

सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालो को
रूलिंग के कारण सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालो को
यह अनुभव होने लगा है कि एक्ट से इस आशय का सुधार होना
चाहिये, बम्बई प्रान्तीय एक्ट मे इस आशय का संशोधन कर
दिया गया है। बम्बई प्रान्त मे समिति का केवल ऊपर लिखी
वस्तुओ के लिये,दिये हुए ऋण पर ही प्रथम अधिकार नही होता,
वरन सब प्रकार की चीज़ो के लिये दिये हुए ऋण पर अधिकार
होता है। किन्तु यह प्रथम अधिकार सरकारी मालगुज़ारी,
ज़मीदार की लगान, तथा किसी ऐसे लेनदार के अधिकार को नष्ट
नही करता जिसने यह न जानते हुए कि इस वस्तु पर समिति का
अधिकार है उसको खरीद लिया हो। (धारा १९)

समिति के सदस्य का हिस्सा कोई भी लेनदार अपने ऋण के
लिये कुर्क़ नही करवा सकता। किसी भी वर्तमान अथवा भूतपूर्व
सदस्य के जमा किये हुए रुपये तथा उसके लाभ के हिस्से को ऋण
के बदले मे ले लेने का समिति को अधिकार है। बाहरी लेनदार
कुर्की कराकर इस रुपये को नही लेसकता। (धारा २०-२१)।

किसी सदस्य के मरने पर अपरिमित दायित्व वाली समिति
को यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो मृत सदस्य के वारिस
को हिस्सा दे दे अथवा उसका मूल्य चुका दे। किन्तु परिमित
दायित्व वाली समिति को मृत सदस्य के उत्तराधिकारी को
अवश्य ही हिस्सा देना होगा। (धारा २२)।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स तथा सुपर-टैक्स

नही लिया जाता, और न सदस्यो के लाभ पर टैक्स लिया जाता है।

सहकारी समिति केवल अपने सदस्यो को ही कर्ज दे सकती है, किन्तु रजिस्ट्रार की आज्ञा लेकर समिति दूसरी समितियो को भी कर्ज दे सकती है। बिना रजिस्ट्रार की आज्ञा के अपरिमित दायित्व वाली समिति चल जायदाद (moreable propeity) की जमानत पर कर्ज नही दे सकती ( धारा २६ )।

सहकारी समितियां अपने उपनियमो के द्वारा निश्चित रकम से अधिक ऋण और डिपाजिट नही ले सकती। इसी कारण प्रत्येक समिति प्रति वर्ष अपनी साख निर्धारित करती है। सहकारी साख समितियां उन व्यक्तियो का रुपया डिपाज़िट कर सकती है जो सदस्य नही है। ( धारा ३० )।

समिति निम्न लिखित स्थानो मे अपना धन जमा कर सकती है, अथवा लगा सकती है।

(१) सरकारी सेविंगस बैंक। (२) ट्रस्टी सिक्योरिटी। (३) किसी अन्य सहकारी समिति के हिस्सो मे। (४) किसी भी बैंक मे जिसमे रुपया जमा करने की अनुमति रजिस्ट्रार ने दे दी हो। ( धारा ३२ )।

साधारणतया समिति का लाभ तथा उसका जमा किया कोष बांटा नही जा सकता, केवल निम्न लिखित दशाओ मे वह बांटा जा सकता है।

परिमित दायित्व वाली समितियो मे एक चौथियाई लाभ रक्षित कोष ( reserve fund ) मे जमा करने के उपरान्त सदस्यो मे बांटा जा सकता है। किन्तु इसके लिये भी रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रतिबंध इस कारण लगाया गया है कि कहीं सदस्यो का उद्देश्य केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना ही न हो जावे।

अपरिमित दायित्व वाली समितियों मे लाभ प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से ही बांटा जा सकता है। प्रान्तीय सरकार साधारण आज्ञा ( जनरल परमिशन ) भी दे सकती है। प्रत्येक प्रान्त ने यह नियम बना दिया है कि प्रत्येक समिति जिसके व्यापार में लाभ होता है लाभ का कुछ अंश रक्षित कोप मे रक्खेगी। रक्षित कोष समिति के भंग होजाने पर भी सदस्यो में बांटा नहीं जा सकता।

रक्षित कोष या तो समिति के व्यापार मे लगाया जाता है, या रजिस्ट्रार के पास रहता है अथवा रजिस्ट्रार की आज्ञा से और कहीं जमा कर दिया जाता है। समिति के भंग हो जाने पर समिति के ऋण को चुका कर जो रुपया बचे, उसका उपयोग समिति के निर्णय के अनुसार होगा। यदि समिति इसका निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार जिस प्रकार उस धन का उपयोग करना चाहे कर सकता है। कुछ प्रान्तो मे यह नियम है कि यदि समिति किसी अन्य सहकारी संस्था की सदस्य हो तो रक्षित कोप का बचा हुआ रुपया उसको दे दिया जावे।

ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक समिति चौथियाई लाभ रक्षित कोष मे रखने के उपरान्त लाभ का १० प्रति शत दान तथा सार्वजनिक कार्यो पर व्यय कर सकती है। वे कार्य निम्न लिखित हो सकते है:— निर्धनो को सहायता, सार्वजनिक शिक्षा, गांवो तथा उन स्थानो मे जहां समितियां है। औषधि मुफ्त बटवाने का प्रबंध, तथा अन्य सार्वजनिक हित के कार्य। कोरी धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक शिक्षा पर वह रुपया व्यय नही किया जा सकता। ( धारा ३४ )।

यदि उस जिले का जिलाधीश जिसमे कि समिति हो जांच के लिये प्रार्थना करे, यदि समिति की पंचायत प्रार्थनापत्र भेजकर जाच करवाना चाहे, अथवा समिति के एक तिहाई सदस्य जांच करवाना चाहे, तो रजिस्ट्रार को स्वयं या अपने किसी आधीनस्थ कर्मचारी से अवश्य जांच करवानी होगी। वैसे रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह जब चाहे समिति की जांच कर सकता है। ( धारा ३५ )।

समिति के किसी भी लेनदार को यह अधिकार है कि वह समिति के हिसाब का, रजिस्ट्रार, अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी कर्मचारी से निरीक्षण करवावे। किन्तु लेनदार को जांच करने का व्यय देना होगा और उतना रुपया उसको पहिले जमा करना पड़ेगा। ( धारा ३६ )

रजिस्ट्रार निम्न लिखित दशाओ मे किसी भी समिति को भंग कर सकता है।

(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जांच करवाई हो और उससे यह प्रतीत हो कि समिति को भंग कर देना चाहिये, तो वह भंग कर सकता है।

(२) यदि समिति के तीन चौथियाई सदस्य समिति को भंग करदेने की प्रार्थना करें तो समिति भंग होजाती है। भंग करने की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी सदस्य प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है। किन्तु भंग होने के दो मास के उपरान्त अपील नहीं सुनी जाती। (धारा ३६)।

(३) यदि समिति के सदस्यो की संख्या १० से कम होजावे तो समिति स्वतः ही भंग होजाती है। (धारा ४०)

समिति के भंग होजाने के उपरांत वे सब सुविधायें जो कि समिति को प्रदान की गई हैं नहीं रहतीं। जब समिति भंग हो जाती है तब रजिस्ट्रार एक लिक्टीडेटर नियुक्त करता है जो उसका शेष कार्य करता है। लिक्टीडेटर का यह कर्त्तव्य होता है कि वह समिति की सम्पत्ति तथा देनी (Liabilities) का हिसाब बनावे, जिन लोगो पर समिति का रुपया बाक़ी है उनसे वसूल करे, जिनकी समिति ऋणी है उनका ऋण चुकावे, तथा सदस्यो के दायित्व को निश्चय करे, और उनसे रुपया वसूल करे। (धारा ४१ और ४२)।

इंडिया एक्ट ने प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार देदिया है कि वे सहकारी समितियो तथा उनके सदस्यों के झगड़ों को निबटाने

के लिये कुछ नियम बनादे। सभी प्रांतो ने इस आशय के नियम बना लिये है। सहकारी समितियो के लिये यह नियम अत्यन्त आवश्यक हैं। सहकारी समितियो का उद्देश्य निर्धन मनुष्यो की आर्थिक अवस्था का सुधार करना है, उनमे स्वावलम्बन का भाव जागृत करना, तथा उन्हे मितव्ययिता का पाठ पढ़ाना है। यह उद्देश्य तब तक कभी पूरा नही हो सकता जब तक कि यह लोग मुक़दमेबाजी मे व्यय करते रहेगे। रजिस्ट्रार निम्न-लिखित झगड़ो का निबटारा कर सकता है।

(१) जिससे समिति के व्यापार का सम्बन्ध है।

(२) जिसमे सदस्यो का आपस मे किसी बात पर झगड़ा हो भूतपूर्व सदस्यो मे कोई झगड़ा हो, अथवा समिति के पंचो मे कोई झगड़ा हो। यदि सदस्य, भूतपूर्व सदस्य,होने वाले सदस्य पंचायत तथा समिति के कर्मचारियो के अतिरिक्त और किन्ही मे झगड़ा हो, तो रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा नियुक्त मनुष्य तय नही कर सकते। उसके लिये साधारण अदालतो मे जाना होगा।

रजिस्ट्रार या तो स्वयं इन झगड़ो को तय कर सकता है अथवा एक पंच या तीन पंच नियुक्ति कर सकता है जो झगड़ा तय कर दे।

प्रत्येक पेशी के लिये वादियो को उचित नोटिस दिया जाता

है। रजिस्ट्रार अथवा पंचों को शपथ लेने, तथा वादियो और गवाहो को उपस्थिति होने के लिये आज्ञा देने का, तथा काग़ज़ों को मंगवाने का अधिकार है। यदि एक वादी उपस्थिति नहीं होता तो उसकी अनुपस्थिति मे फैसला किया जा सकता है। गवाही के लिये गवाह के उपस्थित न होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। रजिस्ट्रार तथा पंच ऐवीडैन्स ऐक्ट के नियमों को मानने के लिये बाध्य नहीं है।

यद्यपि रजिस्ट्रार तथा पंचो पर कानूनी बंधन लागू नहीं हैं फिर भी उनको यह प्रयत्न करना चाहिये कि वे दोनो वादियो एक को दूसरे के सामने भली भांति सुने। प्राइवेट रूप से जो कुछ भी झगड़े के विषय मे ज्ञात हुआ हो उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। रजिस्ट्रार को तथा पंचों को यह भी अधिकार है कि केवल कानून को ही न देखें वरन् वस्तु परिस्थिति को भी देखे। फ़ैसला लिखित होना चाहिये उस पर स्टैम्प नहीं होता। वकीलो का इन मुकदमो मे आज्ञा मिलने पर ही आना हो सकता है। बम्बई मे वकील इन मुक़दमो मे किसी दशा में भी नही आ सकते।

यदि रजिस्ट्रार ने कोई पंच नियुक्त किया हो तो उसके फैसले के विरुद्ध·अपील रजिस्ट्रार से अपील की जा सकती है किन्तु रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध अपील नहीं होती। बम्बई में रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध अपील प्रान्तीय सरकार से हो

सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले ठीक उसी तरह लागू होते है जिस तरह कि अदालत के। ( धारा ४३ उपधारा यल )

रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध केवल दो अवस्थाओ मे प्रान्तीय सरकार से अपील की जा सकती है। (१) जब रजिस्ट्रार किसी समिति को रजिस्टर करने से इनकार करे। (२) जब रजिस्ट्रार किसी समिति को भंग करदे। आज्ञा से दो महीने तक अपील हो सकती है।

---

# पांचवा परिच्छेद

## कृषि सहकारी साख समितियां

१६०४ मे जब सहकारिता आन्दोलन का श्री गणेश किया गया तो केवल यह लक्ष्य था कि ग्रामीण ;जनता की सम्मिलित साख का उपयोग करके ग्रामीण जनता के लिये साख की समस्या हल करदी जावे। अन्य धंधो की भांति खेती बारी मे भी पूंजी उधार लेने की आवश्यकता पड़ती है। भारतीय कृषक की निर्धनता, उसका अशिक्षित होना, तथा महाजन का भयंकर ऋण उसको महाजन का क्रीत दास बना देता है। इसी कारण भारत सरकार ने सहकारी साख समितियो की स्थापना करवाई।

सहकारी कृषि साख समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो खेती-बारी मे लगे हो तथा एक ही गांव अथवा समीपवर्ती गांवो मे रहते हो। प्रत्येक गांव का निवासी एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से भली भांति परिचित होता है तथा एक दूसरे के चरित्र के विषय मे भी जानकारी रखता है। रैफीसन सहकारी साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती हैं इस कारण यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति से भलो भांति परिचित हो। यदि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति को भली भांति न जानते हो तथा एक दूसरे मे विश्वास न करते हो तो वे अपरिमित दायित्व कभी स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के सिद्धान्त अनुसार

प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिये वाध्य है।

यही कारण है कि कोई नवीन सदस्य तभी समिति में लिया जा सकता है जब कि और सब सदस्य उसको सदस्य बनाने के पक्ष मे हो। सहकारी साख समिति का सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के कार्यों का उत्तरदायी बन जाता है, इस कारण सर्व सम्मिति से ही किसी नवीन सदस्य को चुना जाता है। अधिकतर एक गांव मे एक ही साख समिति स्थापित की जाती है, किन्तु यदि गांव वहुत वड़ा हो जिसके कारण एक समिति सब वर्गों के लिये उपयोगी न हो सके तो एक से अधिक समितियां भी स्थापित की जा सकती है। भिन्न भिन्न जातियो, तथा भिन्न भिन्न धर्मावलम्वियो को पृथक् समितिया स्थापित की जा सकती है। किन्तु सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वाले सरकारी तथा गैर सरकारी कार्यकर्त्ता इस प्रकार की समितियो को प्रोत्साहन नही देते। सैन्ट्रल बैंकिग इनक्वायरी कमेटी की सम्मति मे किसी विशेप जाति, पेशे, तथा धर्मा-वलम्वियो की साख समितियां स्थापित करना उचित नही है। गांव मे जितने भी मनुष्य हो उन सब की एक ही समिति होना आवश्यक है। ऐसी साख समिति गांव के प्रत्येक मनुष्य को एक आर्थिक सूत्र में बांध कर उनमें प्रेम भाव उत्पन्न करती है।

समिति का प्रवंध करने का अधिकार साधारण सभा तथा प्रवंध कारिणी सभा अर्थात पंचायत को होता है। साधारण-सभा

सब महत्व पूर्ण प्रश्नो पर अपना स्पष्ट मत दे देती है और पंचायत साधारण सभा की आज्ञाओ का पालन करती है। वस्तुतः साधारण सभा केवल नीति निर्धारित करती है, और पंचायत सारा कार्य करती है।

प्रबंध कारिणी समिति निम्न लिखित कार्य करती है :—

(१) वह सदस्यो को हिस्से देती है तथा उनको समिति का सदस्य बनाती है।

(२) ग्राम से डिपाज़िट लेनेका प्रयत्न करती है, तथा सैन्ट्रल बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। पंचायत का सबसे महत्व पूर्ण कार्य यह है कि वह सदस्यो तथा अन्य ग्राम निवासियो को समिति मे रुपया जमा कमा करने के लिये प्रोत्साहित करती है।

(३) जब कभी आवश्यकता हो तो साधारण सभा का आयोजन करती है।

(४) पंचायत यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यो को कितने समय के लिए उधार दिया जावे। साथ ही पंचायत उस अवधि के अन्त मे ऋण के रुपये को वसूल करती है।

(५) पंचायत समिति के आय व्यय का हिसाब रखती है।

(६) समिति सम्बन्धी कार्यों मे रजिस्ट्रार से लिखा पढ़ी करती है।

(७) जो सदस्य कि सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुओं

को खरीदना चाहते है तथा खेत की पैदावार को बेचना चाहते हैं उनके लिये दलाल का काम करती है।

सदस्यो मे मितव्ययिता का प्रचार करती है तथा उन्हे अपनी बचत को जमा करने के लिये उत्साहित करती है।

पंचायत, सरपंच तथा मंत्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति के सारे कार्य की देख भाल रखता है तथा मन्त्री समिति का हिसाब रखता है।

समिति प्रवेश फीस, हिस्सो का मूल्य, डिपाजिट, तथा ऋण के द्वारा कार्यशील पूँजी उगाहती है। समिति का रक्षित कोष भी समिति की कार्यशील पूँजी को बढ़ता है। प्रवेश फीस नाम मात्र की होती है और प्रारम्भिक व्यय के लिये लीजाती है, जो समिति की स्थापना करते समय करना पड़ता है। कुछ प्रान्तो में सदस्यो को हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रांतो मे हिस्से नही होते। पंजाब, संयुक्त प्रांत, और बर्मा के अधिकतर भाग मे, तथा मदरास मे, समितियां हिस्से वाली होती है। अन्य प्रांतो मे हिस्से तथा ग़ैर हिस्से वाली समितियां दोनो ही दृष्टिगोचर होती है।

भारतवर्ष मे सहकारी साख समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये अथवा ग़ैर हिस्से वाली यह विचारणीय विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये क्योकि हिस्सो को बेचकर थोड़ी कार्यशील पूँजी इकट्ठी करली जाती है। समिति अपनी पूँजी सदस्यो को ऋण स्वरूप देकर

उस पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष की वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों मे विशेष चाव से भाग लेने लगते है क्योकि वे उसे अपनी वस्तु समझते हैं। यह सब ठीक है, किन्तु भारतवर्ष मे गांवो में रहने वाले इतने निर्धन हैं कि वे किसी प्रकार भी हिस्से का मूल्य नहीं चुका सकते, ऐसी अवस्था मे यदि हिस्से वाली समितियां स्थापित की जावेंगी तो वे ईमानदार तथा परिश्रमी किसान जो कि निर्धन है सदस्य न बन सकेगे। लेखक के विचार से ग़ैर हिस्से वाली समितियां ही उपयुक्त होगी। यदि सदस्यो को सहकारिता के सिद्धान्तों की भली भाति शिक्षा दीजावे तो वे समिति के कार्य मे अधिक भाग लेने लगेगे और उन मे मितव्ययिता के भाव जागृत हो सकेंगे। सदस्यो को सदस्य वनाते समय यह भी बतलाना चाहिये कि साख समिति केवल ऋण देने के ही लिये नहीं है, सदस्यो को उसमें रुपया भी जमा करना चाहिये।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रक़म से अधिक के हिस्से नही ख़रीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। प्रवेश फीस तथा हिस्सो के मूल्य से समिति के पास नाम मात्र को पूँजी इकट्ठी होती है इस कारण समितियां अधिकतर ऋण और डिपाजिट के द्वारा अपना काम चलाया करतो हैं। जितनी ही अधिक कोई समिति डिपाज़िट आकर्षित करे उतनी ही उसकी सफलता समझी जानी चाहिये क्यों-कि डिपाज़िट तभो अधिक जमा होगीं जब कि जनता को समिति

को खरीदना चाहते है तथा खेत की पैदावार को बेचना चाहते हैं उनके लिये दलाल का काम करती है।

सदस्यो मे मितव्ययिता का प्रचार करती है तथा उन्हे अपनी बचत को जमा करने के लिये उत्साहित करती है।

पंचायत, सरपंच तथा मंत्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति के सारे कार्य की देख भाल रखता है तथा मन्त्री समिति का हिसाब रखता है।

समिति प्रवेश फीस, हिस्सो का मूल्य, डिपाज़िट, तथा ऋण के द्वारा कार्यशील पूँजी उगाहती है। समिति का रक्षित कोष भी समिति की कार्यशील पूँजी को बढ़ता है। प्रवेश फीस नाम मात्र की होती है और प्रारम्भिक व्यय के लिये लीजाती है, जो समिति की स्थापना करते समय करना पड़ता है। कुछ प्रान्तो मे सदस्यो को हिस्से खरीदने पड़ते है और कुछ प्रांतो मे हिस्से नही होते। पंजाब, संयुक्त प्रांत, और बर्मा के अधिकतर भाग मे, तथा मदरास मे, समितियां हिस्से वाली होती है। अन्य प्रांतो मे हिस्से तथा ग़ैर हिस्से वाली समितियां दोनो ही दृष्टिगोचर होती है।

भारतवर्ष मे सहकारी साख समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये अथवा ग़ैर हिस्से वाली यह विचारणीय विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये क्योकि हिस्सो को बेचकर थोड़ी कार्यशील पूँजी इकट्ठी करली जाती है। समिति अपनी पूँजी सदस्यो को ऋण स्वरूप देकर

उस पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष की वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों मे विशेष चाव से भाग लेने लगते है क्योकि वे उसे अपनी वस्तु समझते हैं। यह सब ठीक है, किन्तु भारतवर्ष मे गांवो मे रहने वाले इतने निर्धन है कि वे किसी प्रकार भी हिस्से का मूल्य नही चुका सकते, ऐसी अवस्था मे यदि हिस्से वाली समितियां स्थापित की जावेंगी तो वे ईमानदार तथा परिश्रमी किसान जो कि निर्धन हैं सदस्य न बन सकेंगे। लेखक के विचार से ग़ैर हिस्से वाली समितियां ही उपयुक्त होगी। यदि सदस्यो को सहकारिता के सिद्धान्तों की भली भाति शिक्षा दीजावे तो वे समिति के कार्य मे अधिक भाग लेने लगेंगे और उन मे मितव्ययिता के भाव जागृत हो सकेंगे। सदस्यो को सदस्य बनाते समय यह भी बतलाना चाहिये कि साख समिति केवल ऋण देने के ही लिये नहीं है, सदस्यो को उसमें रुपया भी जमा करना चाहिये।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रक़म से अधिक के हिस्से नही खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। प्रवेश फीस तथा हिस्सो के मूल्य से समिति के पास नाम मात्र को पूॅजी इकट्ठी होती है इस कारण समितियां अधिकतर ऋण और डिपाजिट के द्वारा अपना काम चलाया करती हैं। जितनी ही अधिक कोई समिति डिपाज़िट आकर्षित करे उतनी ही उसकी सफलता समझी जानी चाहिये क्योंकि डिपाज़िट तभी अधिक जमा होगी जब कि जनता को समिति

का भरोसा होगा, और उसकी आर्थिक स्थित मे विश्वास होगा। साख समितियो का आदर्श यह होना चाहिये कि वे अपनी आवश्यकता के लिये पूंजा का स्वय ही प्रबन्ध करे। जब तक कि साख समितिया डिपाज़िट आकर्पित करके अपनो आवश्यकता के अनुसार पूंजी जमा नही कर सकती तब तक उन को निर्बल ही समझना चाहिये। जमा करने से ग्रामीण जनता तथा सदस्यो मे मितव्ययिता का भाव जागृत होता है। भारतवर्ष मे अभी तक बंबई प्रान्त को छोड़ और किसी प्रात मे समितियो ने डिपाज़िट आकर्षित नहीं कर पाई है। साख समितियां गैर सदस्यो से भी डिपाज़िट लेती है, किन्तु सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का यह मत है कि सहकारी साख समितियो को अधिक सूद देकर डिपाजिट आकर्षित न करना चाहिये। क्योकि यदि समितियां डिपाज़िट पर अधिक सूद देगी तो सूद की दर गांवो मे न घट सकेगी जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक कि सैन्ट्रल बैक सुसंगठित न हो तब तक वे साख समितियो की पूंजी के सन्तुलन केन्द्र नही बन सकते। और जब तक कि सैन्ट्रल बैंक समितियो की आवश्यकता से अधिक पूंजी का उचित उपयोग करने के योग्य न हो जावे, तथा आवश्यकता पड़ने पर समितियो को शीघ्र ही पूंजी देने की योग्यता प्राप्त न करले, तब तक ग़ैर सदस्यो से डिपाज़िट लेना जोखिम का काम है। क्योकि तनिक भी सन्देह हो जाने पर गैर सदस्य अपना रुपया लेने को दौड़ पड़ेंगे।

समिति के पंचो को कोई वेतन नही दिया जाता केवल मंत्री को

थोड़ासा वेतन दिया जाता है। मंत्री यदि उसी गांव का रहने वाला हो तो अच्छा है क्योकि वह सदस्यों से भली भांति परिचित होगा परन्तु गांव के पटवारी को किसी भी अवस्था मे मन्त्री न बनाना चाहिये, क्योकि पटवारी का गांव मे बहुत प्रभाव होता है इस कारण सम्भव है कि वह पंचायत के अनुशासन मे न रहे और सदस्य उससे दबते रहें। यदि गांवकी समितिमे कोई शिक्षित सदस्य हो तो उसको मन्त्री बनाया जाना चाहिये परन्तु यदि कोई सदस्य न मिले तो गांव के शिक्षक को मन्त्री बनाना चाहिये।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि सहकारी साख समितियों की स्थापना लाभ की दृष्टि से नही की जाती, इसी कारण अपरिमित उत्तर दायित्व वाली समितियो मे तो लाभ बांटा ही नहीं जाता, और यदि बांटा भी जाताहै तो प्रान्तीय सरकार की आज्ञा लेकर। परिमित दायित्व वाली समितियां लाभ बांट तो सकतीं हैं परन्तु उनको भी यथेष्ट धन रक्षित कोष मे जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियो का प्रबंध व्यय बहुत कम होने के कारण तथा लाभ न बांटने के कारण रक्षित कोप यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिये रक्षित कोप अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कि समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे तब तक वह सबल नही बन सकती। रक्षित कोष किसी भी अवस्था मे बांटा नहीं जासकता; उसका उपयोग समिति के कार्य मे हानि होने पर उसे पूरा करने मे होता है, यदि किसी देनदार से रुपया वसूल नहीं हुआ अथवा किसी वस्तु के बेचने

मे हानि हो गई तो रक्षित कोष से उसको पूरा किया जाता है। यदि समिति भंग हो जावे तो भी या तो रक्षित कोष किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा, या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक कार्य मे व्यय कर दिया जावेगा। साधारणतया परिमित दायित्व वाली समितिया अपने रक्षित कोष को अपने व्यापार मे न लगाकर बाहर किसी बैंक मे रखती है किन्तु ऐसा वे ही समितियां करती है जो कि ग़ैर सदस्यो का रुपया भी जमा करती है। किन्तु अपरिमित दायित्व वाली समितियां रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य मे लगाती है; बाहर जमा नहीं करती।

यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि कृषि साख सहकारी समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती है और नगर साख समितियां, तथा जिन समितियो के अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते वे चाहे परिमित चाहे अपरिमित दायित्व स्वीकार कर सकती है। किन्तु जिन सहकारी समितियो की सदस्य अन्य समितियां हों उनका दायित्व परिमित ही होगा। ऐसी समितियां प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेकर ही अपरिमित दायित्व वाली बन सकती हैं। भारतवर्ष मे सब सैन्ट्रल बैंक, बैंकिग यूनियन, तथा अधिकतर नगर सहकारी, तथा वैसी साख समितियां जिनमे, अधिकतर किसान सदस्य नहीं होते, परिमित दायित्व वाली होती हैं, तथा किसानों की साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती है।

यदि किसी समिति को हानि होजावे तो सर्व प्रथम उस

सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा जिसने कि ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो ज़मानत देने वाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे भी वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भरदी जावेगी। यदि उससे भी हानि पूरी न हुई तो समिति की पूँजी का उपयाग किया जावेगा, यदि समिति की पूँजी देकर भी हानि पूरी न होसके तो समिति के सदस्यो को समिति के देनदारो को रुपया चुकाना होगा। प्रत्येक सदस्य को कितना रुपया देना होगा, लिक्टीडेटर इसका हिसाब लगाकर उनसे उतना रुपया वसूल कर लेगा। व्यवहारिक दृष्टि से अपरिमित दायित्व का यही अर्थ निकलता है, किन्तु सिद्धांतरूप से प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सारे ऋण को चुकाने को वाध्य है। किन्तु यह उसी दशा मे हो सकता है कि जब और सदस्यो से रुपया वसूल न होसके।

साधारण सभा अपनी मीटिंग मे समिति की साख निर्धारित करती है उससे अधिक पंचायत ऋण नही ले सकती।

समिति की साख को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि समिति के सदस्यों की सम्पत्ति का हिसाब लगाया जावे। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तो मे समिति के सब सदस्यो की सम्पत्ति की एक चौथियाई से आधी तक साख निर्धारित की जाती है। समिति एक हैसियत रजिस्टर रखती है जिसमे प्रत्येक सदस्य की हैसियत का लेखा रहता है। हैसियत रजिस्टर का प्रति वर्ष संशोधन होता है और प्रत्येक सदस्य की हैसियत का यथार्थ लेखा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक कितना उधार ले सकता है । किसी अवस्था मे भी सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रति शत से अधिक उधार नहीं दिया जासकता । रुपया उधार देते समय पंचायत क़र्ज़ा लेने का उद्देश्य तथा सदस्य की चुकाने की शक्ति का अनुमान लगा कर ही क़र्ज़ा देना निश्चय करती है ।

सहकारिता आन्दोलन का सिद्धांत है कि ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिये अथवा व्यर्थ-कार्यों के लिये न दिया जावे । किन्तु भारतवर्ष मे सहकारी साख समितियां विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी उधार देती हैं, पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जांच करे कि सदस्य क़र्ज़ा किस कार्य के लिये लेरहा है। साथ ही पंचायत को इस बात का भी पता लगाना चाहिये कि सदस्य ने उसी कार्य मे धन व्यय किया है कि जिसके लिये कर्ज़ा दिया गया था, अथवा किसी अन्य कार्य मे । यदि सदस्य ने किसी काम मे रुपया लगाया है तो पंचा-यत को रुपया वापिस ले लेना चाहिये ।

सहकारी साख समिति के सदस्यो को एक दूसरे पर दृष्टि रखनी चाहिये कि वे धन का दुरुपयोग तो नही करते, समय पर कर्ज़ा चुकाते हैं, अथवा किश्तो को टालने का प्रयत्न करते है ।

पंचायत ऋण देते समय ही सदस्य की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए किश्तें बांध देती है क्यों कि सदस्यो को किश्तो के

द्वारा ऋण चुकाने मे सुविधा होती है। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह देखे कि सदस्य समय पर किश्ते चुकाता है। किन्तु किसी अनिवार्य कारण वश यदि वह किश्त न चुका सके (जैसे फसल नष्ट हो जाना) तो किश्त की मियाद बढ़ा देना चाहिये और सदस्य पर दबाव नही डालना चाहिये।

अधिकतर नीचे लिखे कार्यों के लिये समितियां ऋण देती है।

(१) खेती-बारी के लिये,मालगुजारी तथा लगान देने के लिये।
(२) भूमि का सुधार करने के लिये।
(३) पुराने ऋण को चुकाने के लिये।
(४) गृहस्थी के कार्यों के लिये।
(५) व्यापार के लिये।
(६) भूमि खरीदने के लिये।

जो आंकड़े सहकारी विभाग से हम को प्राप्त होते हैं उन से यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किन कार्यों के लिये कितना रुपया लिया जाता है। सदस्य प्रार्थना पत्र मे तो खेती बारी के लिये रुपया लेने की बात लिखता है और उस रुपये को व्यय करता है किसी सामाजिक कार्य पर। समितियों ने अभी तक इस ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया है।

समय की दृष्टि से दो प्रकार के ऋण होते हैं, अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। थोड़े समय के लिये

जो ऋण लिया जाता है, उसका उपयोग खेती-बारी के धंधे मे (अर्थात् बीज, खाद, बैल, हल आदि वस्तुओं के ख़रीदने मे) तथा अन्य आवश्यक खर्चों मे होता है। अधिक समय के लिये लिया हुआ ऋण, भूमि ख़रीदने मूल्यवान यन्त्र लेने, तथा पुराना कर्ज़ा चुकाने के काम आता है। प्रान्तीय वैंकिंग इन-कायरी कमेटियो की यह सम्मति है कि कृषि सहकारी साख समितियां अपने सदस्यो को तीन वर्षों से अधिक ऋण नहीं दे सकती। लम्बे समय के लिये ऋण देने का कार्य सहकारी भूमि बंधक वैंक ही कर सकते हैं। सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालो की भी यही धारणा है कि सहकारी कृषि साख समितियां अधिक समय के लिये ऋण देने का कार्य नही कर सकती।

सहकारी कृषि साख समिति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तो को समझें। अस्तु समिति का संगठन करते समय उन्हे सहकारिता के सिद्धान्तो की शिक्षा देनी चाहिये। भारतवर्ष मे अभी तक ग्रामीण सदस्य यह समझता है कि सहकारी साख समितियां सरकार द्वारा खोले हुये वैंक है जो हम लोगो को ऋण देते है। वे कभी स्वप्न मे भी यह नही सोचते कि यह हमारी ही समिति है और हम अपरमित दायित्व के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक स्वावलंबन का यह भाव सदस्यो मे जागृत नही होता तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नही हो सकता। इसी कमी के ही कारण साख आन्दोलन अभी तक सफल नहीं हो सका।

समितियो का आय व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार की अधीनता मे होता है। रजिस्ट्रार या तो सहकारी विभाग के आय-व्यय निरीक्षको से जांच कराता है और यदि आय-व्यय निरीक्षक का कार्य किसी ग़ैर-सरकारी संस्था को दे दिया गया हो तो रजिस्ट्रार उस संस्था के आडिटरो को लायसैंस देता है तभी वह आय व्यय निरीक्षण का कार्य कर सकते है।

आडिटर समिति के आय व्यय की जांच तो करता ही है, साथ ही वह इस बात की भी जांच करता है कि कितना रुपया सदस्यो पर उधार है जिसके चुकाने की अवधि समाप्त होगई किन्तु चुकाया नही गया। इसके अतिरिक्त वह समिति की लेनी देनी का भी हिसाब देखता है। आय व्यय निरीक्षक का कर्तव्य केवल आय-व्यय देखना ही नहीं है किन्तु उसको यह भी देखना चाहिये कि समिति का कार्य सहकारिता के सिद्धान्तो के अनुसार हो रहा है अथवा नही। आय-व्यय निरीक्षक को समिति की आर्थिक स्थिति की पूरी जांच करना चाहिये। उसे देखना चाहिये कि ऋण उचित समय के लिये तथा उचित कार्यों के लिये दिये गये है, तथा आवश्यक जमानत ली गई है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त उसे यह भी देखना चाहिये कि सदस्य ठीक समय पर ऋण चुकाते है कि नही। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि सदस्य ठीक समय पर न चुकाते हो किन्तु हिसाब मे उनका रुपया जमा कर लिया जाता हो और उतना ही ऋण फिर दे दिया जाता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि निरीक्षक को पूरी जांच करना चाहिये।

भारतवर्ष मे आय व्यय निरीक्षण का कार्य भली भांति नहीं हो रहा है। सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालों, तथा सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी की यह राय है कि आय व्यय निरीक्षण का कार्य अत्यन्त त्रुटि पूर्ण है।

यद्यपि प्रत्येक प्रान्त मे आय व्यय निरीक्षण का कार्य रजिस्ट्रार की देख रेख मे होता है परन्तु प्रत्येक प्रान्त मे भिन्न भिन्न संस्थाये इस कार्य को कर रही हैं। पंजाब में प्रांतीय सहकारी इंस्टिट्यूट के कर्मचारी तथा बिहार उड़ीसा मे प्रान्तीय फैडेरेशन के कर्मचारी रजिस्ट्रार की देख रेख मे यह काय करते हैं। कुछ प्रान्तो मे रजिस्ट्रार के कर्मचारी आय व्यय निरीक्षण का कार्य करते हैं, तथा कुछ स्थानो मे समितियो ने आय व्यय-निरीक्षक यूनियन स्थापित की हैं जो इस कार्य को करती है।

अप्रैल १९३१ मे आल इण्डिया कोआपरेटिव कानफ्रैंस का अधिवेशन हैदराबाद मे हुआ था। उस सम्मेलन मे समस्त भारत मे आय व्यय निरीक्षण की एक ही पद्धति चलाने का निश्चय हुआ और और उसके अनुसार एक योजना भी तैयार की गई।

उस योजना के अनुसार समितियो का निरीक्षण कार्य सैन्ट्रल बैंक, तथा बैंकिंग यूनियन के हाथ मे ही रहना चाहिये। आय-व्यय निरीक्षण प्रान्तीय संस्थाओ के हाथ मे रहना चाहिये। प्रान्तीय संस्था प्रत्येक जिले मे जिला आडिट यूनियन स्थापित करे उस जिले की सहकारी समितियां तथा सैन्ट्रल बैंक उस

आडिट यूनियन से सम्बन्धित हो, तथा सब ज़िला यूनियन प्रान्तीय संस्था से सम्बन्धित हों। प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट तथा जिला आडिट यूनियन के कर्मचारियो की नियुक्ति तथा अनुशासन प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट करे।

प्रारम्भिक सहकारी समतियो का आय व्यय निरीक्षण ज़िला आडिट यूनियन के आडिटर करें, और सैन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंको का आय व्यय निरीक्षण प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट के आडिटर करें।

प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट तथा ज़िला आडिट यूनियन के आडिटर वही लोग नियत किये जावेगे कि जिन्होने इस कार्य की शिक्षा पाई है और जिनको रजिस्ट्रार ने लायसैंस दे दिया है। यदि कोई आडिटर इस कार्य के योग्य न हो तो रजिस्ट्रार उसका लायसैन्स ज़ब्त करसकता है। इसके अतिरिक्त रजिस्ट्रार आडिट यूनियन तथा प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट के कार्य मे हस्ताक्षेप नही कर सकता।

प्रान्तीय इंस्टिट्यूट नगर बैंक तथा सेंट्रल बैंको से आडिट फीस वसूल करेगी, किन्तु कृषि सहकारी साख समितियों का आय व्यय निरीक्षण निश्शुल्क होना चाहिये इस कारण प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट को आर्थिक सहायता प्रदान करें। अभी तक प्रारम्भिक समितियो से थोड़ी आडिट फीस ली जाती है।

समितियो की देख रेख तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सहकारी संस्था दोनो ही करते हैं।

सहकारी साख समितियां अपने कार्य मे सफल हो रही है अथवा नही इसमे कुछ मतभेद हो सकता है किन्तु इसमे संदेह नही कि वे अभी बहुत निर्बल है और वे वास्तव मे सहकारी नही हैं। इम्पीरियल बैक के मैनेजिग गवर्नर ने सैट्रल बैकिंग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था "इन समितियो मे सहकारिता के सिद्धान्तो की नितान्त अवहेलना की जाती है। ऋण ठीक समय पर कभी नहीं चुकाये जाते, आय व्यय निरीक्षण ठीक नही होता, तथा इन समितियो की देख भाल भी उचित रीति से नही होती"। इसमे कोई संदेह नही कि ऊपर लिखे हुये दोष इन समितियो मे अवश्य है। इम्पीरियल बैक के मैनेजिंग गवर्नर का तो यहां तक कहना है कि अधिकतर सहकारी समितियो की आर्थिक दशा अच्छी नही है, किन्तु जो लोग इस आन्दोलन को चला रहे है उनका कहना है कि यह कथन सत्य नहीं है। शाही कृपि कमीशन की सम्मति है कि आन्दोलन की आर्थिक स्थित अच्छी है, हां समितियो का कार्य दोष पूर्ण है।

सहकारो साख समितियो की संख्या देश के विस्तार तथा जन संख्या को देखते हुए बहुत कम है, किन्तु फिर भी साख समितियो का लाभकारी प्रभाव हमे दृष्टिगोचर होता है। समितियो ने क्रमशः बहुत राशि मे कार्यशील पूँजी जमा करली है और वह पूँजी उचित सूद पर किसानो को दीजाती है और जहां

साख समितियां अधिक संख्या में खुलगई है, वहां सूद की दर महाजनो ने भी घटादी है। आशा है कि वहां भविष्य में किसान को साहूकार के चंगुल से बचाया जासकेगा। साधारण किसानो मे सहकारिता का ज्ञान बढ़ रहा है। सदस्यो मे मित-व्ययिता का भाव जागृत होरहा है, तथा उनको व्यापार सम्बन्धी शिक्षा मिल रही है। यदि प्रत्येक गांव मे एक सहकारी साख समिति की स्थापना हो जावे और वह सफलता पूर्वक कार्य करने लगे तो ग्रामीण जनता का उद्धार हो सकता है।

भारतवर्ष मे कृषि सहकारी समितियों का ही प्रधान्य है। १९३० के जून मास के अन्त मे देश मे ६४,५०० सहकारी साख समितियां थी। जिनमे से ७४५०० सहकारी साख समितिया थीं। १९३०-३१ मे भारतवर्ष के अन्तरगत सब प्रकार की सहकारी समितियो की संख्या केवल १,०६,१६६ थी।

१९३० -३१ मे भिन्न भिन्न समितियो की संख्या इस प्रकार थी-

| | |
|---|---|
| सैन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा प्रान्तीय बैंक | ६०७ |
| सुपरवायजिंग तथा गारंटी यूनियन | १२५६ |
| कृषि तथा पशु बीमा समितियां | ६३,७७३ |
| ग़ैर कृषि समितियां | १०,५३० |

कृषि सहकारी साख समितियो की पूँजी अब थोड़ी नहीं है। ३० जून १९३१ मे इनकी कार्यशील पूँजी ३६ करोड़ रुपये के

लगभग थी और अब इससे अधिक है। ३० जून १६३१ को कृषि सहकारी साख समितियां की कार्यशील पूँजी इस प्रकार थी।

| | |
|---|---|
| हिस्सो की पूँजी | रु० ४,३६,६०,००० |
| रक्षित कोष | ६,५३,६३,००० |
| डिपाज़िट | ३,२६,३१,००० |
| ऋण | २१,७३,७०,००० |
| कुल जोड़ | ३५,६३,५३,००० |

भारतवर्ष मे ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी भयंकर है कि प्रारम्भ मे सहकारी विभाग की दृष्टि केवल साख समितियो पर ही रही और इस समय भी अधिकतर उनकी ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। किन्तु जो लोग इस आन्दोलन मे लगे हुए है उनका कहना है कि यही आन्दोलन की निर्बलता है। जब तक कि साख समितियो के अतिरिक्त क्रय-विक्रय समितियां स्थापित करके किसान को सहायता न दीजावेगी तब तक उसकी आर्थिक स्थिति संभल न सकेगी।

# छटा परिच्छेद

## नगर सहकारी साख समितियां

शहरो की जनसंख्या आर्थिक दृष्टि से तीन विभागो मे बांटी जासकती है। (१) उत्पादन कार्यों मे लगे हुए मनुष्य, (२) व्यापारी अर्थात् दलाल (३) उपभोक्ता समुदाय। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य उपभोक्ता है किन्तु सहकारिता के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न केवल श्रमजीवी समुदाय तथा नियमित वेतन पाने वाले मध्यम श्रेणी के मनुष्य ही करते हैं। इस कारण हम इन्हे ही उपभोक्ता वर्ग मे रखते है। उत्पादक वर्ग मे अनन्त धन राशि के स्वामी मिल मालिको से लेकर छोटे से छोटे जुलाहे अथवा अन्य कारीगर सभी आते जाते है। पूँजी पतियों को साख देने का कार्य सहकारी साख समितियां नहीं कर सकती। उनके लिये व्यापारिक बैंक मौजूद है। सहकारिता आन्दोलन तो केवल निर्बल तथा निर्धनो को ही सहायता पहुंचा सकता है। हां, गृह उद्योग धन्धो मे लगे हुए कारीगरो को सहकारी साख समितिया अवश्य सहायता पहुंचा सकती हैं। व्यापारी वर्ग मे छोटे बड़े सभी व्यापारी आजाते हैं। बड़े बड़े व्यापारियो को सहकारिता आन्दालन कोई सहायना करही नहीं सकता। छोटे बड़े व्यापारियो के लिये भी व्यापारिक बैंक खुले हुए हैं तथा वे अधिक निर्बल नहीं है। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन व्यापारियो के लिये नहीं है। यदि वह थोड़ा बहुत सहायता कर सकता है तो केवल छोटे छोटे निर्धन व्यापारियो की।

साधारणतः उपभोक्ताओ को साख की आवश्यकता न होनी चाहिये क्योकि वह तो अन्तिम खरीदार होता है। वह किसो भी वस्तु को बेचने के लिये नही खरोदता वह तो वस्तु का उपभोग करता है, इस कारण उसको नक़द दाम हो चुकाना चाहिये। उपभोक्ता अपनी आय से अधिक व्यय नही करसकता। यदि उप-भोक्ता उधार मांगता है तो इसका अर्थ है कि वह आय से अधिक व्यय कर रहा है। ऐसी अवस्था मे वह क़र्ज़ को नही चुका सकेगा। अस्तु साधारणतः उपभोक्ताओ को उधार देना जोखिम का काम है। किन्तु किसो किसी अवस्था मे उपभोक्ताओ को भी उधार की आवश्यकता पड़ जाती है। मान लीजिये किसी मनुष्य के पास यथेष्ट सम्पत्ति अथवा धन है किन्तु वह धन कही लगा हुआ है, उस समय नही मिल सकता; किन्तु ठीक ऐसे समय ही उसको किसो आवश्यक कार्य के लिये रुपये की आवश्यकता है। ऐसे समय मे उसे क़र्ज़ के सिवा कोई चारा नही रहता। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी होसकते है कि जिनके पास न तो सम्पत्ति ही है और न उन्होने कुछ बचाया ही है परंतु उन्हे कर्ज़ की आवश्यकता पड़ती है। नौकरो छूट जाने पर तथा घर मे लम्बी बीमारी हो जाने के कारण उन्हे क़र्ज़ लेना पड़ता है, किन्तु इन लोगो के पास जमानत कुछ नही होती। व्यापारिक बैक तो थोड़ा ऋण देते ही नही फिर बिना जमानत के तो वह कदापि ऋण नही देसकते। ऐसे लोगो के लिये नगर सहकारी बैक आवश्यक है। नगर सहकारो बैंक मजदूरी पाने वालो तथा थोड़ा

मिल मजदूरो की सहकारी साख समितियां भी ऊपर लिखी जैसी ही होती हैं। केवल अंतर इतना ही है कि इनके सदस्य अशिक्षित होते हैं तथा वे ऋण भी थोडा लेते हैं। ऐसी साख समितियो के लिये मिल मालिको की सहानिभूति लाभदायक सिद्ध होती है। कुछ विद्वानो का कथन है कि मिल मालिको के द्वारा सदस्यो को दिया हुआ ऋण वसूल किया जावे, किन्तु लेखक का मत इसके विरुद्ध है। यदि मिल मालिक मजदूर के वेतन मे से काट कर ऋण चुकावेगे तो मजदूर समिति को मिल मालिक का बैंक समझेगा, और इस प्रकार मजदूर कभी भी सहकारिता आन्दोलन को न समझ सकेगा। अस्तु, जहा तक हो ऋण वसूल करने मे मिल मालको-की सहायता न ली जावे। फिर भी मिल मालिको की सहानुभूति अत्यन्त आवश्यक है। मिल मजदूरो को सहकारी साख समितियो के निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। बिना उचित निरीक्षण तथा देख भाल के उनका सफल होना कठिन होता है। इस लिये जो पूँजीपति अपने मजदूरो की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहते हो वे एक सुपरवायजर नियुक्त करदे जो उन मिलो के मजदूरो की साख समितियो की देख भाल करता रहे। बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रो के कुछ विवेकशील मिल मालिको ने अपने मजदूरो के हितार्थ साख समितियां स्थापित की है। किन्तु मिल मजदूरो को साख से भी अधिक सहकारी स्टोर्स की आवश्यकता है, जिससे कि वे अपने दैनिक जीवन की वस्तुएं उचित मूल्य पर खरीद सके। इसके अतिरिक्त

सहकारी गृह निर्माण तथा सहकारी श्रम समितियां भी मज़दूरों के लिये उपयोगी होगी।

जातीय सहकारी साख समितियां भी भारतवर्ष मे स्थापित की गई हैं किन्तु वे अधिक सफलता प्राप्त न कर सकीं। कारण यह है कि जातीय सहकारी साख समितियो में प्रारम्भ मे बहुत जोश होता है, किन्तु आगे चल कर जोश ठंडा पड़ जाता है और कार्यकर्त्ता शिथिल हो जाते है। ऋण देते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि ऋण कितना दिया जावे क्योकि जाति भाई से कठोरता का बर्ताव नही किया जा सकता, न उससे वसूल करने मे ही कड़ाई की जा सकती है। यद्यपि जातीय समितियो में ऊपर लिखे दोप होते है फिर भी कुछ समितियां अपनी जातियो की अच्छी सेवा कर रही हैं।

इनके अतिरिक्त नगरो मे गृह उद्योग धन्धो मे लगे हुए कारीगरो को भी साख की आवश्यकता होती है। किन्तु कारीगरों को भी मिश्रित पूँजी वाले बैंक उधार नही देते। कारण यह है कि एक तो कारीगरो को थोड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है जो कि बैंको के लिये लाभदायक नहीं होती दूसरे कारीगरो के पास कोई ज़मानत भी नही होती। बिना जमानत के बैंक किसी को भी ऋण नही देते। इस कारण बेचारे कारीगर उन थोक व्यापारियो के चंगुल मे फॅस जाते है जो कि उनके तैयार माल का व्यापार करते है। यह व्यापारी या तो कारीगरो को कच्चा माल उधार दे देते हैं अथवा उन्हे कच्चा माल लेने के लिये रुपया उधार दे देते हैं।

शर्त यह होती है कि उन्हे तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना होगा। फल यह होता है कि निर्धन कारीगर व्यापारी का चिर दास बन जाता है और व्यापारी के लिये माल तैयार करता रहता है। व्यापारी उसको कम से कम मजदूरी देता है, और इस प्रकार व्यापारी कारीगर का शोषण करता है। कारीगर को इस प्रकार के शोषण से बचाने के लिये नगर सहकारी साख समितियो की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार की साख समितिया प्रत्येक धंधे के लिये पृथक होगी। जैसे जुलाहो के लिये बुनकर साख समिति की स्थापना की जावे और अन्य धधे वालो के लिये पृथक पृथक साख समितिया चलाई जावे।

अभी तक इस देश मे उत्पादक सहकारी साख समितियां अधिक संख्या मे नही खोली गई और न इस आन्दोलन को अधिक सफलता ही मिली है। इसका कारण यह है कि साख समिति केवल पूँजी का प्रबंध करती है। कारीगर को कच्चे माल के लिये, उसी व्यापारी के शरण मे जाना पडता है। अस्तु, जब तक समिति यह तीनो ही कार्य अपने हाथ मे नही ले लेती, तब तक सफलता नही मिल सकती। कारीगर अपने धधो मे कुशल होता है किन्तु कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कला वह नही जानता। इस कारण समिति को यह सब कार्य अपने हाथ मे ले लेना चाहिये।

नगरो मे एक तीसरा समूह है, वह है व्यापार करने वालो का। व्यापारियो के लिये मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैक है, किन्तु

नगरो तथा कस्बों में छोटे छोटे खोमचे वाले, दूकानदार, तथा छोटे व्यापारी भी होते हैं जिन्हें साख की आवश्यकता होती है । इन दूकानदारों के लिये पीपुल्स बैंक (लुञ्जती प्रणाली पर) स्थापित किए जाना चाहिये। भारतवर्ष में अभी तक बहुत थोड़े पीपुल्स बैंक स्थापित किये गये हैं।

**पीपुल्स बैंक:**—मिश्रित पूँजी वाले बैंक बड़े बड़े केन्द्रों में व्यापारियो की सुविधा के लिये अपनी शाखायें रखते हैं और वे निर्धन कारीगर तथा छोटे दूकानदारों को पूँजी नही देते। इस कारण तहसीलो कस्बो तथा छोटे छोटे शहरो में इन लोगों के लिये पीपुल्स बैंक स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है।

पीपुल्स बैंक गृह उद्योग धन्धो को प्रोत्साहित करने के लिये कारीगरो को ऋण देते है, तथा गांव की पैदावार को मंडियो तक पहुँचाने का प्रयत्न करनेवालो को साख देते है। यद्यपि भारतवर्ष मे इन बैको की अत्यन्त आवश्यकता है फिर भी अभी तक बहुत कम बैक खोले जासके है। अन्य जो भी नगर सरकारी बैंक खोले गयेहै वे या तो जातीय बैंक है अथवा किसी एक पेशे मे लगे हुए लोगो के बैंक हैं। बम्बई तथा बंगाल मे अवश्य कुछ ऐसे बैंक सफलता पूर्वक कार्य कर रहे है।

बम्बई प्रान्त मे जिन सहकारी साख समितियो की कार्यशील पूँजी ५०००० रु० से अधिक होती है उन्हे नगर सहकारी बैंक कहते है। १९३८ मे बम्बई प्रान्त मे ७६ नगर सहकारी बैंक थे

नगर सहकारी बैंक तथा व्यापारिक बैंक मे अधिक भेद नहीं है। नगर सहकारी बैंको मे भी सेविंगस, चालू, तथा मुद्दई जमा होती है नगर सहकारी बैंक भी केवल सदस्यो को ही ऋण देते है। नगर सहकारी बैंक बिल तथा हुंडो को भुनाने का काम भी करते हैं। बंगाल तथा बम्बई के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रान्त मे नगर सहकारी बैंको ने हुंडो का काम अभीतक प्रारम्भ नहीं किया है।

नगर सहकारी बैंक शुल्ज डैलिट्ज प्रणाली पर चलाये गये है। इन बैंको की कार्यशील पूँजी, डिपाजिट तथा हिस्सा पूँजी होती है, तथा दायित्व परिमित होता है। नगर सहकारी बैंक का संगठन कृषि साख समिति जैसा ही होता है, केवल यही भेद होता है कि नगर सहकारी बैंको मे २५ प्रति शत लाभ रक्षित कोप मे रख कर बाकी का बांट दिया जाता है।

नगर सहकारी बैंक की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि कर्मचारी बैंकिंग के कार्य मे दक्ष हो, तथा बैंक के प्रबन्धकर्ता भी अनुभवी पुरुष हो। बम्बई के सहकारी नगर बैंको की सफलता का कारण यह है कि वहां सर लल्लू भाई सांमलदास, तथा स्वर्गीय सर विट्ठलदास थैकरसे जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यवसायियो ने इनको सफल बनाने मे सहयोग दिया था।

बम्बई तथा सिन्ध मे कुछ जातीय बैंको को भी अच्छी सफलता मिली है। इनमे शामरा विट्ठल सहकारी बैंक लिमिटेड का नाम उल्लेखनीय है। इस बैंक को सारस्वत ब्राह्मणो ने १९०६ में

स्थापित किया था । इस समय इस बैंक की कार्यशील पूंजी १८ लाख रुपये के लगभग है ।

बम्बई मे मिल मजदूरो की भी सहकारी साख समितियां * हैं । नगर सहकारी बैंको मे एक दोष शीघ्र प्रवेश करजाता है । वे अपने मुख्य कर्तव्य अर्थात सदस्यो में मितव्ययिता के भाव का प्रचार न करके केवल सदस्यो को ऋण देने का कार्य करने लगते हैं । इस दोष की ओर अब ध्यान आकर्षित हुआ है और यह प्रयत्न किया जारहा है कि सदस्य बैंक मे रुपया जमा भी करे ।

नगर सहकारी बैंको से ऋण लेने वाले को व्यक्तियो की जमानत देनी होती है । समिति का प्रबन्ध एक प्रबन्ध कारिणी समिति करती है । एक बात ध्यानमे रखने की है कि मिल मजदूरों के बैंको मे यदि मिल मालिक का कोई भी प्रतिनिधि होता है, तो जो कुछ भी वह करता है वही होता है । साधारण सदस्य को ध्यान भी नहीं होता कि समिति उनकी है ।

मदरास प्रान्त मे एक हजार से अधिक नगर सहकारी साख समितियां हैं । १९३० मे इनकी संख्या १,१४४ थी । पंजाब प्रान्तमें लगभग १ हजार गैर कृषि सहकारी साख समितियां है । बिहार उड़ीसा तथा अन्य प्रान्तो मे भी थोड़ीसी नगर साख सहकारी समितियां खुलगई हैं ।

* इन्हे नगर सहकारी बैंक भी कहते है ।

# सातवां परिच्छेद

## सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन*

आरम्भ मे जब रैफीसन सहकारी साख समितियां भारतवर्ष मे स्थापित की गई तब यह आशा कीजाती थी कि योरोप की ही भांति यहां भी इन समितियो मे ग्रामीण जनता रुपया जमा करेगी और उस रुपये से ऋण देने का काम चल जावेगा। कुछ लोगो का यह विचार था कि नगर सहकारी बैंक ग्रामीण समितियो के लिये भी रुपया इकट्ठा कर सकेंगे। इस कारण १६०४ के एक्ट के अनुसार केवल वे दो प्रकार की साख समितियां ही स्थापित की गई। किन्तु यह आशा कि ग्रामीण जनता इन समितियो मे रुपया जमा करेगी पूरी नही हुई। क्योकि एक तो किसान ऋणी है दूसरे वह बैंक मे रुपया रखने का अभ्यस्त नही है। प्रारम्भ मे सहकारी समितियां संख्या मे कम थी इस कारण उनके लिये कार्यशील पूँजी इकट्ठी करने मे अधिक कठिनाई प्रतीत नही हुई। समितियो मे जो रुपया जमा होता था उसके अतिरिक्त रजिस्ट्रार, प्रान्तीय सरकार, तथा धनी व्यक्तियो से रुपया लेकर काम चलाते थे। इस प्रकार अधिक दिनो काम नही चल सकता था और इस कारण आरम्भ मे आन्दोलन की गति बहुत धीमी रही।

अस्तु, यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैंक

---

* जिला या ताल्लुक़े की साख समितियो को साख देने वाली संस्थाओ को सैन्ट्रल बैंक या बैंकिग यूनियन कहते है।

खोले जावे जो कि नगरो मे प्रारम्भिक सहकारी समितियो के लिये धन इकट्ठा करे। १६१२ मे दूसरा एक्ट पास हुआ और उसके अनुसार सैन्ट्रल बैंक खोलने को सुविधा होगई । १८१० और १६१५ बीच मे सब प्रकार की सहकारी समितियो की संख्या बहुत बढ़ गई तथा सैन्ट्रल बैंको की भी स्थापना की गई। सन् १६१२ मे द्वितीय सहकारिता एक्ट पास होजाने के उपरान्त संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बङ्गाल, तथा मध्य प्रान्त मे बहुत से सैन्ट्रल बैंको की स्थापना हुई। १६१५ से १६२० तक सैन्ट्रल बैंको का औसत ३०१ था और प्रारम्भिक सहकारो समितियो की संख्या २७,५३५, थी। १६२० से १६२५ तक सैन्ट्रल बैंको की संख्या ५०० थी तथा समितियो की संख्या ५५,८६६ थी।

सैन्ट्रल बैंक तीन प्रकार के होते है। (१) ऐसे सैन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल व्यक्ति ही होते हैं। (२) दूसरे प्रकार सैन्ट्रल बैंक वह हैं जिनके सदस्य केवल समितियां ही हो सकती हैं। (३) तीसरे प्रकार के बैंक वह है जिनके सदस्य व्यक्ति तथा समितिया दोनो ही होते है।

पहले प्रकार के बैंक केवल हिस्सेदारो के बैंक होते है जो कि सहकारिता के सिद्धांतो के विरुद्ध है इस कारण अब ऐसे बैंक नहीं रहे। दूसरे प्रकार के बैंक जिनके सदस्य केवल समितियां होती है आदर्श सहकारी सैन्ट्रल बैंक है। समितियां इन बैंको की नीति को निर्धारित करती है तथा बैंक का प्रबन्ध भी उन्ही के हाथ में रहता है। ऐसे बैंक को बैंकिग यूनियन कहते है। इन बैंकिग

यूनियनो का सम्बन्ध ग्रामीण समितियो से होता है, तथा ग्रामीण समितियाँ ही इनका प्रबन्ध करती है। इन बैंकिंग यूनियनो की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि समितियो के सदस्य योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति हो। यही कारण है कि बैंकिग यूनियन संख्या मे अधिक नहीं है। तीसरे प्रकार के सैन्ट्रल बैंक ही अधिक देखने मे आते है। उत्तर भारत मे बैंकिग यूनियन संख्या मे यथेष्ट है और दक्षिण भारत मे बहुत कम।

सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त मे भिन्न होता है। उस क्षेत्र की सहकारी समितियां उसी बैंक से ऋण लेती है। दक्षिण तथा पश्चिमीय भाग मे सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र एक जिला होता है, परन्तु उत्तर भारत मे सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र तहसील होती है, इस कारण इन प्रांतो के सैंट्रल बैंको से सम्बधित समितियो की संख्या तथा पूँजी कम होती है।

**साधारण सभा**—सैन्ट्रल बैंक के हिस्सेदारो की सभा को साधारण सभा कहते है। साधारण सभा के सदस्यो को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियो की भांति जिसने अधिक हिस्से खरीदे है उसको एक से अधिक वोट देने का अधिकार नहीं है। साधारण सभा डायरैक्टरो का निर्वाचन करती है।

बोर्ड-आफ-डायरैक्टर्स बैंक का प्रबन्ध करता है। साधारणतः सैन्ट्रल बैंक के डायरैक्टर संख्या मे अधिक होते है क्योकि बहुत

से स्वार्थों का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक होता है। भिन्न भिन्न प्रान्तो मे डायरैक्टरो की संख्या १० से २४ तक है। इससे यह कठिनाई तो अवश्य होती है कि पूरे बोर्ड को मीटिंग का आयोजन कठिन हो जाता है, इस कारण बोर्ड अपने सदस्यो मे से कार्यकारिणी समितियो का निर्वाचन करता है जो बैंक का कार्य चलाती है। बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मन्त्री, चेयरमैन, तथा कोई एक डायरैक्टर, मैनेजर की सलाह से करता है। डायरैक्टरो को फीस अथवा वेतन कुछ नही मिलता है। कही कही डायरैक्टर समितियो की आवश्यकता को जानने के लिये समितियो का निरीक्षण करते है तथा रिपोर्ट करते है कि उनको कितना ऋण देना चाहिये। डायरैक्टर बदलते रहते है। चेयरमैन तथा मन्त्री व्यक्तियो मे से चुने जाते है। उत्तरीय तथा पूर्वीय भारत मे चेयरमैन कही कही सरकारी कर्मचारी होता है किन्तु अधिकतर वह ग़ैर सरकारी ही होता है। सैन्ट्रल बैंको मे व्यक्तियो के प्रतिनिधियो की बोर्ड मे संख्या निश्चित करदी जाती है। अधिकतर डायरैक्टर समितियो के प्रतिनिधि ही होते है।

प्रत्येक बैंक एक मैनेजर नियुक्त करता है। मैनेजर प्रत्येक प्रान्त मे एक ही कार्य नही करता। कुछ प्रान्तो मे मैनेजर केवल बैंक के सुचारु रूप से चलाने का ही जिम्मेदार नही होता वरन सम्बन्धित साख समितियो के लिये भी जिम्मेदार होता है। इस लिये उसको सैन्ट्रल बैंक के दौरा करने वाले कर्मचारियो को भी देख भाल करनी पड़ती है। अन्य प्रान्तो मे मैनेजर केवल साख

समितियो के लिये जिम्मेदार होता है इस कारण वह केवल दौरा करता है और साख समितियों का निरीक्षण करता है, वह बैंक का प्रबन्ध नही करता। बहुत बड़े बैंको मे दो मैनेजर नियुक्त किए जाते है। जहां मैनेजर दौरे का काम करता है वहां अवैतनिक मन्त्री बैंक के कर्मचारियो की सहायता से बैंक का कार्य करता है। बैंक मे मैनेजर के अतिरिक्त क्लर्क, तथा आय व्यय लेखक नियुक्त किये जाते है। अधिकतर बैंक अपने खजाची रखते है और रुपये का लेन देन स्वय करते है। किन्तु कुछ बैंक अवैतनिक खजांची रखते है अथवा सरकारी खजाने तथा किसी अन्य बैंक मे अपना रुपया रखते है।

सैंट्रल बैंक को कार्यशील पूँजी, हिस्सा पूँजी, रक्षित कोष, डिपाजिट, तथा ऋण के द्वारा प्राप्त होती है।

बैंकिंग यूनियन मे केवल समितियां ही हिस्से खरीद सकती है किंतु मिश्रित बैंको मे व्यक्ति भी हिस्से खरीद सकते है। साधारणतः सैन्ट्रल बैंको के हिस्से ५० रु० से लेकर १०० रु० तक के होते है, किंतु कहीं कही १० से लेकर १००० रु० तक के हिस्से है। समितिया अपने ऋण के अनुपात मे हिस्से लेती है। बम्बई, बर्मा देहली, कुर्ग, ग्वालियर, तथा इन्दौर मे हिस्सो का मूल्य पूरा चुका दिया गया है परन्तु अन्य प्रान्तो तथा देशी राज्यो मे हिस्सो का पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया है। साधारण हिस्सेदारो का दायित्व हिस्से के मूल्य तक ही सीमित है किन्तु कुछ प्रान्तो मे हिस्सेदारो

का दायित्व चार गुने से लेकर १० गुने तक है। १९१२ के एक्ट के अनुसार प्रत्येक परिमित-दायित्व वाली समिति को २५ प्रति शत लाभ रक्षित कोष मे जमा करना होता है। सैन्ट्रल बैंक इस २५ प्रति शत के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये विशेष रक्षित कोष जमा करते है।

हिस्सा पूंजी, तथा रक्षित कोष, बैंक की निजी पूंजी होती है और डिपाज़िट तथा ऋण,उधार ली हुई पूंजी होती है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त मे निजी पूंजी तथा ऋण ली हुई पूंजी का अनुपात १ : ८ है।

सदस्यो तथा ग़ैर सदस्यो की डिपाजिट ही कार्यशील पूंजी का बड़ा भाग होती है। सैन्ट्रल बैंको मे दो प्रकार की डिपाजिट होती है, मुद्दती, तथा सेविंगस। अधिकतर सैंट्रल बैंक चालू खाता नही रखते। हां, कुछ बैंक कही कहीं चालू खाता भी रखते हैं, चालू खाता जोखिम का काम है उसके लिये संचालको मे यथेष्ट व्यापारिक कुशलता होनी चाहिये। इस कारण यह बैंक चालू खाता नही रखते। सैन्ट्रल बैंको के पास पूंजी भी बहुत कम होती है इस कारण भी यह बैंक चालू खाता सफलता पूर्वक नही रख सकते। कहीकही सेविंगस डिपाजिट भी नही लीजाती किन्तु अधिकतर बैंक सेविंगस डिपाज़िट लेते है। इन बैंको मे अधिकतर मुद्दती जमा लीजाती है। सैन्ट्रल बैंक अधिकतर एक वर्ष के लिये डिपाज़िट लेते है। प्रत्येक प्रान्त मे यही प्रथा प्रचलित है। केवल विहार उड़ीसामे कुछ भेद है। वहां

चाहे जब रुपया जमा किया जावे किन्तु ३१ मई को प्रति वर्ष रुपया वापिस दे दिया जाता है। सैन्ट्रल बैंकमे अधिकतर नौकरी करने वाले, जमीदार, तथा संस्थाये ही रुपया जमा करती हैं।

डिपाजिट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर बैंक ऋणभी ले लेते है। सैन्ट्रल बैंक इम्पीरियल आदि दूसरे बैंको से,तथा प्रांतीय सरकार से ऋण लेते है। पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो मे मे सैन्ट्रल बैंक प्रान्तीय सरकार से सीधे ऋण नही लेते। किन्तु देशी राज्यो मे सैन्ट्रल बैंक राज्य से ही ऋण लेते है केवल मैसूर मे बैंक राज्य से ऋण नही लेते।

सैन्ट्रल बैंक सरकारी कागज़ तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियो के प्रामिसिरी नोट की जमानत पर ऋण लेते है। किन्तु कुछ दिनो से इम्पीरियल बैंक ने प्रारम्भिक सहकारी समितियो के प्रामिसिरी नोट पर ऋण देना बन्द कर दिया है, और केवल सरकारी कागज़ पर ही ऋण देता है। सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालो से इम्पीरियल बैंक के मैनेजिंग-गवर्नर ने सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा है कि सहकारी समितियो की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है इस कारण उनके प्रामिसरी नोट पर बैंक ऋण नही दे सकता। अन्य मिश्रित पूँजी वाले बैंको से सैन्ट्रल बैंक ऋण नही लेते इस कारण अधिकतर यह प्रान्तीय सहकारी बैंको से ही ऋण लेते है। ब्रिटिश भारत मे इस समय सात प्रान्तीय सहकारी बैंक है, संयुक्त प्रांत मे अभी प्रांतीय बैंक की स्थापना ही

नही हुई* तथा बर्मा का प्रांतीय बैंक दिवालिया हो गया। इनके अतिरिक्त दो प्रान्तीय बैंक देशी राज्यो मे भी है। जहां प्रान्तीय बैंक स्थापित हो चुके है वहां सैन्ट्रल बैंक, इम्पीरियल बैंक, अन्य मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंको तथा दूसरे सैन्ट्रल बैंको से सीधा सम्बन्ध नही रख सकते। किन्तु यह नियम मद्रास और पंजाब मे कड़ाई के साथ उपयोग मे नही लाया जाता। संयुक्त प्रान्त मे एक सैन्ट्रल बैंक दूसरे सैन्ट्रल बैंक को रजिस्ट्रार की अनुमति लेकर ऋण दे सकता है।

सैन्ट्रल बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियो तथा ग़ैर साख समितियो को ही ऋण देते है, पंजाब, मैसूर, ग्वालियर, तथा मद्रास मे अब भी सैन्ट्रल बैंक व्यक्तियो को ऋण देते है, किन्तु यह रिवाज अब बन्द की जारही है। सहकारी समितियो के पास जमा करने के लिये अधिक पूँजी तो होती नही इस कारण बैंक समितियो को ऋण देने का ही कार्य अधिक करते है। १९२९ के अन्त मे सैन्ट्रल बैंको ने रु० २२,५४,९३,००० ऋण मे दिया। इसका अधिक भाग साख समितियो को ही दिया गया।

सैन्ट्रल बैंक व्यक्तियो, विशेष प्रकार की समितियो, तथा कृषि सहकारी समितियो को, नोट अथवा बांड पर ऋण दे देते है। किन्तु व्यक्तियो और विशेष प्रकार की समितियो से इसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति गिरवी रखवाई जाती है।

*इस समय संयुक्त प्रान्तीय सहकारी बैंक की स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा है।

कृषि सहकारी समितियो के अपरिमित दायित्व के कारण उनका प्रो-नाट ही यथेष्ट जमानत समझी जाती है। जब सहकारी साख समिति किसी सदस्य के पुराने ऋण को चुकाने के लिये लम्बा ऋण लेती है तो प्रो--नोट के अतिरिक्त सैन्ट्रल बैंक उन कागज़ो को, जो सदस्य ने समिति को लिख दिये है, अपने नाम करवा लेता है।

यह जानने के लिये कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सैन्ट्रल बैंक अपने से सम्बन्धित साख समितियो की साख का अनुमान लगाते है।

जो ऋण कि समितियो को दिया जाता है वह निश्चित वर्षो मे वसूल कर लिया जाता है। कुछ प्रान्तो मे कम और अधिक समय के लिये भी ऋण दिया जाता है, किन्तु कुछ प्रान्तो मे केवल कम समय के लिये ही ऋण दिया जाता है। ऋण की स्वीकृति देने मे बहुत सी क़ानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है इस कारण ऋण मिलने मे देर हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिये कुछ सैन्ट्रल बैंक एक रक़म निश्चित कर देते है जिस तक समितियो को बिना किसी देरी के ऋण दे दिया जाता है, अधिक के लिये नियमित कार्यवाही करनी पड़ती है। कुछ प्रान्तो मे समितियो की सामान्य साख--निर्धारित करदी जाती है। समिति की सामान्य साख तय करने से पूर्व उसके सदस्यो की सामान्य साख का लेखा तैयार किया जाता है, जिसमे

सदस्यो की सम्पत्ति, उनकी आवश्यकता, उनकी आय, तथा उनकी बचाने की शक्ति का व्योरा रहता है। इस लेखे के आधार पर बैंक समिति की अधिकतम साख निश्चित कर देता है। अर्थात् यह निश्चित कर देता है कि इस रक़म तक ऋण दिया जा सकता है। हैसियत के अनुसार ही सदस्यो की सामान्य साख का लेखा प्रति वर्ष तैयार किया जाता है।

सैन्ट्रल बैंक भिन्न भिन्न प्रान्तो मे भिन्न भिन्न समय के लिये ऋण देते है। फसल उत्पन्न करने के लिये जो ऋण लिया जाता है वह एक दो वर्षों के लिये होता है, और जो ऋण भूमि मे सुधार करने के लिये, अथवा पुराने कर्जों को अदा करने के लिये लिया जाता है, वह पांच से दस वर्ष के लिये दिया जाता है। पहिले लोगो की यह धारणा थी कि बैंक अधिक समय के लिये ऋण दिया करें। किन्तु अब प्रत्येक प्रांत मे यह धारणा जोर पकड़ रही है कि सैन्ट्रल बैंक यह कार्य नही कर सकते। इसके लिये भूमि बन्धक बैंक स्थापित करना चाहिये। किसी किसी प्रांत मे सैन्ट्रल बैंक अधिक समय के लिये ऋण बिल्कुल नही देते

सैन्ट्रल बैंक अभी तक ८ से १२ प्रति शत सूद समितियो से लेते रहे हैं। हाल मे जब कि बाजार मे सूद की दर बहुत घटगई है तब कही इन बैंको ने दर घटाई है। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सूद की दर और घटाई जावे। भारतीय सहकारिता आन्दोलन की सबसे बड़ी कमी यह है कि समितियां ऋण को

उचित समय पर नहीं दे पाती और बहुत सा रुपया बाक़ी रह जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य अशिक्षित है, सहकारिता के सिद्धान्तो का उन्हे ज्ञान नहीं है, और कभी फसल के नष्ट हो जाने के कारण भी वे क़र्ज़ को अदा नहीं कर पाते। यदि फसल के नष्ट हो जाने से समितिया अपना ऋण नहीं दे पाती तो उन्हे अधिक समय दे दिया जाता है। जब कोई समिति अपना ऋण नहीं देती तो बैंक जहा तक हो सकता है रुपया वसूल करता है। यदि रुपया किसी भी प्रकार वसूल नहीं होता तब बैंक रजिस्ट्रार से समिति को तोड देने के लिये कहता है अथवा अदालत से डिगरी कराता है।

जब कि समितिया बैंक को ऋण का रुपया चुकाती है उस समय बैंक के पास आवश्यकता से अधिक रुपया जमा हो जाता है। यह स्थिति वर्ष मे दो से चार महीने तक रहती है। इस समय बैंक प्रांतीय बैंको मे रुपया जमा कर देते है, जहा प्रातीय बैंक नहीं है वहा रुपया इम्पीरियल बैंक मे जमा कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बैंक के पास कुछ रुपया स्थायी रूप से अधिक होता है जो समितियो को ऋण देने मे नहीं लगाया जा सकता। यह कोष प्रांतीय बैंक मे अधिक समय के लिये जमा कर दिया जाता है, अथवा ट्रस्टी सिक्यूरिटी मे लगा दिया जाता है। इस समय सैन्ट्रल बैंको की नीति यह है कि वह आवश्यकता से अधिक डिपाजिट नहीं लेना चाहते इस कारण डिपाज़िट पर सूद की दर बहुत घटा दी गई है।

साधारण रक्षित कोष के अतिरिक्त कोई कोई सैन्ट्रल बैंक, इमारत, बट्टा खाता, तथा लाभ हानि सन्तुलन के लिये विशेष कोष जमा करते है। रक्षित कोष का रुपया या तो सिक्यूरिटी मे या प्रान्तीय बैंक मे लगा दिया जाता है, अथवा वह बैंक मे ही रहता है और कार्यशील पूँजी की वृद्धि करता है।

सैन्ट्रल बैंको की सूद की दर भिन्न भिन्न प्रान्तो मे भिन्न है। किन्तु डिपाजिट पर सूद की दर, तथा प्रारम्भिक समितियों से जो सूद लिया जाता है उसमे, २ से ५ प्रति शत का अन्तर रहता है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रात, मध्यप्रान्त, तथा ग्वालियर मे यह अन्तर ४ से ५ प्रति शत तक होता है। किन्तु अन्य प्रान्तो मे केवल दो या तीन प्रति शत है। जिन बैंको का लेन देन कम होता है, उनका प्रबन्ध व्यय अपेक्षाकृति अधिक होने के कारण उन्हे मार्जिन अधिक रखना पडता है। कुछ प्रान्तो मे विशेष प्रकार की लेंड टैन्योर होने के कारण रुपया अधिक मारा जाता है, इस कारण भी मार्जिन अधिक रखना पड़ता है।

सैन्ट्रल बैंक अपने से संबन्धित समितियो की देख भाल रखते है, तथा उन पर अपना नियन्त्रण भी रखते है। इस कार्य के लिये उन्हे कुछ कर्मचारी रखने पड़ते है। यह कर्मचारी ऋण के प्रार्थनापत्रो की जांच करते है और सम्पत्ति का लेखा तैयार करते है। जो समितियां अपने पुराने ऋणको चुकाने के लिये अधिक समय मांगती है उनके प्रार्थनापत्रो के विषय मे भी जाच करते है, और समिति को सदस्यो से रुपया वसूल कराने मे सहायक होते है।

कहीं कहीं ऐसी बुरी रिवाज़ पड़ गई है कि सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी ही सदस्यों से रुपया वसूल कर लेते हैं, ऐसी परिस्थिति मे सदस्य समिति को कुछ नहीं समझता और समिति का कोई प्रभाव नहीं रहता। किसी किसी प्रांत मे यह कर्मचारी समितियों का हिसाब रखते हैं, तथा वार्षिक सभा का आयोजन भी करते है। जहां नई समितियो की स्थापना करने के लिये सहकारी विभाग विशेष कर्मचारी नियुक्त नहीं करता वहां यह कर्मचारी नवीन समितियों की स्थापना भी करते है। इसके अतिरिक्त यह लोग सहकारिता संबंधी प्रचार कार्य भी करते है। किन्तु अब इनमें से कुछ कार्य प्रांतीय इंस्टिट्यूट करने लगी है। कुछ प्रान्तोंमे समितियों की देख भाल का कार्य सुपरवाइजिंग यूनियनस को दिया गया है।

सैन्ट्रल बैंको का आय व्यय निरीक्षण सरकार द्वारा नियुक्त आय व्यय निरीक्षकों के द्वारा होता है। यह आय-व्यय निरीक्षक हिसाब की जांच के अतिरिक्त न वसूल हुए रुपये के विषय में भी जांच करते हैं तथा सैन्ट्रल बैंको की आर्थिक स्थिति को भी देखते हैं। रजिस्ट्रार कुछ प्रश्न निश्चित करता है जिनका उत्तर तथा आय व्यय निरीक्षक की रिपोर्ट रजिस्ट्रार के पास जाती है।

निरीक्षण कर पाते है। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलैंस शीट तैयार करके उसको आय-व्यय निरीक्षक की रिपोर्ट के सहित रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारोंके पास भेजताहै। बैलेंस शीट (लेनी देनीका लेखा) के अतिरिक्त प्रत्येक बैंक को लाभ और हानि का व्योरा, तथा आमदनी और खर्चका व्योरा भी सरकार को भेजना पड़ताहै। सैन्ट्रल बैंक रजिस्ट्रार को तिमाही रिपोर्ट भेजते है जिसमे उनकी आर्थिक स्थिति का व्योरा रहता है। सैन्ट्रल बैंक अधिकतर अपनी शाखाएं नही खोलते, किन्तु उन सैन्ट्रल बैंको को जिनका क्षेत्र बहुत बड़ा है, तथा उनसे सम्बन्धित समितियो की संख्या अधिक है, शाखाएं खोलने की आज्ञा दे दी गई है।

# आठवां परिच्छेद

## प्रान्तीय बैंक

सहकारिता आन्दोलन के क्रमशः देश मे फैलने पर यह बात अनुभव होने लगी कि यद्यपि सैन्ट्रल बैंक सहकारी समितियो का निरीक्षण तथा उनकी देख भाल करने मे रजिस्ट्रार का हाथ तो बॅटाते है, किन्तु आन्दोलन मे जितनी पूंजी की आवश्यकता होती है उसका उचित प्रबन्ध नही कर सकते। इसके अतिरिक्त सैन्ट्रल बैको का नियन्त्रण तथा उनके द्वारा साख समितियो की पूंजी की आवश्यकताओ का उचित प्रबन्ध करने के लिये भी प्रांतीय बैको की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैकलेगन कमेटी (जो कि १९१५ मे सहकारिता आन्दोलन की जांच के लिये बिठलाई गई थी) ने प्रत्येक प्रांत मे प्रांतीय बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। वास्तव मे सैन्ट्रल बैको का आपस मे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक ऐसी संस्था की अत्यन्त आवश्यकता थी। प्रान्तीय बैंको से पूर्व यह कार्य रजिस्ट्रार करता था। यदि किसी सैन्ट्रल बैंक को पूंजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिस्ट्रार को सूचना देने पर रजिस्ट्रार प्रत्येक सैन्ट्रल बैंक को गश्ती चिट्ठी लिख देता था। यह कार्य रजिस्ट्रार भली भांति नहीं कर पाता था और साथ ही उसका बहुत सा समय इस कार्य मे लग जाता था। कुछ सैन्ट्रल बैंक ऐसे थे जो अपनी आवश्यकता से अधिक पूंजी आकर्षित कर लेते थे और कुछ ऐसे भी थे जिनको

यथेष्ट पूँजी नहीं मिलती थी, इस कारण ऐसे प्रान्तीय बैंको की नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई जो पहले प्रकार के बैंको की अतिरिक्त पूँजी को जमा करे और दूसरे प्रकार के बैंको को दे दे। इसके अतिरिक्त द्रव्य बाजार ( money market ) तथा सहकारिता आन्दोलन के बीच मे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भी प्रान्तीय बैंको की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष मे इस समय १२ प्रान्तीय बैंक है, ८ ब्रिटिश भारत मे तथा ४ देशी राज्यो मे। ब्रिटिश भारत मे संयुक्त प्रान्त को छोड़कर सभी बड़े प्रान्तो मे प्रान्तीय बैंक है। देशी राज्यो मे हैदराबाद तथा मैसूर आदि मे प्रान्तीय बैंक है।

यद्यपि इन बारह प्रांतीय बैंको का संगठन भिन्न है परन्तु इन का कार्य एकसा ही है। प्रान्तीय बैंको के संगठन के विषय मे दो बातें विचारने की है। एक तो यह कि प्रान्तीय बैंको को भली भांति चलाने के लिये व्यापारिक बुद्धि, तथा बैंकिंग की योग्यता चाहिये, इस कारण बैंक के डायरैक्टर व्यवसायी होने चाहिये। किन्तु व्यापारियो तथा व्यवसायियो को बैंक के बोर्ड आफ-डायरैक्टर्स मे प्रधानता देने से हो सकता है कि सहकारिता के हितो की रक्षा न होसके। अस्तु, होना यह चाहिये कि डायरैक्टरो मे सहकारिता वादियो का तो प्राधान्य हो किन्तु कुछ ऐसे व्यापारी अथवा बैंकिंग को समझने वाले लोगो को भी ले लिया जावे कि जिससे बैंक कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। यह तो

हुई सिद्धान्त की बात। अब यह देखना यह है कि हमारे प्रान्तीय बैंकों का संगठन कैसा है।

अधिकतर प्रान्तीय बैंक मिश्रित ढंग के है, अर्थात् साधारण सभा तथा बोर्ड आफ डायरैक्टरस दोनो ही मे हिस्सेदारो सहकारी समितियो, तथा सैन्ट्रल बैंको के प्रतिनिधि रहते हैं। मैकलेगन कमेटी के बैठने से पहिले ही, बम्बई, मद्रास, तथा बर्मा मे ऐसे बैंक स्थापित होचुके थे कि जो नियमानुसार तो प्रान्तीय बैंक नहीं थे, किन्तु प्रान्तीय बैंको का कार्य करते थे। यह बैंक हिस्सेदार व्यक्तियो के थे और सैन्ट्रल बैंक, तथा प्रारम्भिक सहकारी समितियो को पूँजी देते थे।

मैकलेगन कमेटी ने मिश्रित प्रान्तीय बैंक स्थापित करने की राय दी थी इस कारण अधिकतर प्रांतीय बैंको ने अपना संगठन वैसा ही बना लिया है। 'किन्तु पंजाब और बंगाल के प्रान्यीय बैंको मे व्यक्ति हिस्सेदार नही हो सकते, केवल सैन्ट्रल बैंक और सहकारी समितियां ही उनकी हिस्सेदार हो सकती है। इनके अतिरिक्त और सब बैंक मिश्रित बैंक है।

यह तो पहले ही कहा जाचुका है कि प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंको के अभिभावक का कार्य करता है। सहकारिता आन्दोलन का द्रव्य-बाज़ार से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जावे इसके लिये आवश्यक है कि सहकारी सैन्ट्रल बैंक बाहरी बैंको से प्रान्तीय बैंक के द्वारा काम करे। यद्यपि प्रत्येक प्रान्त मे यह सिद्धान्त मान्य है, किन्तु सब प्रान्तो मे इसके अनुसार कार्य नहीं होता।

उदाहरण के लिये पंजाब, बंगाल, और मद्रास मे सैन्ट्रल बैंक सीधे इम्पीरियल बैंक से सम्बन्ध रख सकते है। किन्तु बम्बई मे वे केवल प्रान्तीय बैंक से ही सम्बन्ध रख सकते है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंको को आपस मे एक दूसरे से ऋण न लेने दे, क्योकि इससे प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंको का अनुशासन ठीक प्रकार से नहीं कर सकते।

प्रान्तीय बैंको को प्रारम्भिक समितियो से भी सीधा संबन्ध नही रखना चाहिये,केवल उनसे सैन्ट्रल-बैंको के द्वारा ही सम्बन्ध रखना चाहिये। कुछ प्रान्तो मे प्रान्तीय बैंक प्रारम्भिक समितियो से सन्बन्ध नही रखते, किन्तु कुछ प्रांतीय बैंक ऐसे भी है जो उन क्षेत्रो मे जहां कि सहकारी सैन्ट्रल बैंक नही है, प्रारम्भिक समितियां को पूँजी देते है।

प्रातीय बैंक अपनी कार्यशील पूँजी के लिये सहकारी समितियो, सैन्ट्रल बैंको, और जनता पर निर्भर रहते है। जब प्रान्तीय बैंक सर्व साधारण से डिपाजिट स्वीकार करते है तो उन्हे जमा करने वालो को मांगने पर, देने के लिये नकद रुपया रखना पडता है। कुछ प्रान्तो मे प्रांतीय सरकारो ने नियम बनाकर कम से कम नक़द रुपया कितना रखना चाहिये यह निश्चित कर दिया है। किन्तु अन्य प्रान्तो मे मैकलेगन कमेटी की सम्मति के अनुसार ही कार्य होता है। जितने दिनो के लिये प्रातीय बैंक को डिपाजिट मिलती है उससे अधिक के लिये वे ऋण नही देते

हैदराबाद, बिहार, तथा मदरास प्रांतीय बैंक अधिक से अधिक दो वर्ष के लिये डिपाजिट लेते हैं। मध्यप्रांत, बम्बई, तथा पंजाब के बैंक अधिक से अधिक पांच वर्ष के लिये डिपाजिट लेते हैं। बंगाल बैंक तीन वर्ष तथा मैसूर बैंक अधिक से अधिक दस वर्ष के लिये जिपाज़िट लेते हैं। ऊपर लिखे हुए बैंक कम से कम एक मास से लेकर १२ मास तक लिये डिपाज़िट स्वीकार करते हैं। कुछ प्रांतीय बैंक चालू खाता भी रखते हैं। पंजाब प्रांतीय बैंक को छोड़ अन्य प्रांतीय बैंक साधारण बैंकिंग भी करते हैं वे जनता की चालू जमा रखते हैं, हुंडियो का रुपया वसूल करते हैं, तथा अन्य कार्य करते हैं।

बम्बई, मदरास, तथा पंजाब प्रान्तीय बैंको ने लम्बे समय के लिये डिबैंचर* बेचे है। भारत सरकार ने इन डिबैंचरो को ट्रस्टी सिक्यूरिटी मान लिया है। बम्बई ने ६·८ लाख, मदरास ने २·१८ लाख, तथा पंजाब बैंक ने पांच लाख रुपये के डिबैन्चर बेचे है। प्रान्तीय बैंको के सामने भी कार्यशील पूंजी के बाहुल्य तथा कमी की समस्या उपस्थित रहती है। अस्तु, प्रान्तीय बैंक जब कभी उनके पास कार्यशील पूँजी का बाहुल्य होता है एक दूसरे को कर्ज़ा देते हैं, जब पूँजो की कमी होती है तो अधिक सूद देकर डिपाजिट बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है।

प्रान्तीय बैंक का हिसाब सहकारिता विभाग को जांचना चाहिये, क्योकि सहकारिता एक्ट के अनुसार रजिस्ट्रार का यह

---

* डिबैंचर वह रक़म है जो कि कम्पनियां या बैंक सर्व साधारण से लेती हैं और जिसके लिये ऋण पत्र दे देती है।

मुख्य कार्य है। बहुत से प्रान्तो मे रजिस्ट्रारो ने पेशेवर आडिटरो द्वारा प्रांतीय बैंक के हिसाब का आय व्यय निरीक्षण करवाने की आज्ञा दे दी है। किसी किसी प्रात मे पेशेवर आडिटरो द्वारा आडिट हो जाने पर प्रान्त का सहकारिता विभाग फिर आडिट करता है। आय-व्यय निरीक्षण के अतिरिक्त इन बैंको को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा रजिस्ट्रार के द्वारा अपनी प्रांतीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रकट करती है। प्रान्तीय बैंक वर्ष के अंत मे बैलेंस-शीट भी तैयार करके छापता है। कुछ प्रान्तीय बैंक छमाही बैलेंस शीट तैयार करते है।

कुछ समय हुआ जबकि, "अखिल भारतवर्षीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एशोसियेशन" नामक संस्था को जन्म दिया गया है। इस एशोसियेशन का मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक सदस्य बैंक की कार्यशील पूँजी के बाहुल्य तथा कमी के आंकड़ो को जमा करे और सब सदस्यो की सूचना के लिये भेज दे, जिससे कि सदस्यो को यह ज्ञात हो जावे कि किस बैंक को पूँजी की आवश्यकता है और कौन बैंक कर्ज दे सकता है। इसके कार्य के अतिरिक्त एशोसियेशन की बैठक दो साल मे एक एक बार होती है जिसमे बैंकिंग सम्बन्धी, तथा आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार होता है। और जब कभी प्रांतीय बैंको को सरकार का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यही संस्था सरकार से लिखा पढ़ी करती है।

कुछ प्रान्तो मे प्रांतीय बैंक अपने से सम्बन्धित सैन्ट्रल बैंको का नियन्त्रण करते हैं। इन प्रान्तो मे सैन्ट्रल बैंक डिपाज़िट पर कितना सूद देंगे, तथा समितियों से कितना सूद लेंगे, इसका नियन्त्रण प्रान्तीय बैंको द्वारा होता है। कुछ प्रान्तो मे प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंको से उनकी आर्थिक स्थिति को जानने के लिये एक लेखा मांगते है। किन्तु अन्य प्रान्तो मे प्रान्तीय बैंक ऐसा कोई नियन्त्रण नही रखते।

प्रत्येक प्रान्त मे प्रान्तीय बैंको ने अपना सम्बन्ध इम्पीरियल बैंक से स्थापित कर रक्खा है और वे सिक्यूरिटी देकर नक़द-साख ले लेते हैं। अभी तक इम्पीरियल बैंक, प्रान्तीय बैंको को सहकारी क़ाग़ज* (cooperative paper) अपने नाम करा कर उसकी जमानत पर ऋण दे देता था। किन्तु अभी कुछ दिनो से इम्पीरियल बैंक ने अपनी नीति बदल दी है और वह सहकारी काग़ज की जमानत पर कर्ज़ देना स्वीकार नहीं करता। इम्पीरियल बैंक अब केवल गवर्नमेंट आफ इण्डिया-प्रामिसरी नोट की सिक्यूरिटी पर ही सहकारी प्रान्तीय बैंको को कर्ज़ा देता है। प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंको की मौसमी मांग को पूरी करने के लिये इम्पीरियल बैंक से नकद साख लेते थे किन्तु अब जब कि इम्पीरियल बैंक ने साख देना बन्द कर दिया

* सहकारी क़ागज अर्थात् वह ऋण पत्र जो कि सैन्ट्रल बैंक प्रान्तीय बैंक को, तथा समितियां सैन्टल बैंको को कर्ज़ लेने पर लिख देती है।

है तब वे भी सैन्ट्रल बैंको की मौसमी मांग को पूरा करने मे असमर्थ है। इस नीति परिवर्तन का आन्दोलन पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह अभी नही कहा जा सकता क्योकि यह परिवर्तन अभी हाल मे ही हुआ है। प्रान्तीय बैंको का रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये सरकार कोई फीस नही लेती।

**सहकारी प्रान्तीय बैंकों तथा इम्पीरियल बैंक का सम्बन्ध**—सैन्ट्रल बैंकिग इनक्वायरी कमेटी के सामने भी यह प्रश्न आया था। सहकारिता आन्दोलन मे लगे हुए कार्यकर्ताओ ने इम्पीरियल-बैंक की इस विषय मे कड़ी आलोचना की। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने इस प्रश्न पर अपना मत निम्न लिखित शब्दो मे दिया है। "इम्पीरियल बैंक ने सहकारी बैंको को पूँजी देने के सम्बन्ध मे अपनी नीति मे विशेष परिवर्तन कर दिया है। इम्पीरियल बैंक जिस प्रकार पहले सहकारी बैंको को सहायता पहुंचाता था उस प्रकार अब सहायता पहुँचाने को तैयार नही है"। कमेटी के सामने इम्पीरियल बैंक के प्रतिनिधियो ने गवाही देते समय इस बात पर विशेष जोर दिया कि सहकारी बैंको को चल पूँजी (fluid resources) के लिये इम्पीरियल बैंक पर अवलम्बित न रहना चाहिये, उन्हे चल पूँजी का प्रबन्ध स्वयं करना चाहिये। क्योकि संकट के समय इम्पीरियल बैंक को भी कठिनाई उपस्थित हो सकती है। इसके अतिरक्त इम्पीरियल बैंक के अधिकारीवर्ग ने कहा कि सहकारी कागज़ की जमानत का मूल्य प्रारंभिक सहकारी साख समितियो की आर्थिक

स्थिति पर ही अवलंबित है। किन्तु सहकारी साख समितियो की आर्थिक दशा अत्यन्त हीन है इस कारण यह जमानत प्रथम श्रेणी की जमानत नहीं है। इसका विचार न करके यदि इम्पीरियल बैंक समितियो के प्रो-नोट की जमानत पर ऋण दे दे तो ऋणके न चुकाये जाने पर बैंक के लिये यह आवश्यक हो जावेगा कि बैंक समितियो के सदस्यो की भूमि को बेचदे, जो कि न तो उचित ही होगा और न व्यवहारिक ही होगा।

" इसके विपरीत, सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओ का मत है कि ग्रामीण साख समितियो के प्रो-नोट से अधिक सुरक्षित जमानत और दूसरी हो ही नही सकती। क्योकि सदस्यो का दायित्व अपरिमित है। साधारणतः प्रांतीय बैंक तथा सैन्ट्रल बैंक अच्छी सहकारी समितियो के प्रो-नोट इम्पीरियल बैंक के पास जमानत के रूप मे रखते है। इस कारण यह कहना ग़लत है कि रुपया वसूल करने के लिये भूमि को बेचने की आवश्यकता होगी। चल पूँजी के विषय मे उन लोगो का यह कहना है कि यदि प्रान्तीय सहकारी बैंक चल पूँजी का प्रबन्ध स्वयं करेगे तो कुछ रुपया बेकार पड़ा रहा करेगा, क्योंकि उसका उपयोग सर्वदा नहीं होता, इससे व्यय अधिक बढ़ेगा और लाभ बहुत कम होगा। जिसका फल यह होगा कि भविष्य मे सूद की दर न घटाई जा सकेगी। उनका यह भी कहना है कि समितियों के प्रो-नोट पर इम्पीरियल बैंक—७२ लाख से अधिक की साख नही देता था, यह इम्पीरियल बैंक के लिये कुछ अधिक

नहीं है, फिर जब कि इम्पीरियल बैंक के पास सरकार बहुत सा रुपया बिना सूद लिये ही रखती है उस दशा में इम्पीरियल बैंक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सहकारिता आन्दोलन की सहायता करे"। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने इम्पीरियल बैंक के अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है और साथ ही इस बात पर जोर दिया है जहां तक हो सके इम्पीरियल बैंक को आन्दोलन की सहायता करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को इम्पीरियल बैंक के विरुद्ध एक शिकायत यह भी थी कि इम्पीरियल बैंक सहकारी बैंकों का रुपया सहकारिता के कार्य के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना फीस नहीं भेजना चाहता। भारत सरकार का यह मत है कि जो रुपया सहकारिता आन्दोलन के उपयोग के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जावे उस पर इम्पीरियल बैंक फीस न ले, यदि सहकारी बैंक यह कह दें कि यह आन्दोलन के उपयोग के लिये है। इम्पीरियल बैंक का कहना है कि यह न्यायोचित नहीं है कि अन्य व्यापारिक बैंकों को यह सुविधायें न दी जावें और सहकारी बैंकों को यह सुविधा दीजावे कि जिनको कर दाताओं के द्वारा आर्थिक सहायता मिलती है। इस पर सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने अपना स्पष्ट मत दे दिया है कि सहकारी बैंकों का रुपया बिना फीस के भेजना अत्यन्त आवश्यक है, हां,

जो रुपया कि सहकारी कार्य के लिये न भेजा जावे उस पर उतनी ही फीस लीजावे कि जितनी मिश्रित पूँजी वाले बैंको से लीजाती है।

**मिश्रित पूंजी वाले व्यापारिक बैंक तथा सहकारी बैंकों की स्पर्धाः**—मिश्रित पूँजी वाले बैंको तथा सहकारी बैंको मे कोई अनुचित स्पर्धा नही है। वांस्तव मे इन दोनो प्रकार के बैंको का कार्य क्षेत्र इतना भिन्न है कि अनुचित स्पर्धा का तो कोई प्रश्न ही नही उपस्थित होता। कुछ लोगो का ऐसा मत है कि सहकारी बैंक सरकार की सहायता पाकर डिपाजिट आकर्षित करने मे अन्य बैंको से अनुचित स्पर्धा कर रहे हैं। प्रान्तीय सहकारी बैंक तथा सैन्ट्रल बैंको की डिपाजिट रेट के आंकड़े देखने से ज्ञात होता है कि सूद की दर मिश्रित पूँजी वाले बैंको से अधिक नही है, इस कारण प्रतिस्पर्धा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

सैन्ट्रल बैंकिग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए इम्पीरियल बैंक के गवर्नर ने कहा था कि सहकारी बैंको को केवल सहकारिता आन्दोलन तक अपने कार्य की सीमा बना लेनी चाहिये और मिश्रित पूँजी वाले बैंको तथा अन्य बैंकिंग कार्य करने वालो से प्रतिद्वन्दता न करनी चाहिये। यद्यपि अभी तक सहकारी बैंक केवल सहकारी बैंकिंग में लगे हुए हैं किन्तु सहकारिता आन्दोलन मे लगे हुए लोगो का यह मत है कि सहकारी बैंको को सब प्रकार का कार्य करना चाहिये। इम्पीरियल

बैंक के गवर्नर का यह भी मत था कि सहकारी बैंको को बैंकिंग का इतना ज्ञान नही होता कि वे चालू खाता, बिल, हुंडी तथा रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजने का काम कर सकें। सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ता इसको मानने के लिये तैयार नही है और सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने भी अपनी सम्मति सहकारी बैंको के पक्ष मे दी है।

इस सम्बन्ध मे एक प्रश्न बार बार उठाया जाता है कि सरकार तथा सहकारिता आन्दोलन का क्या सम्बन्ध है। सिद्धांत की दृष्टि से तो सरकार का सहकारी विभाग केवल प्रचार तथा निरीक्षण कार्य के लिये ही उत्तरदायी है, किन्तु वास्तव मे सरकार का उत्तरदायित्व कुछ अधिक है। जब जब सहकारी बैंको को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा है तब तब सरकार ने सहकारी बैंको की सहायता की है, इस कारण द्रव्य बाजार मे यह धारणा बन गई है कि जब कभी इन बैंको पर आर्थिक संकट आवेगा, सरकार उनकी सहायता करेगी। इसी आश्वासन के कारण द्रव्य-बाजार मे सहकारी बैंको की प्रतिष्ठा तथा साख है। वास्तव मे बात भी ऐसी ही है। जब बर्मा तथा मध्य प्रान्त के प्रान्तीय बैंको की आर्थिक स्थिति अत्यन्त डंवाडोल थी तब प्रान्तीय सरकारो ने उनकी सहायता की।

वस्तु-स्थिति यह है कि सरकार किसी सहकारी बैंक अथवा समिति के टूटने पर कोई आर्थिक जिम्मेदारी नही लेती है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी का मत है कि जब किसी विशेष

कारण वश इन बैंको पर आर्थिक संकट आ जावे तो सरकार थोड़े समय के लिये सहायता दे दिया करे किन्तु यह सहायता साधारणतः न दी जावे। साधारणतः प्रान्तीय बैंक यथेष्ट पूंजी आकर्षित करलेते हैं, किन्तु कभी कभी पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। ऐसे समय पर प्रान्तीय सरकार को उन्हे ऋण दे देना चाहिये।

सैन्ट्रल बैंकिग इनकायरी कमेटी के सामने प्रांतीय सहकारी बैंको ने अपनी निम्न लिखित मांगे पेश की थीं।

(१) जो पूंजी सम्बन्धी सुविधाएं इम्पीरिल बैंक अभी तक प्रान्तीय बैंको को देता आया है वह एक नियम बनाकर उसे देने के लिये वाधित किया जावे। एक वर्ष से लेकर दो वर्ष तक के लिये इम्पीरियल बैंक, बैंक रेट पर प्रान्तीय बैंको को उनके प्रो-नोट पर ऋण दे, तथा किश्तो मे वसूल करले। एक वर्ष से कम के लिये प्रो-नोट पर बैंक रेट से एक प्रति शत कम सूद पर ऋण दे।

(२) खेती बारी के लिये इम्पीरियल बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंका को नक़द साख दे तथा उनकी हुंडियो (बिल्स) को भुनादे।

(३) जहा इम्पीरियल बैंक की ब्रांच नही है वहां सहकारी सैन्ट्रल बैंक सरकारी खजाने का काम करे।

(४) देश के अन्तरगत रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये सरकारी खजाने अधिक सुविधाएं दे और

देश के अन्तरगत विनिमय व्यापार सहकारी बैंको के लिये उचित समझा जावे।

(५) प्रांतीय बैंक ग्रामीण क्षेत्रो मे खेती की उपज को सुरक्षित रखने के लिये अन्न भण्डार बनवाने की आवश्यकता समझते है। इसके बिना सहकारी विक्रय समितिया देश मे स्थापित नहीं की जा सकती। इन भण्डारो के बनवाने के लिये सरकार प्रान्तीय बैंको को सूद पर पूँजी दे।

(६) यदि सहकारी समतियां अपनी पूँजी सरकारी ऋण मे अथवा भूमि बन्धक बैंकों के डिबैन्चर खरीदने मे लगावें तो उनकी आय पर इनकम टैक्स न लिया जावे।

सैन्ट्रल बैंकिग इनकायरी कमेटी ने पहिली दो मांगो के विषय मे जो सम्मति दी है वह तो पहिले ही लिखी जा चुकी है किन्तु इम्पीरियल बैंक से तो सहकारिता आन्दोलन का सम्बन्ध तभी तक रहा जब तक रिजर्व बैंक स्थापित नही हुआ था। रिज़र्व बैंक के स्थापित होने पर तो सहकारिता आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध रिज़र्व बैंक से हो गया है। इस लिये यह जानना आवश्यक है कि रिजर्व बैंक का सहकारिता आन्दोलन के प्रति क्या कर्तव्य होगा। कमेटी के मतानुसार रिज़र्व बैंक, प्रान्तीय सहकारी बैंको को निम्न लिखित सुविधाएं दे।

(१) प्रान्तीय बैंक भी अन्य बैंको के साथ सदस्य-बैंक बना लिये जावे, और उन्हे भी हुंडी भुनाने की सुविधा दी जावे।

(२) प्रान्तीय बैंको को खेती-बारी की मौसमी पूँजी की आवश्यकता पूरी करने के लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है इस बात को ध्यान मे रखते हुए रिज़र्व बैंक को यह अधिकार दिया जावे कि वह प्रान्तीय बैंको की ६० दिन में चुकने वाली हुंडियो को भुनादे, जिससे कि प्रान्तीय बैंक आवश्यकता के समय किसानो की माग को पूरा कर सकें।

(३) रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार दिया जाना चाहिये कि वह प्रान्तीय बैंको को सहकारी कागज की साख पर ऋण दे सके। साथ ही यह अधिकार भी होना चाहिये कि वह चल पदार्थ, सौदागरी सामान, तथा गोदामो की रसीद की ज़मानत पर ऋण दे सके।

कमेटी की सम्मति मे यदि सहकारी बैंको को ख़ज़ाने का काम दे दिया जावे तो सम्भवतः उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जावेगी। किन्तु वर्तमान स्थिति मे सहकारी बैंको को आन्दोलन सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त और कुछ भी न करना चाहिये नहीं तो उनकी शक्ति बंट जावेगी। कमेटी ने यह भी शिफारिश की है कि प्रान्तीय बैंको को गोदामो के बनवाने के लिये कम सूद पर रुपया दिया जावे।

अब केवल एक मांग शेष रहती है— कि सहकारी समितियो को इनकम टैक्स से मुक्त कर दिया जावे। सहकारी

समितियो का लाभ इनकम-टैक्स से मुक्त है, किन्तु सुपरटैक्स से मुक्त नही है। कमेटी की राय मे लाभ सुपर टैक्स से भी मुक्त कर देना चाहिये। गवर्नमेट सिक्यूरिटी तथा भूमि बन्धक बैंक के डिबैन्चरो मे जो रुपया लगाया जावे उसकी आय पर जो टैक्स लिया जाता है वह भी न लिया जावे, किन्तु यह उतने ही रुपये की आय पर छोड़ा जावेगा कि जितना रुपया रक्षित कोष, तथा चल पूँजी के लिये गवर्नमेन्ट सिक्यूरिटी तथा भूमि बन्धक बैंको मे लगाना नियमानुसार सहकारी समितियो तथा बैंको को आवश्यक है।

---

# नवां परिच्छेद

## सहकारी भूमि बंधक बैंक

यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि किसान को साधारण खेती बारी के कारबार को चलाने के लिये थोड़े समय के लिये ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इसके अन्तर्गत वह सभी ऋण आजावेगा जो कि पशु, बीज, खाद, हल तथा अन्य यन्त्र ख़रीदने के लिये, लगान देने के लिये, तथा अपने कुटुम्ब के पालन के लिये लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसान को पुराने ऋण को चुकाने के लिये, भूमि की चकबन्दी करने, उसको उपजाऊ बनाने के लिये, कूआं खोदने के लिये तथा क़ीमती यन्त्र ख़रीदने को अधिक समय के लिये ऋण चाहिये।

ग्राम्य सहकारी साख समितियां किसानो को थोड़े समय के लिये ऋण देती है। आरम्भ मे जब कि सहकारिता आन्दोलन का श्री गणेश हुआ था उस समय लोगो की यह धारणा थी कि साख समितियां अधिक समय के लिये भी ऋण दे सकेगी। यह केवल धारणा ही नही थी वरन साख समितियो ने अधिक समय के लिये ऋण दिया और अब भी देती है। किन्तु एक तो साख समितियो के पास इतनी पूँजी नहीं थी कि वे सदस्यो के पुराने ऋण चुका सके और न ऐसा उनके हित मे ठीक ही था, इस कारण साख समितियां अधिक समय के लिये ऋण बहुत कम देती है। अधिकतर प्रन्तीय वैकिंग इन-

कायरी कमेटियो की यह सम्मति है कि स्थिर- सम्पत्ति को वन्धक रख कर अधिक समय के लिये ऋण देना ग्रामीय साख समितियो के लिये ठीक नही है। एक तो साख समितियो को स्थिर सम्पत्ति की ज़मानत पर ऋण देने से व्यक्तिगत साख के महत्व का विस्मरण हो जाने की सम्भावना है, जो कि सहकारिता के सिद्धातो के विरुद्ध है। सहकारी साख समितियां तो केवल व्यक्तिगत साख पर ही ऋण देती हैं। दूसरा कारण यह है कि सैन्ट्रल बैंक तथा ग्रामीय साख समितियो मे डिपाजिट थोड़े समय के लिये होती है अस्तु, थोड़े समय के लिये जमा किये हुये रुपये से अधिक समय के लिये ऋण देना जोखिम से खाली नही है तथा यह बैंकिग के सिद्धान्त के भी विरुद्ध है। तीसरे अधिक समय के लिये ऋण देने मे सम्पत्ति की ज़मानत लेते समय उस के मूल्य को आंकने तथा उसके स्वामित्व के विपय मे जांच करने के लिये अनुभवी कार्यकर्ताओ और कर्मचारियो की आवश्यकता होगी जो कि ग्रामीय समितियो के पास नही है। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि भूमि वन्धक रखने पर उसके सम्बन्ध के कागज ग्रामीय समितियो के पास रखने मे जोखिम है, और अन्तिम सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थिति होगी कि सदस्यो के ऋण न चुकाने पर समिति की पूॅजी फंस जावेगी और समिति को सदस्य के विरुद्ध डिगरी करा कर उस भूमि को नीलाम करवाना होगा। यह सब कानूनी काम समिति सफलता पूर्वक नही कर सकेगी।

केवल प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की ही यह राय नहीं है कि समितियां भूमि बन्धक रखकर अधिक समय के लिये ऋण न दें, वरन सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए प्रान्तीय बैंकों के प्रतिनिधियों ने भी यही सम्मति दी थी।

यदि प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की रिपोर्टों का अध्ययन किया जावे तो ज्ञात होगा कि प्रान्तीय सहकारी बैंक, सैन्ट्रल बैंक, तथा साख समितियां, किसान के पुराने ऋण को चुकाने में असमर्थ हैं। यहां हम प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की अपने अपने प्रान्तों के विषय में सम्मति लिखते हैं।

आसाम—यद्यपि कुछ ऋण अधिक समय के लिये दिया जाता है किन्तु थोड़े समय के लिये जमा किये हुए रुपये से अधिक समय के लिये ऋण देना नीति के विरुद्ध समझा जाता है।

ऋण, लम्बे समय के लिये नहीं दिया जा सकता। यह ऋण दो साल से लेकर दस साल तक के लिये दिया जाता है। बिहार उड़ीसा कमेटी की राय मे ऋण कमसे कम पांच साल के लिये देना चाहिये। कमेटी की यह भी राय है कि सहकारी साख समितियां कभी भी सफलता पूर्वक इस समस्या को हल न कर सकेंगी।

बम्बई—बम्बई प्रान्त मे समितियां सदस्यको ७५० रुपये तक पुराना क़र्ज़ चुकाने के लिये ऋण देती हैं, किन्तु बहुत थोड़ी समितियां ही यह सुविधा प्रदान करती है।

बर्मा—बर्मा मे चार वर्षों के लिये ऋण दिया जाता है।

मध्यप्रान्त—मध्य प्रान्त मे साख समितियो ने सदस्यो के पुराने ऋण को चुका देने का प्रयत्न किया किन्तु सदस्यो से किश्तें वसूल न की जा सकी। अब आन्दोलन की नीति यह है कि अधिक लम्बे समय के लिये ऋण न दिया जावे।

मदरास—मदरास मे पांच वर्षों के लिये ऋण मिल सकता है

पंजाब—पंजाब मे सहकारी साखसमितियां बहुत कम पुराने ऋण को चुकाने के लिये ऋण देती है, यह कार्य वहां सहकारी भूमि बन्धक बैंक करते है।

ऊपर लिखे हुये विवरण से यह स्पष्ट है कि सहकारी साख समितियां अधिक समय के लिये किसान को पूँजी नहीं देसकती। इसके लिये भूमि बन्धक बैंक अधिक उपयुक्त है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी की भी यही सम्मिति है।

भूमि बन्धक बैंक तीन प्रकार के होते है। (१) सहकारी

(२) ग़ैर सहकारी, (३) अर्ध सहकारी। सहकारी भूमि बन्धक बैंक के सदस्य ऋण लेने वाले होते है, बैंक की पूँजी नहीं होती। जो भूमि बन्धक रखदी जाती है उसकी जमानत पर बन्धक बांड ( Mortgage bond ) वेचे जाते है और उनसे पूँजी प्राप्त की जाती है। यह बैंक लाभ को लक्ष्य करके कार्य नही करते वरन सूद की दर घटाने का प्रयत्न करते हैं।

ग़ैर सहकारी भूमि बन्धक बैंक मिश्रित पूँजी के होते है। जिस प्रकार कि अन्य व्यापारिक बैंक लाभ को दृष्टि से स्थापित किये जाते है वैसे ही यह बैंक भी हिस्सेदारो को सम्पत्ति होते है और लाभ की दृष्टि से चलाये जाते हैं। किसान इत्यादि अपनी भूमि बन्धक रख कर उनसे ऋण लेते है। इस प्रकार के बैंक योरोपीय देशो मे सर्वत्र ही स्थापित किये गये है किन्तु राज्य उन पर नियन्त्रण रखता है कि जिससे वे ऋण लेने वालो को तंग न करें। अर्ध सहकारी भूमि बन्धक बैंक न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते हैं और न ग़ैर सहकारी।

भारतवर्ष में बड़े ज़मीदारो के लिये ग़ैर सहकारी तथा किसानो के लिये सहकारी भूमि बन्धक बैंक उपयुक्त होगे। किंतु जो कुछ भी भूमि बन्धक बैंक भारतवर्ष मे स्थापित किये गये हैं वे अर्ध सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। इस समय जो भी बैंक कार्य कर रहे है वे परिमित दायित्व वाली संस्थायें है उनके स॰ ॰ अधिकतर ऋण लेने वाले ही होते है। किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भ॰ ने लिये जाते हैं कि जो ऋण लेने वाले

नही होते। इन सदस्यो को बैंक के प्रबन्ध मे सहायता पहुंचाने तथा पूँजी को आकर्षित करने के उद्येश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रांत के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। क्रमशः ऐसे सदस्योको हटा देने की नीति है कि जिससे बैंक पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे। किन्तु यह बात सबो को स्वीकार करनी पड़ती है कि जिस प्रकार रैफीसन सहकारी समितियो मे सदस्यो का समिति के कार्य से घनिष्ट सम्बन्ध होता है वैसा इन बैंको मे नही होता।

१६२६ मे रजिस्ट्रार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा भूमि बंधक बैंको की एक योजना तैयार की थी, वह इस प्रकार है।

बैंक के उद्येश्य—(१) किसानो की भूमि तथा मकानो को छुड़ाना, (२) खेती की भूमि तथा खेती बारी के धन्धे की उन्नति करना तथा किसानो के मकानो को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना, (४) भूमि खरीदने के लिये रुपया देना।

भूमि बंधक बैंक का कार्य क्षेत्र छोटा होना चाहिये, किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध न होसके। यह नियम न बनाया जावे कि ऋण केवल साख समितियो को ही दिया जावेगा, हां यदि ऋण लेने वाला साख समिति का सदस्य हो तो उसके विषय मे समिति का मत ले लिया जावे, किन्तु समिति पर उस ऋण का कोई उत्तर-दायित्य न रहे।

सदस्य को उसकी सम्पत्ति के मूल्य के आधे से अधिक ऋण नही दिया जासकता। प्रत्येक सदस्य को बैंक का हिस्सा

खरीदना होगा कि जिससे बैंक के पास अपनी निज की पूँजी हो जावे और जिसकी जमानत पर बैंक को बाहर से पूँजी मिल सके। ऋण लेने वाले के हिस्से का मूल्य जितना ऋण वह लेना चाहता है, उसका बीसवां हिस्सा होना चाहिये। प्रत्येक बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुये एक रक़म निश्चित करले जिससे अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जावे। प्रान्त के सब भूमि बन्धक बैंक अपना एक संगठन करे और एक केन्द्रीय संस्था स्थापित कीजावे। केवल केन्द्रीय संस्था ही डिबैंचर बेचे, पृथक पृथक भूमि बन्धक बैंक डिबैंचर न बेचे।

शाही कृषि कमीशन ने भी रजिस्ट्रार सम्मेलन के प्रस्ताव का अनुमोदन किया है और उसकी सम्मति में सहकारी भूमि बंधक अधिक उपयुक्त है। कृषि कमीशन के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया था कि सरकार भूमि बन्धक बैंक के डिबैंचरों को खरीदे अथवा नहीं। कमीशन का मत है कि सरकार को इन बैंको के डिबैंचरो पर सूद की गारंटी दे देना चाहिये, और उन को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिये। डिबैंचर केन्द्रीय संस्था बेचे। कुछ वर्षों तक एक सरकारी कर्मचारी बैंक की प्रबन्ध कारिणी समिति में अवश्य रक्खा जावे।

१९२८ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने कृषि कमीशन की रिपोर्ट पर विचार किया। सम्मेलन ने कृषि कमीशन की सम्मति का अनुमोदन किया केवल एक बात पर सम्मेलन ने कृषि कमीशन से मत भेद प्रकट कियाथा। रजिस्ट्रार सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया

कि सरकार को इन बैको के डिबैंचर ख़रीद कर तथा इनको ऋण देकर सहायता देनी चाहिये।

इस समय कुछ भूमि बन्धक बैक भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतो मे स्थापित किये गये है और उनका संगठन सहकारिता ऐक्ट के अनुसार हुआ है। पंजाव, मदरास, बम्बई, आसाम, तथा बंगाल मे यह पाये जाते है। अन्य प्रान्तो मे भूमि बन्धक बैक नही है, किन्तु सब प्रान्तो मे इन बैको के स्थापित करने का विचार हो रहा है;संयुक्त प्रान्त मे तो एक स्थापित भी होगया है। किन्तु अभी तक रजिस्ट्रार सम्मेलन की बनाई हुई योजना कार्य रूप मे परिणित नही होसकी है। कारण यह है कि जो भी भूमि बन्धक बैक स्थापित किये गये है वे इस योजना के पूर्व ही स्थापित किये जाचुके थे।

अब हम भिन्न भिन्न प्रान्तो के भूमि बन्धक बैको के विषय मे यहां कुछ लिखेंगे।

पंजाब—पंजाब मे १२ भूमि बन्धक बैक है। मियावली तथा झंग बैको के अतिरिक्त और सब बैक एक एक तहसील मे कार्य करते है। केवल वे दोनो बैक जिलो मे कार्य करते है। इन बैको के सदस्य साख समितियो के अतिरिक्त वे ही लोग हो सकते है जो कि भूमि के स्वामी है। 'किसी भी सदस्य को भूमि की मालगुजारी के तीस गुने से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता। तीन कामो के लिये ऋण दिया जाता है। पुराने ऋण को चुकाने के लिये, भूमि को छुड़ाने के लिये, तथा भूमि के

सुधार के लिये। १६३० मे लगभग एक-तिहाई कर्जदारो ने अपनी किश्ते नहीं चुकाई थी। अब सहकारिता विभाग ने निश्चय किया है कि अधिक से अधिक एक सदस्य को केवल ५०००) रु० ही दिये जावे, किन्तु केवल चार बैंको ने इस नीति को स्वीकार किया है। सात बैंको ने यह रक़म १०,००० और एक बैंक ने १५,००० निश्चित की है। कुछ बैंको मे डायरैक्टर स्वयं ऋण खूब ले लेते हैं तथा अपने संबन्धियो को उनकी हैसियत से अधिक ऋण दे देते है, जिसका फल यह होता है कि बैंक को हानि हो जाती है। इस कारण पांच बैंक तो डायरैक्टरो को ऋण देते ही नही और केवल एक मे बिना किसी रोक टोक के डायरैक्टरो को ऋण दिया जा सकता है। बाकी ६ बैंको में डायरैक्टरो को तभी ऋण दिया जा सकता है कि जब दो-तिहाई डायरैक्टर उपस्थित हो और सब ऋण देने को राज़ी हो, और सरकारी सदस्य लिखित स्वीकृति दे दे।

इन बैंको की कार्यशील पूँजी का बहुत बड़ा भाग सरकार ने ऋण स्वरूप दिया है। प्रान्तीय बैंको ने पाच लाख रुपये के डिबैंचर वेचे है। प्रान्तीय सरकार ने २५ वर्ष के लिये उनकी अदायगी की गारंटी दी है। यह आशा की जाती है कि आगे गारंटी की आवश्यकता न पड़ेगी।

मदरास—मदरास मे भूमि बन्धक बैंको का क्षेत्र बहुत छोटा होता है। एक बैंक कुछ गांवो के समूह मे ही कार्य ... है। बैंको का कार्य क्षेत्र इस कारण इतना छोटा रक्खा ...

जिससे कार्य कर्ता भूमि की भली भांति जाच कर सके और अवैतनिक डायरैक्टर गांवो मे जाकर देख सके कि बैक के कर्मचारियो की रिपोर्ट ठीक है अथवा नही। मदरास मे यह बैक अपने हिस्से की पूंजी का केवल आठ गुना या दस गुना ऋण बाहर से ले सकते है।

आरम्भ मे यह योजना थी कि यह बैक डिबैचर वेचकर कार्य शील पूंजी इकट्ठी करेंगे। सरकार ने यह स्वीकार कर लिया था कि जितने मूल्य के डिबैंचर बैंक बेच लेवेंगे उतने ही मूल्य के सरकार ले लेगी। बैंक दिये हुए ऋण पर ६ फी सदी सूद लेते है। जो ऋण ६ फी सदी सूद पर दिया जाता है वह सवा सोलह वर्ष के लिये होता है क्योंकि दिये हुये ऋण का १२ फी सदी प्रति वर्ष वसूल कर लेने से सवा सोलह वर्ष मे सूद सहित ऋण चुक जाता है। किन्तु सब बैको ने इस ढंग को स्वीकार नही किया है। कतिपय बैक प्रति वर्ष कुछ फी सदी असल का, और बचे हुए अंश पर सूद लेते है।

ऋण देने का ढंग यह है कि सदस्य प्रार्थना पत्र देता है। बैक उसकी भूमि का मूल्य अंकवाता है तथा उसका क़ानूनी अधिकार देखता है। ऋण की क्यो आवश्यकता है और उसके चुकाने की सदस्य मे योग्यता है अथवा नही। इतनी जांच कर चुकने पर ऋण दिया जाता है।

पिछले दिनो से इन बैको ने अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाया है और एक सदस्य को अधिक से अधिक ५०००) रु० देने का

निश्चय किया है। आरम्भ मे प्रत्येक बैंक अपने डिबैंचर पृथक बेचता था जिससे बड़ी गड़बड़ रहती थी, इस कारण एक केन्द्रीय संस्था को जन्म दिया गया है कि जा सब बैंकों के लिये डिबैंचर बेचेगी। प्रान्तीय बैंक ने इसके डिबैंचर खरीदकर इन बैंकों को सहायता दी है तथा प्रान्तीय सरकार ने इन डिबैंचरो पर जो कि अगले पांच वर्षो मे बेचे जावेगे ६ प्रति शत सूद देने की गारंटी दी है। किन्तु सरकार अधिक से अधिक पचास लाख रुपये पर ही गारंटी देगी। यह निश्चय किया गया है कि सब भूमि बन्धक बैंक अपने पास बन्धक रखी हुई भूमि को सैन्ट्रल बैंक (केन्द्रीय संस्था) के नाम करदें और सैन्ट्रल बैंक डिबैंचर निकाले। रजिस्ट्रार सरकार को ओर से ट्रस्टी नियुक्त किया गया है कि वह देखे कि बैंक डिबैंचर खरीदने वालो के प्रति अपना कर्तव्य पालन करता है कि नहीं। मद्रास मे इस समय ४२ भूमि बंधक बैंक कार्य कर रहे है।

बम्बई—बम्बई मे अभी हाल मे ही भूमि बंधक बैंको की स्थापना की गई है इस कारण यहां यह संख्या मे अधिक नहीं हैं। पूर्व खानदेश, धारवार, तथा भड़ौच, के जिलो मे बैंको की स्थापना हो चुकी है। जो उद्देश्य कि रजिस्ट्रार ने भूमि बन्धक बैंको के निर्धारित किये हैं उन्हीं कार्यों के लिये क़र्जा दिया जाता है।

बैंको के सदस्यों को जितना ऋण लेना होता है उसके पांच प्रति शत मूल्य के हिस्से उन्हें खरीदना पड़ते हैं। बैंक भूमि के मूल्य की आधी रकम तक ऋण देसकते है। ऋण १० से ३०

वर्ष तक के लिये दिया जाता है। बैंको की प्रबन्ध कमेटी मे रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक के प्रतिनिधि रहते है। सरकार ने प्रारम्भिक काल मे महकमा माल का एक एक आफिसर प्रत्येक बैंक को दे दिया है जो कि भूमि के मूल्य को कूतता है।

बङ्गाल—बङ्गाल मे भी इन बैंको की संख्या कम है। इस समय केवल दो बैंक कार्य कररहे है। एक राजशाही जिले मे दूसरा बाकरगंज ज़िले मे। इन बैंको का कार्य क्षेत्र भी छोटा है। जिन कार्यों के लिये ऋण दिया जाता है, वे लगभग वे ही है जो कि रजिस्ट्रार सम्मेलन ने निर्धारित किये थे। सदस्य को अपने हिस्सो के मूल्य का दस गुना ऋण मिल सकता है। ऋण एक वर्ष से लेकर २० वर्ष तक के लिये दिया जाता है।

आसाम—आसाम मे पांच बैंक है। अधिक से अधिक ऋण सदस्य के हिस्सो के मूल्य से बीस गुना तथा भूमि के मूल्य का आधा दिया जासकता है। जिन कार्यो के लिये ऋण दिया जाता है वे लगभग वहीं है जिनके लिये अन्य प्रान्तो मे ऋण दिया जाता है। अधिक से अधिक २० वर्ष के लिये ऋण दिया जाता है। और एक सदस्य को अधिक से अधिक १०,०००) रु० ही दिया जा सकता है।

सैन्ट्रल बैंकिग इनक्वायरी कमेटी के सामने भूमि बन्धक बैंको के सम्बन्ध मे निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित थे :—

(१) ऐसी कौन कौन सी आर्थिक आवश्यकताएं हैं जिनके

लिये किसान को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना उचित है।

(२) अधिक से अधिक ऋण कितने समय के लिये देना चाहिये और उसके चुकाये जाने का ढंग क्या होना चाहिये ?

(३) भूमि बन्धक बैंक अपनी कार्यशील पूँजी कैसे इकट्ठी करें। क्या हिस्से खरीदना आवश्यक माना जावे, उस दशा मे ऋण तथा हिस्सो के मूल्य का क्या अनुपात हो। यदि डिबैं-चर बेच कर कार्यशील पूँजी इकट्ठा करना अभीष्ट हो तो प्रत्येक भूमि बन्धक को यह अधिकार दिया जावे, अथवा किसी एक केन्द्रीय संस्था को। यदि प्रत्येक भूमि बन्धक बैंक को यह अधिकार न दिया जावे तो प्रान्तीय सहकारी बैंक यह कार्य करे अथवा कोई पृथक सैन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक इसके लिये स्थापित किया जावे।

(४) क्या भूमि बन्धक बैंक साधारण बैंको तथा सह-कारी सैन्ट्रल बैंको की भांति डिपाजिट लें। यदि ले तो उसके लिये क्या शर्तें होनी चाहिये ?

(४) जहां सरकारी साख समिति तथा भूमि बन्धक बैंक एक ही स्थान पर हो वहां उनका क्या सन्बन्ध होना चाहिये ?

(६) क्या सरकार इन बैंको को आर्थिक सहायता दे ? यदि दे तो किस प्रकार दे। बैंको को ऋण देकर, बैंको को टैक्स तथा फीस से मुक्त करके, डिबैंचरो के मूल तथा सूद की गारंटी

देकर, उनको ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना कर अथवा डिबैंचर खरीद कर।

(७) क्या एक विशेष कानून बना कर इन बैंको को यह अधिकार देना चाहिये कि वे बिना अदालत मे गये हुये बन्धक रखी हुई भूमि को बेच दे।

सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की यह सम्मति तो हम पूर्व ही लिख चुके है कि बड़े बडे जमीदारो के लिये तो व्यापारिक भूमि बन्धक बैंक जो मिश्रित पूँजी वाले हो स्थापित किये जांय और किसानो के लिये सहकारी भूमि बन्धक बैंक स्थापित किये जावे। इसके अतिरिक्त ऊपर लिखे प्रश्नो पर कमेटी की सम्मति नीचे लिखी जाती है।

(१) कमेटी की राय मे निम्न लिखित कार्यों के लिये ऋण देना चाहिये।

(क) किसान की भूमि और मकान को छुड़ाने के लिये तथा पुराने ऋण को चुकाने के लिये।

(ख) भूमि तथा खेती बारी के ढंग सुधारने के लिये तथा किसानो के मकान बनवाने के लिये।

(ग) विशेष अवस्थाओ मे भूमि खरीदने के लिये।

कितना ऋण और कितने समय के लिये दिया जावे यह ऋण लेने वाले की क्षमता तथा जिस कार्य के लिये ऋण लिया जा रहा है, उस पर निर्भर होगा। रुपया पांच वर्ष से लेकर बीस

वर्ष के लिये दिया जावे। आगे चल कर तीस वर्ष के लिये भी रुपया दिया जा सकता है। कमेटी की सम्मति मे ५००० रु० से अधिक एक सदस्य को न दिया जावे, सदस्य की भूमि का आधे से अधिक ऋण किसी भी दशा मे न दिया जावे।

कमेटी की राय मे ऋण सूद सहित बराबर बराबर किश्तो मे लिया जावे। जिससे कि एक निश्चित समय पर ऋण चुक जावे। इससे यह लाभ होगा कि किसान को लगभग उतनी ही किश्त देनी होगी जितना कि वह महाजन को सूद देता है। किन्तु बैंको को ये अधिकार दे दिया जावे कि यदि वे चाहे तो दूसरे ढंग से किश्ते वसूल कर सकते है।

भूमि बन्धक बैंको की कार्यशील पूँजी, हिस्सा पूँजी, तथा डिवैचरो से प्राप्त की जानी चाहिये। हिस्सा पूँजी दो प्रकार से प्राप्त की जासकती, एक तो आरम्भ मे हिस्सा वेच कर, दूसरे ऋण लेते समय दी हुई रक़म मे से पांच प्रति शत काट कर हिस्से का मूल्य वसूल करने से। किन्तु आरम्भ मे काम चलाने के लिये जहां कही भी आवश्यकता हो प्रान्तीय सरकार वैको को विना सूद के रुपया दे दे और डिवैचर विकने पर जो रुपया आवे उसमे से सरकार का रुपया दे दिया जावे। यह ध्यान मे रखने की बात है कि पूँजी की यह व्यवस्था वैको के प्रारम्भिक काल मे ही उपयुक्त होगी। विशेषज्ञो का कथन है कि आगे चल कर इन वैको को बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी, उस समय प्रान्तीय सर-

कारो को इन बैंको के हिस्से खरीद कर इनको सहायता पहुंचाना चाहिये ।

अधिकतर कार्यशील पूँजी डिबैंचरो के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कुछ विदेशी विशेषज्ञो ने कहा था कि बैंको की जितनी हिस्सा पूँजी हो उससे पांच गुने डिबैंचर निकालना चाहिये। किन्तु कमेटी इससे सहमत नही है। कमेटी की राय मे बैंक जितने मूल्य के डिबैंचर निकालना आवश्यक समझे निकाले किन्तु डिबैंचरो का मूल्य भूमि बन्धक रख कर दिये हुए ऋण से अधिक न होना चाहिये। क्योकि उस भूमि की जमानत पर ही डिबैंचर निकाले जावेगे। डिबैंचरो को सफलता पूर्वक बेचने के लिये सरकार द्वारा मूलधन की गारंटी दी जाने की आवश्यकता प्रतीत नही होती, हां सूद की गारंटी सरकार को अवश्य दे देना चाहिये। कमेटी की यह भी सम्मति है कि यदि सरकार को इस बात का संतोष हो जावे कि बैंक ने डिबैंचरो को चुकाने का प्रबंध कर लिया है तो इन डिबैंचरो को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिये ।

कमेटी की सम्मति है कि डिबैंचर एक केन्द्रीय संस्था ( प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक ) निकाले, और जिला भूमि बंधक बैंक उनको बेचे। जिला बैंक बंधक की जमानत पर प्रान्तीय बैंक से पूँजी ले ले और प्रान्तीय बैंक उस सिक्यूरिटी पर निर्भर हो कर डिबैंचर निकाले। बैंकिग इनक्वायरी कमेटी की यह स्पष्ट

सम्मति है कि सहकारी साख समितियां, सहकारी सैन्ट्रल बैंक, तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक थोड़े समय के लिये किसान को साख देने का प्रबंध करे ओर प्रान्तोय भूमि बंधक बैंक, तथा जिला भूमि बंधक बैंक अधिक समय के लिये साख दे। जहां सहकारी साख समिति तथा भूमि बन्धक बैंक दोनो ही कार्य कर रहे हों वहां दोनो संस्थाओ को एक दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र रहना चाहिये हां दोनो मे सहयोग होना आवश्यक है। यदि कोई साख समिति का सदस्य भूमि बंधक बैंक से ऋण लेने के लिये प्रार्थना पत्र दे तो बैंक समिति से उसके विषय मे पूछ तांछ करले, किन्तु समिति ऋण की जिम्मेदार न होगी।

कमेटी, भूमि बंधक बैंक के लिये बाहर की डिपाजिट लेना उचित नही समझती। कारण यह है कि बैंक को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना पड़ता है अस्तु, डिपाजिट के रुपये से ऋण देना बैंक के लिये उचित न होगा।

भूमि बधक बैंको की सफलता के लिये सहकारितावादी यह आवश्यक समझते है कि बैंको को यह अधिकार दिया जावे कि वे बिना अदालत मे गये अपना रुपया वसूल करने के लिये बंधक रक्खी हुई भूमि जब्त करले और बेच दें। अधिकतर प्रान्तोय बैंकिग इनक्वायरी कमेटियो ने इस मांग का विरोध किया है। उन का कहना है कि जब बैंक इस अधिकार का उपयोग करेंगे तब उनके विरुद्ध जनता मे विरोधी वातावरण तैयार हो जावेगा। दूसरा कारण उनके विरोध का यह है कि यदि बैंको को यह अधि-

कार दे दिया गया तो वे ऋण देते समय भूमि की भली भांति जांच पड़ताल नही करेगे। उनके विचार से यदि वैक सावधानी से कार्य करे और उनका प्रबन्ध अच्छा हो तो मुकदमेबाजी की आवश्यकता न पडेगी। सैन्ट्रल वैकिंग इनकायरी कमेटी के सामने भी यह प्रश्न उपस्थित किया गया था। जो लोग कि वैको को यह अधिकार देने के पक्ष मे है उनका कथन है कि यदि कोई विशेष क़ानून बनाकर यह अधिकार न दे दिया गया तो फल यह होगा कि वैक को अदालत की शरण लेनी पड़ेगी, अथवा रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किये गये पंच के सामने मुकदमा लड़ना पड़ेगा। भारतवर्ष मे सम्पत्ति का हस्तांतरकरण क़ानून (Transfer of Property Act) तथा जाब्ता दीवानी (सिविल प्रोसीडयोर कोड) इतने पेचीदे है कि बैक को डिगरी कराने मे बहुत समय तथा धन नष्ट करना होगा। इसका फल यह होगा कि वैक को कार्य करने मे बहुतसी रुकावटो का सामना करना होगा तथा डिबैचरो की बिक्री पर इसका बुरा असर होगा। योरोपीय देशो मे भी भूमि बधक बैको को विशेष क़ानून बना कर यह अधिकार दिया गया है कि यदि देनदार ऋण नही चुकाता तो वैक बिना अदालत मे गये भूमि को बेच सकता है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का मत है कि बिना यह अधिकार दिये डिबैचर वेच कर कार्यशील पूॅजी प्राप्त नही की जासकती, जनता डिबैचरो को न लेगी। अस्तु, कमेटी ने इस मांग का समर्थन किया है साथ ही यह भी कहा है कि देनदार को यह अधिकार

# दसवां परिच्छेद

## अपव्यय को बंद करने वाली तथा मितव्ययता बढ़ाने वाली समितियां।

**धर्म गोला**—धर्म गोला सहकारी साख समिति की ही भांति समितियां है। वे अनाज का ऋण देते है। किसान को निर्धन होने के कारण अपना अनाज फसल के काटते ही वेच देना पड़ता है, क्योकि उसे मालगुजारी, लगान तथा महाजन का ऋण देना होता है। जिस समय किसानो को अनाज वेचना पड़ता है उस समय अनाज का भाव वाजार मे बहुत गिरा हुआ होता है। इसका फल यह होता है कि किसानो के पास इतना अनाज नही रहता कि वह वर्ष भर अपने कुटुम्ब का भरण पोषण कर सके। इस कारण किसान को साहूकार से बहुत अधिक सूद पर अनाज उधार लेना पड़ता है, यदि किसान दो या तीन महीने तक रुक सके तो उसको अपने अनाज को अच्छी क़ीमत मिल सकती है।

गोला किसान को उस समय जब कि भाव गिरा होता है, अनाज नही वेचने देता है,वह किसानो को अनाज उधार देता है, तथा यथेष्ट अनाज एकत्रित कर लेता है कि जिससे अकाल के समय उसका उपयोग किया जासके।

गोला अपरिमित दायित्व वाली संस्था होती है उसका संगठन सहकारी साख समिति जैसा ही होता है। साधारण सभा

को सारे अधिकार होते है तथा प्रबन्ध कारिणी सभा दैनिक कार्य-वाही की देख भाल करती है। गोला की पूँजी,अनाज को डिपाज़िट, अनाज के दान, तथा अनाज के ऋण से इकट्ठी होती है। सदस्य केवल प्रवेश फीस अनाज में नही देते। समिति अधिक से अधिक कितना अनाज डिपाज़िट के रूप मे ले सकती है तथा कितना उधार ले सकती इसका निश्चय साधारण सभा ही करती है। प्रत्येक सदस्य को सभा द्वारा अनाज की निर्धारित राशि गोले को देनी पड़ती है जो सूद सहित कुछ वर्षों बाद दे दी जाती है। गोला सदस्यो को ही अनाज उधार देता है, अनाज बीज के लिये, कुटुम्ब के पालन के लिये, तथा अधिक सूद पर लिये हुए अनाज को वापस देने के लिये, दिया लाता है। सूद २५ फी सदी लिया जाता है। अनाज के गोले बिहार-उड़ीसा, पंजाब, मैसूर तथा कुर्ग मे पाये जाते है।

**रहन सहन सुधार समितियां**—भारतीय ग्रामो में सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों पर इतना अधिक अपव्यय होता है कि जिसका कुछ ठिकाना नही। यद्यपि किसान निर्धन होता है फिर भी जन्म, मरण, तथा विवाहोत्सव के समय पर जाति बिरादरी को दावत देने मे, तथा अन्य कार्यों मे कर्ज ले कर व्यय कर देता है। इस अपव्यय को रोकने के लिये कुछ प्रान्तो में समितियां स्थापित की गई है। पंजाब मे और संयुक्त प्रान्त में इन समितियो ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पंजाब के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन स्थानो पर यह समितियां स्थापित हो गई

है वहां के रहने वालो को इनके द्वारा प्रति वर्ष हजारो रुपये की बचत होती है। जो मनुष्य कि इन समितियो के सदस्य होते है वे तो नियमानुसार इस प्रकार का अपव्यय कर ही नही सकते, साथ ही वे अन्य किसी मनुष्य के विवाहोत्सव मे सम्मिलित नही हो सकते जहां इस प्रकार का अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव गैर सदस्यों पर भी पड़ता है। समिति विवाह तथा अन्य उत्सवो मे कितना व्यय होना चाहिये यह निश्चित-करती है और जो सदस्य नियमानुसार कार्य नही करता उस पर जुर्माना करती है। यह समितिया गावो की सफाई का कार्य भी करती है। गलियो को साफ तथा उनको एकसा करवाती है। कुछ समितिया गाव वालो को हवा का महत्व बतलाकर मकानो मे खिड़की इत्यदि बनवाती है। यह समितियां जेवर पनवाने का भी विरोध करती है क्योंकि आर्थिक दृष्टि से तो यह हानिकर है ही साथ ही चोरो का भी भय रहता है। यह समितियां सदस्यो को खाद गढ्ढो मे रखने के लिये बाधित करती है, जिससे कि गांव गन्दा न हो और खाद उत्तम तैयार हो। पंजाब मे एक समिति ऐसी है जिसके सदस्यो ने कंडे न बनाने और सारे गोबर की खाद बनाकर खेतो मे डालने का निश्चय किया है। संयुक्त प्रान्त और पजाब मे यह समितियां ग्राम सुधार का कार्य किसी न किसी रूप मे अवश्य कर रही है। इनकी संख्या पंजाब-प्रान्त मे लगभग ३०० के है। संयुक्त प्रान्त मे इन समितियो की संख्या पंजाब से बहुत अधिक है। यह समितिया अधिकतर प्रांत

प्रान्त के पूर्व मे हैं। गांवो की सफाई, खाद बनाने, शिक्षा देने, तथा अपव्यय को रोकने का कार्य यह समितियां विशेष रूप से करती है। संयुक्त प्रान्त के सहकारिता विभाग के उच्च अधिकारियो का मत है कि इस प्रान्त की समितियां अन्य सब प्रान्तो की समितियो से अधिक सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। अन्य प्रान्तो मे सहकारी साख समितियां ही इस बात का प्रयत्न करती हैं कि अपव्यय कम हो। काश्मीर राज्य मे सहकारी साख समितियो ने यह नियम बना लिया है कि यदि कोई सदस्य सामाजिक कार्यो पर अधिक व्यय करे तो उस पर जुर्माना किया जावे।

पंजाब मे एक अत्यन्त उपयोगी संस्था को जन्म दिया गया है वह है मुक़दमे तय करने वाली समितियां। आज हमारे देश मे मुक़दमेबाज़ी का रोग इस बुरी तरह से फैला हुआ है कि सम्भवतः और किसी भी देश मे इतनी निर्धन जनसंख्या मुक़दमे बाज़ी म इतना अधिक अपव्यय न करती होगी। प्रत्येक गाव वर्ष भर मे हजारो रुपय वकीलो और अदालत की भेट कर देता है। घर मे भोजन नही है किन्तु कर्ज लेकर, पशुधन वेचकर हमारे मूर्ख किन्तु निर्धन किसान भाई मुक़दमे लड़ते है। इस भयंकर अपव्यय को रोकने के लिये पजाव मे लगभग ५० सहकारी समितियां स्थापित की गई है। समिति की पंचायत समिति के सदस्यो के मुक़दमे फैसल करती है। यदि पंचायत समझौता नहीं करा पाती है तो पंच नियुक्त कर दिये जाते है और वे फैसला करते हैं। पंचो का फैसेला अदालत को मान्य होता है।

किन्तु ऐसे बहुत कम अवसर आते है जब कि समिति को फैसला अदालत के द्वारा मनवाना पडे। सदस्य स्वयं फैसले को मान लेते है। संयुक्त प्रान्त मे पंचायते स्थापित की गई है जो मुकदमो का फैसला करती है।

**मितव्ययिता सहकारी समितियां**—पंजाब मे मितव्ययिता सहकारी समितियां यथेष्ट संख्या मे स्थापित कर दी गई है। यह समितियां नौकर पेशा तथा मजदूरो मे मितव्ययिता के भाव का प्रचार करती है। भारतवर्ष मे नौकर पेशा तथा मजदूरो मे मितव्यता के भाव को जागृत करने की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि इस देश मे सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यो मे मनुष्य को अत्याधिक व्यय करना पड़ता है। ग्राम निवासी को कुछ न कुछ अवश्य बचाना चाहिये नही तो उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पडता है। यह समितियां अपने सदस्यो से प्रति मास उनके वेतन मे से कुछ लेकर जमा करती है तथा उस रुपये को किसी लाभदायक कार्य मे लगाकर अपने सदस्यो के लिये सूद प्राप्त करती हैं। दो या चार वर्षों के उपरान्त वह रुपया सूद सहित वापिस कर दिया जाता है। यह समितियां अधिकतर कर्ज नही देती हां कुछ समितिया जितना रुपया कि जमा हो जाता है उसका ६० फी सदी कर्ज दे देती है। यदि समिति जमा किये हुए रुपये से अधिक कर्ज दे दे तो वह मितव्ययिता समिति नही रह जाती, वह साख समिति हो जाती है। पंजाब मे लगभग १००० मितव्ययिता समितियां है जिनमे लगभग आठ लाख रुपये जमा है।

इन समितियो में स्कूलो के अध्यापक ही अधिकतर सदस्य होते हैं, किन्तु कुछ वकील, पुलिसमैन, रेलवे कर्मचारी तथा दूकानदार भी इन समितियो के सदस्य है। पंजाब मे सवा सौ समितियां केवल स्त्रियो की है जिन्होने एक लाख रुपये जमा कर लिये है। इसमे कोई सन्देह नहीं यदि मितव्ययिता का प्रचार किया जावे तो यथेष्ट रुपया जमा किया जा सकता है, क्योंकि बहुत से साधारण स्थिति के नौकर तथा मज़दूर यथेष्ट रुपया जमा करते है।

पंजाब मे स्कूलो के विद्यार्थियो के लिये भी मितव्ययिता समितियां स्थापित की गई हैं। एक स्कूल की समिति ने एक नई योजना निकाली है। विद्यार्थियो से जंगलो की कुछ चीज़ो को इकट्ठा करने के लिये कहा जाता है और जब वे अधिक राशि मे इकट्ठी होजाती हैं तो बेच दी जाती हैं और विद्यार्थियो के नाम उनका रुपया जमा कर लिया जाता है।

मदरास मे ऐसी लगभग सवा सौ समितियां हैं तथा संयुक्त प्रान्त, अजमेर मेरवारा, और बम्बई मे भी थोड़ी सी समितियां मज़दूरो में सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। यह समितियां अपने सदस्यो को होम-सेफ ( छोटी तिजोरी ) देकर कुछ रुपया बचाने की आदत डाल सकती हैं। बम्बई, बिहार, तथा संयुक्त प्रान्त में कुछ समितियो ने ऐसा किया भी है।

**मुठिया पद्धति**—बंगाल तथा बिहार मे सहकारी साख समितियो ने मुठिया पद्धति चलाई है। प्रति दिन प्रत्येक सदस्य से मुट्ठी भर चांवल अथवा और कोई अनाज लिया जाता है और

उसको वेचकर सदस्यों के नाम रुपया जमा कर दिया जाता है। वंगाल के एक जिले मे सहकारी साख समितियो ने १६२६ में मुठियो द्वारा प्राप्त अन्न ८३,००० रु० को वेचा। गांवो मे मितव्ययिता का प्रचार करने का यह ढंग अच्छा है।

**लगान देने वाली समितियां**--पंजाब मे लगान देने वाली कुछ समितियां स्थापित की गई है। यह समितियां प्रति वर्ष फसल पर सदस्यो से कुछ रुपया वसूल करती है। इनका उद्देश्य है कि वे इस प्रकार इतना रुपया जमा कर लेगी कि प्रत्येक सदस्य को जमा के सूद से उनकी लगान दे दे। यह समितियां अभी नई है इस कारण इनके विषय मे कुछ कहा नही जा सकता।

**चारा सहकारी समितियां**—थोड़ीसी समितियां पंजाब तथा बड़ौदा राज्य मे चारे को अच्छी फसल के समय एकत्रित करके अकाल मे सदस्यो को देने के लिये स्थापित की गई है।

पंजाब मे पचास के लगभग समितियां फसल नष्ट हो जाने पर सदस्यो की सहायता करने के लिये स्थापित की गई है। समितियां हर फसल पर कुछ अनाज किसान से लेती है और उसको वेचकर उसका मूल्य उसके नाम जमा कर देती है। यह रुपया सदस्य साधारणतः निकाल नही सकता। जिस साल उसकी फसल नष्ट हो जाती है तभी उसको रुपया निकालने की आज्ञा मिलती है।

---

# ग्यारहवा परिच्छेद

## दूध सहकारी समितियां

भारतवर्ष को अधिकतर जनसंख्या शाकाहारी है फिर भी ऐसे मनुष्यो की संख्या कुछ कम नही है जिन्हे मांस खाने मे कोई आपत्ति नहीं और जो कभी कभी थोड़ा बहुत मांस खाते भी है, किन्तु जिन्हे मांस खाने को नही मिलता। बात यह है कि जिन देशो की आबादी घनी है वे मांसाहारी हो ही नहीं सकते। भूमि की उत्पादन शक्ति तथा जन संख्या का घनिष्ट सम्बन्ध है।

घने आबाद देश के लिये मांस विलास की वस्तु है। जितनी भूमि पर एक गाय का निर्वाह होता है उतनी भूमि पर अनाज उत्पन्न करके आठ मनुष्यो का भोजन उत्पन्न किया जा सकता है। अस्तु, मांसाहारी केवल वही देश हो सकते है जहां भूमि तो बहुत है किन्तु जन संख्या कम है, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा, अरजैनटाइन, इत्यादि। अथवा वे घने आबाद देश मांसाहारी हो सकते है जो धनवान होने के कारण विदेशो से मांस मंगाकर खा सकते है, जैसे इङ्गलैड इत्यादि। भारतवर्ष मे जो लोग मांस खाते है उन्हे यथेष्ट मांस खाने को कहां मिलता है? साधारण भारतीय स्वाद के लिये कभी कभी मांस खा लेता है।

इस कारण भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या को शाकाहारी बनना पड़ा है, अस्तु, भारतीयो के स्वास्थ्य के लिये फल और दूध की बड़ी आवश्यकता है। यदि देश मे दूध की उत्पत्ति का

हिसाब लगाया जावे तो ज्ञात होगा कि प्रति मनुष्य प्रति दिन आध छटांक से भी कम दूध उत्पन्न होता है। ऐसी परिस्थित मे मनुष्यो का स्वास्थ्य कैसे अच्छा रह सकता है विशेष कर नगरो मे तो दूध को समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। शहरो को छोड़ दीजिये वहां तो दूध का अकाल है, छोटे छोटे क़स्बो मे भी दूध उचित मूल्य पर नही मिलता। शहरो मे समीपवर्ती गांवो से दूध आता है अथवा शहरो मे रहने वाले घोसी और ग्वाले दूध को बेचते है। किन्तु दोनो ही प्रकार का दूध अच्छा नही होता।

**गांव से आया हुआ दूध**—अधिकतर नगर के समीपवर्ती पाच या छः मील की दूरी से किसान दूध बेचने आता है। जो किसान भैस रखता है वह शहर के किसी हलवाई से बातचीत कर लेता है। हलवाई खोये के हिसाब से दूध के दाम देता है। यदि हलवाई किसान से आठ सेर का दूध लेता है तो ग्राहक को चार सेर का ही देता है। किसान हलवाई को शुद्ध दूध देता है किन्तु वह सायंकाल शहर मे नही आ सकता इस कारण सायंकाल का दूध प्रातः काल के दूध के साथ मिला कर लाता है। अतएव नगर-निवासियो को बासी दूध पीने को मिलता है। इस प्रकार दूध पीने वाले और बेचने वाले दोनो को हानि उठानी पड़ती है, क्योकि किसान को अपना दूध सस्ते दामो पर देना होता है।

**शहरों के ग्वालों का दूध**—शहरो के घोसी अपनी गाय भैसो को लेकर शहरो मे ही रहते हैं। शहरो मे स्थान की कमी होने के कारण इन ग्वालो के स्थान बहुत गन्दे रहते है जहां एक

प्रकार के कीड़े उत्पन्न हो जाते है जो कि दूध को दूषित कर देते हैं। विशेषज्ञो का कथन है कि शहरो के कीटाणु युक्त दूध को पीने के ही कारण बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते है। दूध बहुत शीघ्र बिगड़ने वाली वस्तु है इस कारण ग्वालो का दूध स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। ग्वाला भी उसी कीमत पर दूध बेचता है जिस पर हलवाई। शहरो मे दूध पहुंचाने की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है और सहकारी समितियो के द्वारा ही वह हल हो सकती है।

**दूध सहकारी समितियों का संगठन**—समीपवर्ती चार पांच गांवो के लिये सहकारी समिति का संगठन किया जावे। जितने किसान गाय या भैस रखते हैं उनको सदस्य बनाया जावे। प्रत्येक सदस्य को अपना सब दूध समिति के दफ्तर मे निश्चित समय पर पहुंचाने पर वाध्य किया जावे। जर्मनी के ववेरिया प्रान्त मे समितियो ने किसानो का दूध इकट्ठा करने का एक अच्छा ढंग निकाला है। प्रत्येक सदस्य को बारी बारी से अपने गांव भर का दूध इकट्ठा करके अपनी गाड़ी मे समिति के कार्यालय मे लाना पड़ता है, इससे दूध इकट्ठा करने मे सुविधा होती है। डैनमार्क की सहकारी समितियो ने दूध इकट्ठा करने के लिये एक नवीन योजना निकाली है। जिन प्रदेशो मे पक्की सड़के है वहां की समितियां मोटर के द्वारा सदस्यो का दूध इकट्ठा करती हैं। प्रत्येक गांव के सदस्य निश्चित समय पर अपना दूध लेकर गांव के बाहर सड़क के किनारे आ जाते हैं और मोटर आकर

उनका दूध ले जाती है। जहां सड़के अच्छी नहीं है वहा यह काम घोड़ा गाड़ियो से लिया जाता है। समिति प्रत्येक सदस्य को एक बर्तन देती है जो प्रति दिन भाप द्वारा साफ किया जाता है। इसी बर्तन मे भर कर सदस्य दूध समिति को देता है।

समिति का मन्त्री वैतनिक कर्मचारी होता है उसे दूध के धंधे का जानकर होना आवश्यक है। डैनमार्क तथा जर्मनी मे दूध के धंधे की शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी मन्त्री बनाये जाते हैं। मन्त्री दूध की जाच करता है, यदि दूध मे मिलावट होती है तो सदस्य पर जुर्माना किया जाता है। दूध नापकर सदस्य के हिसाब मे जमा कर लिया जाता है, कही कही दूध का मूल्य मक्खन के औसद से दिया जाता है।

दूध आ जाने पर समिति का मन्त्री समिति की गाड़ी मे दूध नगर को भेज देता है। समिति मक्खन बनाने की मशीन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ अपनी पूँजी से खरीदती है। मन्त्री उन यन्त्रो के उपयोग से उत्तम जाति का मक्खन तैयार करता है। समिति अधिक राशि मे मक्खन बनाती है और डिब्बो मे भर कर विदेशो मे बेचती है। एक जिले की सहकारी दूध समितिया मिल कर एक दूध सहकारी यूनियन का संगठन करती है। यूनियन का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह समितियो द्वारा बनाये हुए मक्खन के लिये विदेशो मे बाजार तैयार करे और अपने से संबंधित समितियो की देख भाल करे। यूनियन विदेशो मे विज्ञापन देती है, और समितियो को उचित परामर्श

देती है। यही कारण है कि हम संसार के प्रत्येक देश मे डैन्मार्क का मक्खन बिकता हुआ देखते हैं।

**संगठन**—समिति के जितने सदस्य होते हैं उनकी सम्मिलित सभा को साधारण सभा कहते है। साधारण सभा अपनी बैठक मे प्रबंध कारिणी समिति का चुनाव करती है। साधारण सभा दूध के भाव को निर्धारित करती है तथा पानी मिलाने वालो के लिये दंड निश्चित करती है। साधारण सभा ही मन्त्री को नियुक्त करती है। मन्त्री का केवल यही काम नही होता कि वह दूध का प्रबंध करे वरन वह सदस्यो के पशुओ की प्रति सप्ताह जांच करता है और पशु पालन के विपय मे उन्हे सदैव परामर्श देता रहता है, पशुओ को किस प्रकार चारा खिलाना चाहिये, तथा पशुओ को किस प्रकार स्वस्थ और स्वच्छ रक्खा जा सकता है, इत्यादि बाते वह सदस्यो को बतलाना रहता है। यदि सदस्य का पशु बीमार हो जावे तो मन्त्री उसका उपचार करता है।

समिति के हिस्से सदस्य खरीदते हैं। हिस्सो का मूल्य किश्तों मे चुकाया जा सकता है। समिति सहकारी बैंको से कर्जा लेती है और उचित सूद पर सदस्यो को पशु खरीदने के लिये रुपया उधार देती है। समिति उत्तम जाति के सांड पालती है और सदस्यो के पशुओ की नस्ल को उत्तम तथा अधिक दूध देने वाला बनाती है। समिति चारे का भी प्रबंध रखती है जो आवश्यकता पड़ने पर सदस्यो को उधार दिया जाता है।

**भारतवर्ष में दूध का धन्धा**—भारतवर्ष मे पशुओ की

दशा इतनी शोचनीय है जितनी संसार के किसी भी देश मे नहीं है। यहां गाय का इतना ह्रास हो चुका है कि वह दूध के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होगई है। डेनमार्क मे १८ सेर से कम दूध देने वाली गाय को कोई मनुष्य नही पालता। भारतवर्ष मे पशुओ के ह्रास के दो मुख्य कारण है, एक तो अच्छे सांडो की कमी, दूसरे चारे का अभाव। एक सीमा तक सहकारी समितियां इन दोनो समस्याओ को हल कर सकती हैं।

अभी तक भारतवर्ष मे इस महत्वपूर्ण विषय की ओर जनता का ध्यान नही गया है हां, कुछ स्थानो पर सहकारी दूध समितियां स्थापित हुई है जिनमे कलकत्ता के समीपवर्ती गांवो की समितियां विशेष उल्लेखनीय है।

कलकत्ता जैसे विशाल जन संख्या से परिपूर्ण नगर को प्रति दिन बहुत दूध की आवश्यकता रहती है। समीपवर्ती गांवो से ही कलकत्ते को दूध मिलता है। सहकारी दूध समितियो के स्थापित होने से पूर्व और जिन गांवो मे समितियां स्थापित नही हुई है वहां आज भी दूध कलकत्ते तक लाने का धंधा ग्वाले करते है। ग्वाले गाय नही रखते उनका काम केवल गांव से दूध लाकर बेचना भर है।

ग्वाले हर छमाही गाय वालो को कुछ पेशगी रुपया दे देते है और उनसे यह तय कर लेते है कि वह उसी ग्वाले को दूध देगा। ग्वाला प्रात. काल ही अपने दूध दुहने वालो को गाय वालो के मकानो पर भेज देता है और वे आसामी की गायो को दुह लाते है।

ग्वाला उस दूध को कलकत्ते ले जाता है अथवा दही या छाना बनाता है। ग्वाला कलकत्ते बिना पानी मिलाये दूध नही ले जाता, पानी मिलाते समय वह इस बात का भी ध्यान नही रखता कि पानी गंदा तो नही है। यह पानी मिला हुआ दूध बड़े बड़े पीतल के कलसो मे भर लिया जाता है और उनके मुँह मे पत्तियां ठूस दी जाती है जिससे दूध न छलके। यह कलसे भी साफ नही रहते। ग्वाला माहवारी टिकिट ले लेता है और प्रातः काल रेल द्वारा दूध कलकत्ते तक लाता है। गाड़ियो मे ग्वालो के लिये एक तीसरे दर्जे का डिब्बा रहता है जो प्रायः बहुत गंदा होता है।

सत्रह वर्ष व्यतीत हुये जब श्री डोनोवन तथा श्री जे. एम. मित्रा का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होने प्रयन्त करके एक दूध सहकारी समिति की स्थापना की। आरम्भ मे तो गांव वाले तैयार ही नही हुये किन्तु एक गांव के किसान जिनका ग्वाले से झगड़ा हो चुका था और जो इस चिन्ता मे थे कि वे अपना दूध कलकत्ते मे किस प्रकार बेचे, तैयार होगये और पहली समिति की स्थापना होगई।

समिति ने किसानो को ग्वाले से एक रुपया फी मन अधिक दिया और उनके हिसाब की पासबुक हर किसान को दे दी। समिति भी दूध दुहने वालो को नौकर रखती थी। आरम्भ मे समिति को बहुत थोड़ा लाभ हुआ किन्तु समिति ने दो बातो मे सफलता प्राप्त की, एक तो किसानो को दूध की क़ीमत अधिक दी दूसरे ग्राहको को शुद्ध दूध दिया। क्रमशः समितियों की संख्या

बढ़ने लगी, समितियो के सदस्यो को दूध का अधिक मूल्य मिलते देख अन्य गांव मे भी किसान समितियो के सदस्य वनने को लालायित होने लगे और कलकत्ते मे भी समिति के दूध की मांग बढ़ने लगी। सन १६१६ मे समितियो ने एक दूध सहकारी यूनियन संगठित की, और तवसे समितियो की संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ती गई। इस समय लगभग ११० दूध समिनियां यूनियन से संबंधित है जिनके लगभग ६५०० सदस्य हैं। केवल कलकत्ते मे ही यूनियन लगभग १५० मन दूध प्रति दिन वेचनी है।

दूध की उत्पत्ति का केन्द्र ग्राम्य दूध समितियां हैं, दूय यूनियन तो केवल वेचने का प्रवन्ध करती है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ग्राम्य समिति के सदस्यो को साधारण सभा, प्रवन्ध कारिणी समिति, सभापति, मन्त्री तथा मैनेजर को चुनती है। प्रत्येक सदस्य को केवल एकही वोट होती है फिर वह चाहे कितने हिस्से खरीद चुका हो। यूनियन की केवल ग्राम्य दूध सहकारी समितियां ही सदस्य होसकती है। दूध यूनियन, समितियो को पूॅजी देती है, उनका निरीक्षण तथा नियन्त्रण करती है, और कलकत्ते मे दूध वेचती है।

समितियो के प्रतिनिधि यूनियन के डायरैक्रो का चुनाव करते है। प्रत्येक समिति की एक वोट होती है। केवल सभापति और उपसभापति नही चुने जाते। डायरैक्टर ही यूनियन के कार्य की देख भाल करते हैं।

यूनियन ने कुछ भण्डार स्थापित किये है जिनमे कर्मचारी

नियुक्त किये गये है। भंडार पर समितियो का दूध ले लिया जाता है। जिन समितियो के समीप कोई भंडार नहीं है वे समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पर दूध भेज देती हैं। भण्डारो के मैनेजर रेलवे के द्वारा दूध कलकत्ते भेज देतेहै। कलकत्ते मे यूनियन का एक कर्मचारी दूध ले लेता है तथा ग्राहकों को दूध भेज दिया जाता है।

भंडार मे जब दूध आता है तो भंडार का मैनेजर यन्त्र से उसकी जांच करता है तथा शुद्ध बर्तनो मे भरे हुये दूधको कलकत्ते भेजता है। यूनियन एक पशु चिकित्सक को रखती है जो समितियो के सदस्यो के पशुओ की जांच करता है और जहां पशु रक्खे जाते हैं उन स्थानो को देखता है कि गन्दे तो नहीं है। इन सब कर्मचारियो के ऊपर एक सरकारी कर्मचारी है जो कि यूनियन का चेयरमैन है। सरकार ने इस कर्मचारी की सेवाये सहकारिता विभाग को दे दी हैं। दूधको वैज्ञानिक ढंगसे सुरक्षित तथा शुद्ध रखनेके लिये यूनियन ने एक फैक्टरी स्थापित की है। यूनियन मोटर, बैलगाड़ी, तथा ठेलों के द्वारा ग्राहकों के पास दूध पहुंचाती है, और अपने कर्मचारियों तथा एजेंटो के द्वारा दूध बेचती है।

आरम्भ में यूनियन के पास बहुत थोडी पूँजी थी किन्तु इस समय यूनियन की कार्यशील पूंजी एक लाख से कुछ ही कम है और निजी पूँजी अस्सी हजार रुपये से कुछ अधिक है। यूनियन का वार्षिक लाभ लगभग रु० २०००० है। यूनियन ने बहुत से प्रायमरी स्कूल खोले है जिनसे कि सहकारी समितियों के सदस्यों के लड़के शिक्षा पासकें, यूनियन ने इन गांवों में कुए भी खुदवायें,

तथा बढ़िया सांड़ ख़रीद कर उन गामो मे रक्खे है जिससे कि सदस्यो के पशुओ की जाति अच्छी बने। बङ्गाल मे कलकत्ते के अतिरिक्त ढ़ाका, दार्जलिग, तथा अन्य स्थानो मे भी सहकारी समितियां स्थापित होगई है जिनकी संख्या ७५ से कुछ ऊपर है। प्रान्त मे यह आन्दोलन अत्यन्त सफल हुआ है और भविष्य मे अधिकाअधिक उन्नति की आशा है।

कलकत्ते की भांति मदरास मे भी दूध सहकारी समितियां स्थापित की गई है। यह समितियां संख्या मे लगभग एक दर्जन है जो कि एक यूनियन से सम्बन्धित है। इनके अतिरिक्त वम्बई मे सात डेयरी है, तथा संयुक्त प्रान्त मे भी एक सहकारी डेयरी है।

पंजाब मे यद्यपि दूधसहकारी समितियो का तो संगठन नही हुआ है किन्तु कुछ ऐसी समितियां स्थापित की गई है जो कि प्रति सप्ताह अपने सदस्यो की गायो का दूध नापती है और उसका लेखा रखती है। समिति का निरीक्षक सदस्यो को बतलाता है कि कौनसी गाय का रखना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक है और किस गाय को रखना हानिकारक है। किन्तु भारतवर्ष मे जब तक दूध का धंधा उन्नत नही होजाता तब तक यह आशा करना कि इस प्रकार की समितियां अधिक स्थापित होगी स्वप्न मात्र है।

---

# बारहवां परिच्छेद

## भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियां

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, लगभग ७४ प्रति शत जन संख्या खेती बारी मे लगी हुई है । गृह-उद्योग-धंधो के नष्ट हो जाने के कारण उनमे लगी हुई जन संख्या भी खेती बारी मे घुस पड़ी, साथ ही बढ़ती हुई जन संख्या के लिये भी खेती के अतिरिक्त और कोई भरण पोषण का साधन नही रहा । इन सब कारणो से खेती मे लगी हुई जन संख्या बराबर बढ़ती गई । फल यह हुआ कि प्रति किसान भूमि कम होती गई । देश मे खेती बारी के योग्य जितनी भूमि थी वह सब जोत ली गई, यहां तक कि चरागाह भी खेतो मे परिणित कर दिये गये फिर भी भूमि की कमी रही ।

किसानो के पास भूमि थोड़ी तो है ही साथ ही वह छोटे छोटे टुकड़ो मे विभाजित है और यह टुकड़े एक दूसरे के पास न होकर बिखरे हुए हैं। यदि किसी किसान के पास बीस बीघा भूमि है तो वह एक ही स्थान पर न हो कर भिन्न भिन्न स्थानो पर छोटे छोटे टुकड़ो मे विभाजित है । बम्बई, पंजाब तथा अन्य प्रान्तो मे तो कहीं कही खेत केवल तीन या चार वर्ग गज के रह गये है, और कहीं कहीं ऐसे खेत भी पाये जाते हैं जो मीलो लम्बे हैं और कुछ गज़ चौड़े है । खेतो के बिखरे हुए होने से खेती बारी की उन्नति होना असम्भव होता जाता है । किसान का समय, परिश्रम, तथा

पूँजी का इतना अधिक अपव्यय होता है कि यह आशा करना कि खेतो के बिखरे होने पर भी वैज्ञानिक ढंग से खेती की उन्नति हो सकेगी केवल स्वप्न मात्र है।

खेतो के विखरने का कारण यह है कि भारतवर्ष मे हिन्दू तथा मुसलमानो मे यह रीति है कि बाप के मरने पर भूमि बराबर बराबर सब लड़को मे बाट दी जावे। फल यह होता है कि प्रत्येक लड़का बाप के हर एक खेत मे से बराबर हिस्सा लेना चाहता है। उदाहरणार्थ यदि किसी के पास चार भूमि के टुकड़े है और उसके चार बेटे है तो चारो बेटे प्रत्येक टुकड़े मे से एक-चौथियाई हिस्सा लेगे, फल यह होगा कि वे चार टुकड़े सोलह टुकड़ो मे विभाजित हो जावेगे। क्रमशः खेत बटते बटते एक दूसरे से दूर पड़ जाते है और क्षेत्रफल मे बहुत छोटे होजाते है। इस का कारण यह है कि प्रत्येक टुकड़े की उत्पादन शक्ति भिन्न होती है, और इस कारण अच्छी तथा बुरी भूमि सब ही के बराबर टुकड़े कर के बांट दिये जाते है।

बिखरे हुये खेतो का खेती बारी पर बहुत बुरा प्रभाव होता है। कुछ खेत तो इतने छोटे होजाते है कि जिन पर खेती बारी हो ही नहीं सकती, वह भूमि बेकार पड़ी रहती है, और बहुत सी भूमि खेतो की मेड़ो मे नष्ट होजाती है। किसान को एक खेत से दूसरे खेत पर जाने मे बहुत अधिक समय नष्ट करना पड़ता है, वह न तो उन बिखरे हुये खेतो की ठीक तरह से देख भाल ही कर सकता है और न वैज्ञानिक ढंग से खेती ही कर सकता है।

यदि किसान के सब खेत एक ही स्थान पर हो तो वह एक कुआ खोद कर सिंचाई कर सकता है किन्तु प्रत्येक बिखरे हुए खेत पर तो वह कुआ नही खोद सकता। जो चीज़ उसके पड़ोसी उत्पन्न करते है वह उसको भी उत्पन्न करनी पड़ती है, उन बिखरे हुए खेतो की न तो वह बाढ़ ही बना सकता है और न वह फसल की रखवारी ही कर सकता है। छोटेछोटे खेतो की मेढ़ो के कारण किसानो मे आपस मे झगड़ा होता है जिसके कारण मुक़दमे बाज़ी तक की नौबत आती है। सच तो यह है कि बिखरे हुए खेतो के होते हुए खेती-बारी की उन्नति नही हो सकती।

जब तक हिन्दू-ला तथा मुस्लिम-ला मे परिवर्तन न किया जावे तब तक यह समस्या हल नही हो सकती। बम्बई प्रान्त मे दो बार इस बात का प्रयत्न किया गया कि इस सम्बन्ध मे एक क़ानून बना दिया जावे किन्तु दोनो बार प्रयत्न असफल रहा। १६२७ मे सर चुन्नीलाल मेहता (जो बम्बई सरकार के रैवन्यू मैम्बर थे) ने इस सम्बन्ध मे एक बिल कौंसिल मे पेश किया किन्तु भयंकर विरोध के कारण वापिस ले लिया। हां, बड़ौदा राज्य मे एक ऐसा क़ानून अवश्य बना दिया गया है जिससे कि कोई खेत एक निश्चित सीमा के बाद बांटा नहीं जा सकता।

भारतवर्ष मे सर्व प्रथम पंजाब मे सहकारिता के द्वारा खेतो की चकबन्दी का काम प्रारम्भ किया गया और वहां आशा-जनक सफलता प्राप्त हुई। १६२० मे पंजाब के अन्तरगत भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियां स्थापित की गई। इन समितियो का

उद्देश्य यह है कि छोटे छोटे विखरे हुए खेतो को वे इस प्रकार बांटे कि किसानो को एक ही स्थान पर अथवा दो या तीन वडे टुकड़ो मे अपनी सारी भूमि के वरावर भूमि मिल जावे।

पंजाब प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने इस कार्य के लिये रैवन्यू विभाग के कर्मचारियो को नियुक्त किया है। वहां सब-इंसपैक्टर गांवो मे जाकर किसानो को विखरे हुए खेतो से उत्पन्न होने वाली हानियां तथा चकवंदी के लाभ समझाता है। यदि वह समझता है कि इस गांव मे समिति की स्थापना हो सकती है तो वह एक सभा करता है और उन्हे बतलाता है कि किस प्रकार चकबन्दी की जावेगी। जब किसान समिति के सदस्य बनने को तैयार हो जाते है तो समिति की स्थापना की जाती है और एक पंचायत चुन ली जाती है। चकबन्दी समिति का सदस्य या तो ज़मीदार हो सकता है अथवा मौरूसी किसान।

प्रत्येक सदस्य को समिति का सदस्य बनने के उपरान्त निम्न-लिखित बातो को स्वीकार करना पड़ता है।

(१) प्रत्येक सदस्य को यह सिद्धांत मानना पडता है कि चकबन्दी करने के लिये बिखरे हुए खेतो का नया बटवारा आवश्यक है।

(२) यदि किसी योजना को दो-तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह योजना प्रत्येक सदस्य को स्वीकार करनी होगी।

(३) स्वीकृत योजना के अनुसार अपने खेतो को सदा के लिये वह छोड़ देगा।

(४) यदि किसी प्रकार का झगड़ा उपस्थित हो गया तो पंच नियुक्त किये जावेगे और जो फैसला वे देगे वह सबको मान्य होगा।

यद्यपि समिति के नियमो के अनुसार यदि दो-तिहाई सदस्य किसी योजना को स्वीकार करले तो हर एक को वह मान्य होगी किन्तु यह नियम अभी काम मे नही लाया जाता है, और जब तक सब सदस्य अपने टुकड़ो को दे कर नये खेत लेना स्वीकार नही कर लेते तब तक योजना सफल नही होती।

सब-इंस्पैक्टर गांव मे कितने प्रकार की ज़मीन है, यह निश्चित करता है, और नवीन बटवारे मे इसका ध्यान रक्खा जाता है। सब-इंसपैक्टर थोड़ी सी भूमि सार्वजनिक हित के लिये सुरक्षित रखता है। जैसे सड़क इत्यादि। कूओ तथा सिंचाई के अन्य साधनो मे किसानो का हिस्सा निर्धारित किया जाता है। जब यह सब निश्चय हो जाता है तो पंचायत कर्मचारी की सहायता से एक नक़शा तैयार करती है जिसमे नवीन बटवारा दिखाया जाता है। यह नक़शा साधारण सभा के सामने रक्खा जाता है। यदि सब सदस्य उसको स्वीकार कर लेते है तब तो वह लागू होता है नही तो फिर से नया बटवारा होता है और नया नकशा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी कभी तीन चार बार तक नक़शे तैयार करने पड़ते है और कभी ०

महीनो का परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है। जब नये बटवारे को सब लोग स्वीकार कर लेते हैं तब उन्हे नये खेत दे दिये जाते है और उन खेतो की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

इस योजना मे किसी को हानि नही होती और किसी को भी पहिले से कम भूमि नही मिलती। कोई जबरदस्ती नही की जाती और छोटे तथा बड़े सभी किसान इस से लाभ उठा सकते है। चकबन्दी समितियां इन बिखरे हुए खेतो की केवल चकबन्दी करती है, भूमि का लड़को मे बंटना नही रोक सकती।

पंजाब मे चकबन्दी का कार्य आरम्भ होने पर १९२० से १९२५ तक केवल ४०,००० एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई किन्तु १९२८ मे २ लाख एकड़ की चकबन्दी प्रान्त मे हो चुकी थी। क्रमशः यह आन्दोलन बल पकड़ता गया और अब बड़ी शीघ्रता से आन्दोलन बढ़ रहा है। पहले आठ वर्षो मे केवल १९२,००० भूमि की चकबन्दी हुई किन्तु १९२९ मे ४८,०७९ एकड़ तथा १९३० मे ५०,००० एकड़ से अधिक की चकबन्दी हुई। अब प्रति वर्ष लगभग ५०,००० एकड़ भूमि की चकबन्दी होजाती है। हिसाब लगाने से ज्ञात होता है कि प्रति एकड़ २ रु० ५ आ० चकबन्दी पर व्यय होता है किन्तु अभी तक किसान और जमींदार इस खर्चे को नहीं देना चाहते इस कारण सरकार ही यह व्यय करती है।

चकबन्दी समितियो ने बिखरे हुए खेतो की संख्या को घटा कर पहले से दशांश तक कर दिया है। चकबन्दी के दो लाभ तो स्पष्ट देखने मे आये है। जिन गांवो मे चकबन्दी हो चुकी है वहां कूएं अधिक संख्या मे खोदे गये हैं तथा जो भूमि कि पहिले जोती नही जाती थी उस पर खेती बारी होने लगी है। साथ ही उन गांवो में खेती बारी का विशेष उन्नति हुई है। खेतो के बिखरे होने से जो हानियां थी वे क्रमशः दूर हो रही है। गांवो मे एक प्रकार से नया जीवन आ गया है। यही नही कही कहीं किसानो ने अपने खेत पर ही मकान बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है।

किन्तु इस प्रकार चकबन्दी करने मे बहुत सी कठिनाइयां उपस्थित होती है। जिस योजना मे प्रत्येक किसान को राजी करना आवश्यक हो उसका सफल होना संदेह जनक ही होता है। प्रत्येक भूमि का स्वामी अपनी पैतृक भूमि को अच्छा समभता है, पुराने विचारो के बुड्ढे किसान कोई परिवर्तन नहीं चाहते, छोटे किसानो को चकबन्दी मे अधिक लाभ नहीं दिखाई देता क्योकि उनके पास एक या दो ही खेत होते है, तथा मौरूसी काश्तकार समझा है कि यदि उसने अपनी भूमि को बदल लिया तो उसके अधिकार जाते रहेगे। यह तो कठिनाइयां है ही, गांव का पटवारी भी चकबंदी नहीं चाहता वह समझता है कि चकबंदी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। अस्तु, इस कार्य के करने वालो को अत्यंत धैर्य तथा सहानुभूति से काम करना चाहिये।

जब किसी किसान के हट से योजना असफल होती दिखाई दे तो उस किसान की भूमि को छोड़ देने से काम चल सकता है। परन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि जिनमे बहुत समय तथा रुपया खर्च करके योजना तैयार करने पर भी कतिपय किसानो के राजी न होने से सब किया धरा व्यर्थ होगया। सन् १६२८ मे यह नियम बनाया गया कि यदि ६० प्रति शत सदस्य किसी योजना को स्वीकार करे तो उस योजना को लागू किया जावे।

कुछ विद्वानो का कथन है कि बिना कोई क़ानून बनाये चकबन्दी का कार्य सफलता पूर्वक नही किया जासकता। कुछ लोगो का तो यहां तक कहना है कि सहकारिता आन्दोलन इस कार्य के लिये उपयुक्त नही है इस कारण क़ानून के द्वारा चकबन्दी होना चाहिये। किन्तु यह सब मानते है कि सहकारिता के इतने अधिक लाभ है कि जब तक इसके द्वारा सफलता मिल रही है तब तक इसको न छोड़ना चाहिये। जहा जहां चकबन्दी का कार्य सफलता पूर्वक होचुका है वहां लोगो की राय क़ानून बनाने के पक्ष मे है। परन्तु अभी वह समय नही आया जब कि कानून के द्वारा चकबन्दी का कार्य किया जावे, क्योकि यदि कोई ऐसा क़ानून बनाया गया तो यह कार्य रेवन्यू विभाग के कर्मचारी करेगे, फल यह होगा कि जनता का विश्वास हट जावेगा और बड़ी कठनाइयां उपस्थित होगी।

१६२८ मे रजिस्ट्रार सम्मेलन ने निम्न लिखित आशय का एक प्रस्ताव पास किया था। "जहां तक स्थानीय परिस्थित सहकारी

समितियो के द्वारा चकबन्दी के लिये अनुकूल हो वहां तक समितियां यह कार्य करे। इस सम्मेलन मे कुछ सदस्यो ने बड़े ज़ोरो से यह बात कही थी कि इस कठिन समस्या को हल करने का एक मात्र साधन सहकारिता आन्दोलन है, क्योकि किसान का अपनी भूमि से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि यदि उसकी भूमि क़ानून द्वारा ले ली गई तो बड़ी अशांति फैलने का डर है। किन्तु केवल सहकारिता आन्दोलन के द्वारा चकबन्दी करने से काम बहुत धीरे होता है और समय बहुत लगता है। इस कारण विद्वानो की सम्मति मे जबरदस्ती तो करनी ही पड़ेगी नही तो अधिक कार्य न हो सकेगा, किन्तु अभी वह समय नहीं आया है। जब साधारण जनता इसके लाभो से पूर्ण परिचित होजावेगी तब क़ानून का सहारा लिया जा सकेगा। पंजाब मे प्रान्तीय सरकार ने उन गांवो की मालगुज़ारी दो फसलो के लिए आधी करदी है कि जो चकबन्दी करवा लेगे। इसका फल यह हुआ है कि पिछले तीन सालो मे यह कार्य तीव्र गति से बढ़ा है।

**मध्यप्रान्त में चकबन्दी**—मध्य प्रान्त की छत्तीसगढ़ कमिश्नरी मे खेत बहुत छोटे तथा बिखरे हुये हैं। प्रान्तीय सरकार ने कई बार इस समस्या को हल करने का विचार किया, रैविन्यू तथा बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारियो ने चकबन्दी करने का प्रयत्न भी किया किन्तु सफलता न मिली। इसी कमिश्नरी मे जमींदारो तथा मालगुजारो ने भी चकबन्दी करने का प्रयत्न किया

किन्तु किसानो ने इस कार्य से सहयोग नही किया क्योकि मालगुजार यह प्रयत्न करते थे कि अच्छी भूमि उन्हे मिलजावे। छत्तीसगढ़ डिवीजन मे एक तो भूमि बहुत प्रकार की है दूसरे क़ानूनी अडचने भी है। इस कारण प्रान्तीय सरकार ने कानून के द्वारा चकबन्दी करना उचित समझा। अस्तु, १६२८ मे एक एक्ट बनाया गया जो अभी केवल छत्तीसगढ़ डिवीजन मे ही लागू किया गया है।

इस एक्ट के अनुसार कोई दो या अधिक गांव की भूमि के स्वामी, अथवा स्थायी रूप से जोतने वाले, चकबन्दी के लिए प्रार्थनापत्र दे सकते है। किन्तु शर्त यह है कि उनके पास गांव की भूमि का एक निश्चित भाग होना चाहिये। एक्ट के अनुसार गांव के कमसे कम आधे भूमि जोतने वाले ( permanent right holders ) जिनके पास गाव की दो तिहाई भूमि हो यदि चकबंदी की किसी योजना को मानले और अधिकारियो से उसकी स्वीकृत मिल जावे तो वह योजना अन्य लोगो पर लागू हो जावेगी। इस कार्य को करने के लिये एक आफिसर नियुक्त किया गया है। आफिसर को योजना की स्वीकृत उच्च अधिकारियो से लेनी पड़ती। यदि उस योजना मे किसी को कुछ भी अपत्ति नही हो तो डिप्टीकमिश्नर अथवा सैटिलमेन्ट आफिसर स्वीकृति देसकता है, नही तो सैटिलमेन्ट कमिश्नर स्वीकृति देता है। इसकी कोई अपील नही होसकती केवल प्रांतीय सरकार इस बंटवारे को पलट

सकती है। अभी एक्ट नया है किंतु ज्ञात होता है कि इससे कुछ कार्य हो जावेगा। यह कार्य रैविन्यू विभाग के द्वारा होता है।

**सयुक्त प्रान्त**—संयुक्त प्रान्त मे लगभग २६ सहकारी भूमि चकबंदी समितियां स्थापित हो चुकी है। यह समितियां पंजाब समितियो को ही आदर्श मान कर कार्य कर रही है। किंतु संयुक्त प्रान्त मे कठिनाइयां अधिक है। एक तो यहां गावो मे भूमि बहुत प्रकार की होती है दूसरे जमीदार तथा किसान भी बहुत प्रकार के है जिनके अधिकारो मे बहुत भिन्नता है। इस कारण यह नही कहा जा सकता कि यह आन्दोलन कहां तक सफल होगा।

देशी राज्यो मे बड़ौदा तथा काश्मीर मे चकबंदी समितियां सफलता पूर्वक कार्य कर रही है, इन दोनो राज्यो मे चकबंदी का काम क्रमशः बढ़ता जारहा है।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त तथा देशी राज्य मे बिखरे हुये छोटे छोटे खेतो की समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। प्रत्येक प्रान्त मे इस समस्या पर विचार होरहा, किन्तु क्या उपाय काम मे लाया जावे इसका निश्चय नहीं हो पाया है। पंजाब ने इस आन्दोलन मे पथ प्रदर्शक का कार्य किया है।

---

# तेरहवा परिच्छेद

## सफ़ाई तथा स्वास्थ्य रक्षक समितियां

भारतवर्ष के गांवो मे गन्दगी का तो मानो साम्राज्य है। जिधर देखिये उधर ही कूड़ा तथा गन्दगी के ढेर दिखलाई देगे। कारण यह है कि गांव की गलियां कभी साफ नही की जाती, घरो के समीप ही अथवा कुछ ही दूरी पर खाद के ढेर लगा दिये जाते है जिनसे गन्दगी तो बढ़ती ही है साथ ही मक्खियां इतनी अधिक उत्पन्न हो जाती है कि सारे गांव मे वे फैली रहती हैं। यह मक्खियां गन्दगी को और भी बढ़ाती है। गन्दे पदार्थ पर बैठ कर मक्खियां अपने परो तथा पैरो मे गन्दगी ले आती है और उस गन्दगी को भोजन. वस्त्र, जल, तथा बच्चो के चेहरे तथा पशुओ के मुँह, नाक, तथा आंख मे डाल देती है। इनके प्रभाव से दूपित होकर भोजन और जल ग्राम निवासियो के स्वास्थ्य का नाश करते है।

गांवो मे यह एक साधारण सी बात है कि घरो मे शौचगृह नही होते। स्त्री पुरुष सभी बाहर खेतो मे शौच के लिये जाते है। यदि कोई नदी, ताल, अथवा पोखरा हो तब तो कुछ कहना ही नही वह गांव भर के लिये शौच-स्थान का काम देता है। इस आदत से होने वाली भयंकर हानियो से अनभिज्ञ होने के कारण ही लोग इस विषय मे इतने उदासीन रहते है।

भारतीय ग्रामीण जनता निर्धन होने के कारण जूते कम

पहिनती है। अधिकतर किसान नंगे पैर ही रहते हैं। फल यह होता है कि खेतो तथा मैदान में पड़े हुए मल से पैरो का सम्पर्क होने से एक प्रकार का कीड़ा मनुष्य की खाल पर असर करता है और मनुष्य को हुक वर्म नामक रोग हो जाता है। यह रोग भारतीय ग्रामो मे विशेष कर बंगाल मे बहुत होता है। जब मल सूख जाता है तो वह हवा के द्वारा इधर उधर फैल जाता है। हवा में मल के कण उड़ते रहते हैं जो भोजन, और जल को दूषित करते हैं तथा बच्चो की आंखो मे पड़ कर उनकी आंखों को खराब करते हैं। गांवो मे धूल भी बेहद होती है इससे स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुंचती है।

गांव वाले अपने मकान बनाने के लिये मिट्टी खोदते हैं जिससे गांव के आस पास बहुत से गड्ढे हो जाते हैं। वर्षा का जल इन गढ़ो मे भर जाता है और रुक जाने के कारण सड़ने लगता है। मलेरिया ज्वर के कीड़ो का तो वह उद्गम स्थान बन जाता है और गांव के निवासी ज्वर से पीड़ित होते है। गांव के घरो मे गन्दे जल को बहा ले जाने के लिये कोई नाली नही होती। घरो का गन्दा पानी घरो के समीप ही सड़ता रहता है। घर अधिकतर कच्चे होते है और उनमे हवा के लिये कोई खिड़की इत्यादि नही लगाई जाती। साधारण किसान अपने पशुओ को उसी मकान मे रखता है जिसमे कि वह स्वयं रहता है इस कारण वह मकान गन्दे रहते है।

इसके अतिरिक्त निर्धन अशिक्षित किसान स्वच्छता से

रहना नही जानता, जिसका परिणाम अत्यन्त भयंकर होता है और हमारे गांव भयंकर रोगो के स्थाई अड्डे बन गये है। जो लोग कि गांवो के वास्तविक जीवन से परिचित नहीं हैं वे समझते हैं कि गांवो मे बीमारियां कम होती है किन्तु यह केवल भ्रम मात्र है। बात यह है कि गांवो के समाचार हम नगर निवासियो तक नही पहुँचते, न तो उनके पास पत्र है और न उनके पास प्लेटफार्म ही है कि जिससे वे अपने दुखो को सुना सके। वर्षा के दिनो मे तथा वर्षा के बाद तनिक गांवो मे जाकर देखिये गांव मे सर्वत्र लोगो को ज्वर से पीड़ित पाइयेगा प्लेग, हैजा, चेचक, तथा ज्वर तो मानो हमारे गांवो मे स्थायी रूप से जम गये है। तिस पर भी हमारे गांवो मे औषधियो का कोई प्रबन्ध नही है। सरकार तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जो अस्पताल स्थापित करती है उसका लाभ शहर वालो को ही अधिकतर मिलता है।

कुछ वर्ष हुए अखिल भारतवर्षीय मैडिकल कानफ्रेस (डाक्टरो की सभा) ने अपने अधिवेशन मे इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया था कि भारतवर्ष मे प्रति वर्ष १ करोड के लगभग मनुष्य दो सप्ताह से लेकर चार सप्ताह तक के लिये उन रोगो से पीड़ित रहते है जो कि रोके जा सकते है। रोग ग्रस्त मनुष्यो के केवल वे ही दिन नष्ट नही होते जिनमे वह बीमार रहते हैं वरन उनकी कार्य शक्ति कुछ महीनो के लिये कम हो जाती है। यही नही कि इतनी अधिक संख्या मे मनुष्यो

तथा स्त्रियो का उन बीमारियो के कारण जो कि प्रयत्न करने पर रोकी जा सकती हैं समय नष्ट होता है, (जिस समय मे वे खेती-बारी तथा अन्य धधो मे कार्य करके देश के लिये अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करते) वरन लाखो की संख्या मे इन रोगो के कारण मनुष्य, स्त्रियां, तथा बच्चे मर भी जाते है।

यदि इन रोगो द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह प्रति वर्ष करोड़ो रुपये होती है। यदि और किसी कारण से नही तो केवल देश की आर्थिक हानि को देखते हुए यह बहुत जरूरी मालूम होता है कि मैडिकल विभाग (चिकित्सा विभाग) पर अधिक रुपया खर्च करके इन रोके जा सकने वाले रोगो को रोका जावे, जिससे कि देश मे सम्पत्ति की उत्पत्ति करने वालो की कार्य शक्ति नष्ट न हो और देश मे अधिक सम्पत्ति उत्पन्न की जा सके। अस्तु, पाठको को यह ध्यान मे रखना चाहिये कि स्वास्थ्य का प्रश्न आर्थिक प्रश्न है। आगे हम यह बतलाने का प्रयत्न करेगे कि सहकारिता के द्वारा स्वास्थ्य रक्षा का प्रश्न कहां तक हल किया जा सकता है।

**बंगाल की ऐन्टी मलेरिया* समितियां**—बंगाल मे मलेरिया के कारण मनुष्य जीवन का अत्याधिक ह्रास होता है। प्रति वर्ष इसके कारण बहुत संख्या मे मनुष्य मरते है और इसका प्रकोप प्रति वर्ष बढ़ता ही जाता है। कहीं कहीं तो मलेरिया के कारण गांव के गांव उजड़ गये है। यद्यपि इस भयंकर रोग

* मलेरिया निवारक।

ने प्रान्त के जीवन को तहस नहस कर रक्खा है, किन्तु सरकार अभी तक इसको रोकने का कोई भी उपाय न कर सकी। कारण यह है कि सरकार का विश्वास है कि इस कार्य में व्यय बहुत अधिक होगा साथ ही जनता का यह विश्वास था कि इस रोग को तभी रोका जा सकता है कि जब कोई बड़ी योजना तैयार की जावे और प्रान्त भर मे इसको रोकने का प्रयत्न किया जावे। इस कारण बंगाल के ग्रामीण हताश से हो गये थे।

इस निराशाजनक वातावरण का मुख्य कारण यह था कि विशेषज्ञो की यह सम्मति थी कि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुये पानी मे उत्पन्न होता है और वह उत्पन्न होने के स्थान से आठ मील तक जा सकता है। अस्तु जब तक कि किसी गाव के आठ मील चारो ओर जितने गड्ढे हैं वे भर न दिये जावें अथवा रुके हुये पानी मे मिट्टी का तेल न डाल दिया जावे मलेरिया नही रोका जा सकता"। अस्तु, यह समझ कर कि यह कार्य गांवो मे रहने वालो की सामर्थ के बाहर है कोई प्रयत्न नही किया गया।

किन्तु डाक्टर गोपाल चन्द्र चटर्जी ने खोज करने के उपरान्त यह पता लगाया कि मलेरिया का कीड़ा अपने जन्म स्थान से आध मील से अधिक जा ही नही सकता। और सरकारी विशेषज्ञो का मत गलत है, अब तो संसार के प्रायः सभी विशेषज्ञो ने चटर्जी महोदय के सिद्धांत को ठीक मान लिया है। अब इस बात मे संदेह नही रह गया है कि कीड़ा आध मील से अधिक नही जा सकता। डाक्टर चटर्जी ने सोचा कि इस भयंकर रोग

से छुटकारा पाने का सब से सस्ता और अच्छा उपाय यही है कि गांवो मे सहकारी समितियां स्थापित की जावे। इसी उद्देश्य को ले कर डाक्टर चटर्जी ने १६१२ मे ऐन्टी मलेरिया लीग स्थापित की और इस लीग के द्वारा उन्होने प्रचार करना प्रारम्भ किया। डाक्टर चटर्जी ने सर्व प्रथम पानी हाटी मे ऐन्टी मलेरिया समिति की स्थापना की और उन्हे वहां आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। क्रमशः समितियो की संख्या बढ़ने लगी। इस आन्दोलन को गांव गांव मे फैलाने के लिये डाक्टर चटर्जी ने एक संस्था की स्थापना की जिसका नाम "सैन्ट्रल कोआपरेटिव ऐन्टी मलेरिया सोसायटी लिमिटेड" है।

सैन्ट्रल सोसायटी के व्यक्ति विशेष तथा ऐन्टी मलेरिया सोसायटी, दोनो ही सदस्य होते है। व्यक्ति विशेष सदस्य अधिकतर डाक्टर होते हैं अथवा वे लोग कि जिन्हे इस आन्दोलन से सहानुभूति होती है। इस समय सैन्ट्रल सोसायटी की ६०० से अधिक ऐन्टी मलेरिया समितियां सदस्य हैं। सैन्ट्रल सोसायटी के व्यक्ति विशेष वार्षिक ६ रुपया चन्दा देते है और बहुत से सदस्यो ने सोसायटी को यथेष्ट दान भी दिया है। ग्रामीण समितियां सैन्ट्रल सोसायटी के हिस्से नही खरीदती। प्रान्तीय सरकार सैन्ट्रल सोसायटी को ग्रांट देती है। सैन्ट्रल सोसायटी इस रुपये से ग्रामीय समितियो की सहायता करती है तथा प्रचार कार्य मे व्यय करती है। सैन्ट्रल सोसायटी के निम्न लिखित उद्देश्य है।

(१) प्रान्तभर मे ऐन्टी मलेरिया तथा स्वास्थ रक्षक समि-

तियो की स्थापना करना जिससे कि प्रान्त मे रोगो को रोका जा सके।

(२) ग्राम समितियो को, मलेरिया, काला आजार, प्लेग, हैजा, चेचक, क्षय रोग, तथा कुष्ट रोग को रोकने के तरीको को बताना, तथा उन तरीको को काम मे लाने के लिए उत्साहित करना।

(३) प्रान्त मे इस उद्देश्य की पूर्ती के लिये प्रचार करना।

(४) ग्राम्य समितियो की देख भाल करना तथा सैन्ट्रल सोसायटी की शाखाये स्थापित करना।

आरम्भ मे सैन्ट्रल सोसायटी से सम्बन्धित ग्राम्य समितियो की संख्या कम थी इस कारण सोसायटी उनकी देख भाल भी करती थी। किन्तु अब ग्राम समितियो की संख्या अधिक है तथा प्रांतीय सरकार इन समितियो को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के द्वारा सहायता देती है, इस कारण समितियो की देख भाल का कार्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ही करते है। सैन्ट्रल सोसायटी केवल नई समितियो को स्थापित करती है।

ग्राम समितियां अपने गांव मे मलेरिया तथा अन्य रोगो को रोकने का कार्य करती है। समितियो के सदस्यो को चार आने से लेकर एक रुपया प्रति मास चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक देकर रखती है जो कि सदस्यो के घरो पर बिना फीस लिये जाता है और उनकी चिकित्सा करता है। सैन्ट्रल सोसायटी समितियो को

भी आर्थिक सहायता देती है। इन समितियो ने बहुत से अस्पताल तथा स्कूल खोल रक्खे हैं। इनमे कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं जिनसे सर्व साधारण को दवा मिलती है, और कुछ ऐसे हैं जो केवल हिस्सेदारो को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र मे कुछ समितियां स्थापित हो जाती हैं तो सैन्ट्रल सोसायटी उनको दृढ़ करने के लिये एक ग्रूप कमेटी स्थापित कर देती है। इस कमेटी पर प्रत्येक समिति का एक प्रतिनिध रहता है। यह ग्रूप कमेटी किसी भी समिति के कार्य मे दखल नहीं देती, वह केवल प्रत्येक समिति से कुछ चन्दा लेकर उन समितियो के लिये एक चिकित्सक रखती है। चिकित्सक को उस क्षेत्र मे व्यक्तिगत प्रैक्टिस करने की स्वतंत्रता होती है परन्तु समितियो के सदस्यो के घरो पर उसे नाम मात्र थोड़ी सी फीस लेकर जाना होता है। यदि कही काला-आज़ार रोग फैल जाता है तो एक स्थान पर एक औषधालय खोला जाता है, चिकित्सक वहां पर सब रोगियो की मुफ्त चिकित्सा करता है। औपधियां सैन्ट्रल सोसायटी देती है। यही चिकित्सक मलेरिया, चेचक़, तथा हैजे का प्रकोप बढ़ने पर उसको रोकने का उपाय करते है।

ग्राम समितियां मलेरिया को रोकने के लिये वर्षा से पूर्व गांव के समीपवर्ती सब गड्ढो, खाइयो, तथा पोखरो को भर देती है। नाले और नालियो को ऐसा खोद दिया जाता है कि वर्षा का पानी बह जावे। यह कार्य प्रति वर्प वर्षा के आने से

पूर्व समाप्त कर दिया जाता है। वर्षा के उपरान्त तीन महीने तक गांव के समीप जहा जहां पानी इकट्ठा हो जाता है वहां वहां समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है, जिससे कि मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न ही न हो सके। समिति के प्रत्येक सदस्य को एक छपी हुई पुस्तक दी जाती है, जिसमे वह प्रति सप्ताह उसके घर के लोग कितने दिनो के लिये मलेरिया से बीमार पड़े, यह लिख देता है। समिति का मन्त्री इन पुस्तको के द्वारा गांव मे मलेरिया का प्रकोप कैसा रहा इसका लेखा तैयार करता है। इससे सदस्यो को यह ज्ञात हो जाता है कि गांव मे मलेरिया घट रहा है कि नहीं।

ग्राम ऐन्टी मलेरिया सहकारी समितियां अपने सदस्यो से थोड़ा सा मासिक चन्दा लेती है, यदि कोई बड़ा काम करना हुआ तो सरकार तथा सैन्ट्रल सोसायटी से सहायता की प्रार्थना करती है। यही एक इन समितियो की कमजोरी है कि यह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नही है। इस कमी को दूर करने के लिये १९२७ मे सैन्ट्रल मलेरिया सोसायटी ने एक एसोसियेशन स्थापित की, जो ग्राम समितियो के सदस्यो की बंजर भूमि पर (जिस पर वे खेती न करते हो) तरकारी तथा फलो के छोटे छोटे बाग लगवाती है, और इन बागो की पैदावार को बिकवाने का प्रबंध करती है। इस एसोसियेशन की संरक्षता मे एक कमेटी स्थापित की गई है जिसके सदस्य कृषि शास्त्र के विशेषज्ञ है जो भूमि, खाद, तथा बीज सम्बन्धी खोज करते है, और गांव मे समितियो के बागो को देखते है और उन्हे सलाह देते रहते है। इन बागो

मे सदस्य अधिकतर अपनी आवश्यकताओ के लिये तरकारियां उत्पन्न करते है। इस समय तक बंगाल मे ७०० से कुछ ही कम समितियां मलेरिया को रोकने का कार्य कर रहीं है।

**संयुक्त प्रान्त आद**—संयुक्त प्रान्त मे सहकारी साख समितियो ने कहीं कहीं स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियो की सहायता से स्वास्थ्य रक्षा का का कार्य करना आरम्भ किया है। सदस्यो को खाद गड्ढ़ो मे रखने का आदेश दिया जाता है, गांव में सफाई रखने के लिये वे उत्साहित किये जाते हैं, ट्रेंड दाइयो को रखने का प्रयत्न किया जाता है तथा सदस्यो को अस्पताल खोलने के लिये प्रोत्साहन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त रहन सहन सुधार समिनियां ( better living societies ) भी गांवो मे सफाई कराने का प्रयत्न करती है। इन समितियो के विषय मे पिछले परिच्छेद मे लिखा जा चुका है।

संयुक्त प्रान्त के अतिरिक्त बिहार उड़ीसा मे कुछ सैन्ट्रल बैक तथा सहकारी साख समितियां गांवो मे सफाई तथा चिकित्सा का प्रबंध करती है। यह समितियां गांवो को साफ करती हैं, कुँओ मे दवाई डलवा कर उनके जल को शुद्ध करती है। औषधियो को बिना मूल्य बांटती है, तथा आयुर्वेदिक और यूनानी अस्पताल स्थापित करती है। बम्बई मे कुछ समितियां अस्पतालो की ग्राट देती है जो औपधियां मुफ्त बांटते है।

**लेखक की योजना**—भारतवर्ष मे रोगो के कारण

मनुष्य जीवन तथा शक्ति का जो भयंकर ह्रास हो रहा है वह हम पहिले ही लिख चुके हैं। हमारे गांवो की गन्दगी और वहां चिकित्सा का कोई प्रबंध न होने के कारण ही यह ह्रास निरन्तर हो रहा है। अस्तु, गांवो की सफाई तथा स्वस्थ्य रक्षा की समस्या हमारे लिये महत्व की है। यह कार्य सहकारी समितियो के द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

प्रत्येक गांव मे एक स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। गांव वालो को समिति के लाभ समझा कर उसका सदस्य बना लिया जावे। प्रयत्न यह होना चाहिये कि प्रत्येक घर से एक सदस्य बनाया जावे। सदस्य चार आना प्रति मास चन्दा दे। जो लोग कि बहुत ही निर्धन हो और चार आना प्रति मास चन्दा न दे सके उनसे चन्दा न लिया जावे, उसके बदले मे वह सदस्य मास मे एक दिन समिति का कार्य कर दिया करे। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चन्दा अनाज मे भी दे सकता है, किन्तु चन्दा देने वाले तथा कार्य करने वालो मे कोई अन्तर न होना चाहिये। सब प्रकार के सदस्यो के अधिकार एक ही हो।

साधारण सभा प्रति वर्ष का बजट पास करे तथा समिति का वार्षिक प्रोगाम निर्धारित करे। साधारण सभा एक पंचायत, और उसका सरपंच, दो मन्त्री तथा एक कोषाध्यक्ष, का निर्वाचन करे। पंचायत साधारण सभा द्वारा निश्चित की हुई नीति के अनुसार कार्य करे। दोनो मन्त्री समिति के कार्य का संचालन करे। जो सदस्य चन्दा नही दे उनसे मन्त्री समिति

का निम्न लिखित काम करवाले, समीपवर्ती सब गड्ढो को पाट देना, तथा नालो के बहाव को ऐसा खोद देना कि जिससे पानी एक स्थान पर न रुक सके। जब वर्षा समाप्त हो तब जहां जहां पानी रुक जावे वहां समय समय पर मिट्टी का तेल डलवादे। इसके अतिरिक्त ऐसे सदस्यो से औषधालय मे काम लिया जावे तथा समय पड़ने पर वे लोग और स्थानो पर भेजे जा सकते है।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ औषधियो का संग्रह करे, जो साधारण रोगो मे काम आ सके। औषधियो को सदस्यो मे बांटने का कार्य दूसरे मन्त्री के हाथ मे रहे। समिति गांव की आवश्यकता के अनुसार गांव से कुछ दूरी पर गड्ढे खुदवावे। यह गड्ढे ६ या ७ फीट गहरे हो, गड्ढो के चारो ओर अरहर अथवा फूस की आड़ खड़ी कर दी जावे, तथा गड्ढे के मुँह पर दो लकड़ी के तख्ते रख दिये जावें यही गड्ढे गांव के शौचगृह हो। सदस्यो को मैदानो मे शौच जाने की हानियां बता कर वहां शौच जाने पर वाधित किया जावे। कुछ शौचगृह (Pit Latrines) स्त्रियों के लिये पृथक कर दिये जावें। समिति एक मेहतर को नौकर रक्खे जो गांव के घरों का कूड़ा प्रति दिन भर कर इन शौचगृहो मे डाल आया करे, और गांव की गलियों की सफाई रक्खे। समिति प्रत्येक सदस्य को गड्ढों में खाद बनाने के लाभो को समझावे और उन्हे गड्ढो में खाद तैयार करने के लिये उत्साहित करे। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे, एक मे से जब खाद निकाली जावे तब दूसरे मे

गोबर इत्यादि भरा जावे। किसान प्रतिदिन गोबर, भूसा, तथा चारा जो पशुओ के पास बच रहता है, तथा घरों का कूड़ा इन गड्ढ़ो मे डाल दिया करे। इससे दो लाभ होंगे एक तो गंदगी दूर हो जावेगी दूसरे अच्छी खाद उत्पन्न होगी। समिति शौच-गृहो मे बनी हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती गांवो की स्वस्थ्य रक्षक समितियां मिल कर एक समिति बनावे। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा एक ट्रेंड दाई नियुक्त करे। इन कर्मचारियो को निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिये। दाई का यह कार्य हो कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गांवो मे बच्चा जनाने का काम करे। प्रत्येक सदस्य से बच्चा जनाने की फीस आठ आना से एक रुपया तक ली जावे। डाक्टर बीच के गांव मे रहे और प्रति दिन दो गांवो मे जाकर वहां जो भी बीमार हो उनको दवा दे। प्रत्येक गांव मे तीसरे दिन डाक्टर जाया करे। इस बीच मे सभा का मन्त्री वह दवा जो डाक्टर बतला जावे, रोगियो को देता रहे। यदि किसी रोगी को देखने के लिये डाक्टर को उसके घर जाना पड़े तो उस सदस्य से आठ आना या चार आना जैसा भी निश्चित किया जावे समिति फीस ले। यदि कोई गांव का रहने वाला समिति का सदस्य न बने तो उससे डाक्टर तथा नर्स की दुगनी फीस ली जावे, वह रुपया उसी समिति मे जमा किया जावे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा वरन रोगो से बचने के उपाय बतलाना भी उसका कर्तव्य

होगा। सप्ताह मे एक दिन नियत किया जावे जब डाक्टर मैजिक लैनटर्न चित्रो तथा चार्टों को सहायता से व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यो उत्पन्न होते है और उनसे बचने के क्या उपाय है। बड़ी समिति के कार्य कर्ता चिकित्सक की सलाह से प्रचार कार्य करे। जब कभी समीपवर्ती स्थान मे मेला अथवा पैंठ लगे तब बड़ी समिति के पदाधिकारियो को वहां विशेपकर स्वास्थ सम्बन्धी प्रचार करना चाहिये।

यह बड़ी समितियां अथवा समूहिक समितियां मिलकर तहसील समिति का संगठन करे तहसील समितियो का कार्य केवल ग्राम समितियो की देखभाल करना, स्वास्थ रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, तथा ज़िले के स्वास्थ विभाग के कर्मचारियो से लिखा पढ़ी करके जब कभी उस तहसील के किसी क्षेत्र मे कोई बीमारी फैल रही हो तो उसको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा। बड़ी समितियो के प्रतिनिधि तहसील समिति में जावेगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से जिले के मैडिकल आफिसर तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारियो को गांवो मे बीमारी फैलने के समय सफलता पूर्वक चेतावनी दी जा सकती है और उनसे सहायता ली जासकती है।

प्रत्येक प्रान्त मे एक प्रान्तीय स्वास्थ रक्षक समिति का संगठन होना चाहिये। जो ग्रांमो मे कार्य करने के लिये दाइयो तथा चिकित्सको को तैयार करे, आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करे, तथा प्रचार कार्य करने के लिए साहित्य प्रकाशित करे। प्रांतीय समिति को उन दाइयो में से जो इस समय गांवो में कार्य करती

है, साफ, चतुर, तथा कम आयु वाली दाइयो को छांट लेना चाहिये और उन्हे छात्रवृत्ति देकर दाई कर्म की वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर अपने अपने गावो मे भेज देना चाहिये। सामूहिक समितियां इन्ही दाइयो को नौकर रक्खें। बच्चा जनाने के अतिरिक्त इन दाइयो का यह भी कर्तव्य होना चाहिये कि यह माताओ को बतावे कि बच्चो का लालन पालन किस प्रकार होना चाहिये। चिकित्सक भी ऐसे होने चाहिये जो कि गांवो के रहने वाले ही हो और गांवो मे रहना पसन्द करे। प्रारम्भ मे तो आयुर्वेदिक विद्यालयो मे से निकले हुए युवक छांट लिये जावे तथा उनको कुछ दिनो आवश्यक शिक्षा देकर गांवो मे भेज दिया जावे। इसके बाद गांवो मे रहने वाले शिक्षित नवयुवको को प्रान्तीय समिति आयुर्वेदिक विद्यालयो मे भेजकर इस कार्य के लिये तैयार करावे।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समिति को आवश्यकतानुसार ग्रांट ( सहायता ) दे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सामूहिक समिति को चिकिसक तथा दाई का आधा वेतन दे।

इस प्रकार यदि संगठित ढंग पर सहकारिता आन्दोलन का उपयोग स्वास्थ रक्षा आन्दोलन के लिए किया जावे तो ग्रामो मे स्वास्थ रक्षा की समस्या हल हो सकती है। प्रान्तीय समिति एक पत्रिका प्रकाशित करे, ट्रैक्ट छपवावे, चित्र तैयार करावे, फिल्म तैयार करावे, तथा मैजिक लैनटर्न के लिये स्लाइडस तैयार कराकर प्रचार के लिए गांवो मे भेजे।

बेचना, आवश्यक वस्तुओ को खरीदना, तथा ग्रामीय-उद्योग-धन्धो के द्वारा सम्पत्ति उत्पन्न करना ही मुख्य कार्य हैं। किसान किसी भी देश मे साधन सम्पन्न नही होता इस कारण उसको बीज, यन्त्र, खाद, तथा दैनिक व्यवहार की वस्तुएं गांव के बनिये अथवा दूकानदार से खरीदनी होती है, और उन वस्तुओ के लिये अधिक मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला को भी नही जानता इस कारण वहां भी वह गांव के बनिये, तथा मंडियो के दलालो और व्यापारियो से लुटता है, और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

यदि हम चाहते है कि किसान की आर्थिक स्थिति सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही काम नही चलेगा, उसके लिये क्रय-विक्रय समितियो की स्थापना करना आवश्यक होगा। नही तो जहां हम साख समितियो के द्वारा किसान को महाजन के हाथो से बचाते, हैं वहां वही महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएं बेचने मे तथा उसकी पैदावार खरीदने मे लूटता रहेगा। इस कारण क्रय विक्रय समितियो के स्थापित किये बिना किसान की स्थिति सुधर नही सकती।

**क्रय**—सहकारी साख समितियो के द्वारा यह कार्य सफलता पूर्वक किया जा सकता है। साख समिति का जब कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिये ऋण ले तब रुपया न देकर उसको वह वस्तु खरीद कर दी जावे। जहां क्रय समितियां स्थापित की गई है वहां यह तरीका है कि सदस्यो से आर्डर

इकट्ठे कर लिये जाते है फिर एक साथ चीजे मंगाकर सदस्यों मे बांट दी जाती है,केवल नाम मात्र का कमीशन ले लिया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर चीजें खरीद सकती ह और सदस्यो को अधिक मूल्य नहीं देना पड़ता। क्रय सहकारी समितियो की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बाजार का अध्ययन किया जावे। बाजार भाव के उतार-चढ़ाव का अध्ययन करने से यह लाभ होगा कि समिति मन्दी के समय खरीद करेगी। समिति के कार्य कर्ताओं को यह देखना चाहिये कि बिना मांग के कोई वस्तु न खरीदी जावे। आरम्भ मे केवल उन्ही वस्तुओ को खरीदा जावे जिनकी सदस्यों में अधिक मांग हो।

मिल सकता है। बम्बई प्रान्त मे कपास बेचने वाली समितियां बीज रखती है। किन्तु अभी तक इस प्रकार की समितिया भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तो मे बहुत कम है।

**विक्रय समितियां**—यह तो पहिले ही कहा जा चुका है अधिकतर किसान ऋणी है इस कारण वे अपनी फसल बेचने मे स्वतन्त्र नही होते। जो गांव का बनिया लेन देन करता है वही फसल को खरीदता है। छोटे किसानो को तो अपनी फसल उसी बनिये के हाथ बेचनी पडती है। एक तो फसल कटने के कुछ दिनो बाद तक बाजार भाव वैसे ही गिरा रहता है, दूसरे बनिया गांव मे अकेला खरीददार होता है इस कारण वह बाजार भाव से भी कम कीमत पर फसल खरीद लेता है। किसान बाजार भाव से अनिभिज्ञ होने के कारण जो मूल्य बनिया देता है ले लेता है। कपास, तम्बाकू, जूट, तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल खरीदने के लिए व्यापारी, ( जो कि बड़े बड़े व्यापारियो के एजेन्ट होते है ) गावो मे जाकर फसल को खरीदते है। यह व्यापारी विदेशो के भाव को भली भांति जानते है इस कारण यह लोग गांव के सीधे साधे किसानो को जो मूल्य देते है वह उन्हे स्वीकार करना पड़ता है। जिन किसानो के पास भूमि अधिक होती है और जिनकी पैदावार भी अधिक होती है, वे यदि समीप मे कोई मण्डी होती है तो वहां पैदावार लेजाकर बेचते है। किंतु इन मंडियो मे किसान को खूब ही लूटा जाता है। नियमानुसार टैक्स तो उसे देना ही पड़ता है, मंडी मे गाड़ी खड़ी करने का

किराया तथा दलालो की दलाली उसे देनी पड़ती है। दलाल व्यापारियो से मिला रहता है और किसान को उस मूल्य पर कि जो दलाल तय करता है पैदावार बेचनी पड़ती है। जब क़ीमत निश्चित हो जाती है तो व्यापारी के गोदाम पर तुलाई शुरू होती है कही कही बांट जाली होते है और जब कि गाड़ी आधी तुल जाती है तब व्यापारी यह कह कर कि अन्दर वस्तु खराब निकली लेने से इंकार करता है। बिचारे किसान को विवश होकर कम मूल्य स्वीकार करना पड़ता है, क्योकि उसे अकेले गाड़ी भरना असम्भव दिखाई देता है। किसान को कही कही तुलाई भी देनी पड़ती है। तदउपरान्त मूल्य चुकाते समय व्यापारी धर्मशाला, गौशाल, मन्दिर, प्याऊ, पाठशाला, तथा ऐसे ही अन्य धार्मिक कार्यो के लिए प्रति रुपया कुछ पैसे काट लेता है। शाही कृषि कमीशन का विचार है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत कट जाता है, और सेठजी दानवीर कहलाते है।

जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नही बचाया जावेगा तब तक उसकी आर्थिक स्थिति सुधर नही सकती। केवल साख समितियो के स्थापित करने से कुछ न होगा।

इसी उद्देश्य से बम्बई मे कपास तथा गुड़,और बंगाल मे धान तथा जूट बेचने के लिए सहकारी समितियां स्थापित की गई है।

**बम्बई की विक्रय समितियां**--बम्बई प्रान्त मे ६० के लगभग विक्रय समितियां कार्य कर रही है। इनमे ३० से ऊपर

तो केवल कपास वेचने की समितियां हैं। इनके अतिरिक्त गुड़, तम्बाकू, मिर्च, धान, तथा प्याज वेचने के लिए भी समितियां स्थापित की गई हैं। गुजरात तथा कर्नाटक मे कपास वेचने वाली समितियो को विशेष सफलता मिली है। गुजरात के सूरत तथा भड़ौच जिलो मे यह समितिया अधिक संख्या मे हैं। एक समिति चार या पांच गांवो की पैदावार को वेचती है। विक्रय समिति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रबन्ध ठीक हो इस कारण यह आवश्यक होता है व्यापार से परिचित लोग प्रवन्ध कारिणी समिति मे रक्खे जावे जो कि समिति के कार्य को चलावें। इसी उद्येश्य से गुजरात की सब समितियो ने एक संघ स्थापित किया है जो कि इन समितियो की देख भाल करता है।

कर्नाटक प्रान्त की कपास वेचने वाली समितियो ने आशातीत सफलता प्राप्त की है, इस प्रान्त को अधिकतर कपास इन्ही समितियो के द्वारा वेची जाती है, स्थानीय व्यापारियो ने इन समितियो का वहुत विरोध किया किंतु अब यह समितियां बलवान होगई हैं। १९३० मे कर्नाटक प्रान्त की समितियो ने २३ लाख रुपये की तथा गुजरात की समितियो ने १८ लाख की कपास वेची।

क्रय विक्रय समितियां परिमित दायित्व वाली होती है, यह समितियां वड़े क्षेत्र मे कार्य करके ही सफल हो सकती है क्योकि इन समितियो को अधिक राशि मे वस्तुओ को खरीदने तथा पैदावार को वेचने से ही लाभ हो सकता है। क्रय विक्रय समितियो के केवल वे ही लोग सदस्य बनाये जाते है जो

फसल को उत्पन्न करते है। जो लोग कि कुछ बेचना या खरीदना नही चाहते वे इन समितियो के सदस्य नही बनाये जाते। समिति का लाभ सदस्यो मे खरीद फरोख्त के हिसाब से बांट दिया जाता है। यदि किसी किसान ने समिति के द्वारा १०० मन कपास बेची है और दूसरे ने केवल ५० मन ही बेची है तो दूसरे को पहली से आधा लाभ मिलेगा। कुछ लोगो का मत है कि पैदावार बेचने का कार्य साख से बिलकुल भिन्न है और कठिन भी है। इस कारण क्रय विक्रय का काम एक समिति करे तथा साख देने का काम दूसरी समिति करे, किन्तु एक बात ध्यान मे रखने की है कि सदस्यो के लिये आवश्यक वस्तुओ को खरीदने का कार्य साख समितियां भली प्रकार कर सकती है। आयरलैंड मे सब कार्य एक ही समिति करती है।

गुजरात की समितियां समीपवर्ती गांवो की सहकारी साख समितियो का एक सामूहिक संगठन मात्र होती है। तीन चार गांवो की साख समितियो के सदस्य उसके सदस्य बन जाते है। सदस्य एक प्रकार की ही कपास उत्पन्न करते है। सब कपास इकट्ठी करली जाती है और बेच दी जाती है। कर्नाटक प्रान्त की समितियां सदस्यो की कपास को इकट्ठा नही करतीं वरन उनकी कपास पृथक पृथक नीलाम कर देती है।

**क्रय समिति**—समिति का मैनेजर साख समितियो के द्वारा सदस्यो से आर्डर मंगवाता है। सदस्यो को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे उसके लिये आर्डर दे देते हैं। सब

आर्डर प्रबंध कारिणी समिति के सामने रक्खे जाते हैं, समिति के आदेशानुसार मैनेजर प्रबंध कारिणी समिति के एक सदस्य की सहायता से वस्तुएँ खरीदता है। समिति उन वस्तुओ को सदस्यो के हाथ बेच देती है। लाभ सदस्यो की खरीद के हिसाव से बांट दिया जाता है। बम्बई मे क्रय विक्रय यूनियन अभी तक केवल बीज, खाद, तथा खेती के यन्त्रो को ही खरीदती है। यह यूनियन सदस्यो के लिये बैल भी सफलता पूर्वक खरीद सकती है। गुजरात की कुछ समितियां अपने सदस्यो को अच्छी कपास का बीज देती है और कपास को पेचो से ओटवा कर बेचती है।

क्रय विक्रय समितियो के कार्य मे कुछ कठिनाइयां उपस्थित होती है जिनपर यहां विचार कर लेना उचित है। क्रय विक्रय समिति यदि बड़ी नहीं होगी तो वह व्यापारियो की प्रतिद्वन्दता मे टिक न सकेगी। आवश्यकता तो इस बात की है कि बहुत से गांवो के लिये एक समिति स्थापित की जावे। इन समितियो मे व्यक्तियो को सदस्य बनाना खतरे से खाली नही है क्योकि बहुत सम्भव है कि बनिये तथा व्यापारी जिनसे कि समिति प्रतिद्वंदता करने जा रही है अपने आदमियो को समिति का सदस्य बना कर समिति को नष्ट करने का प्रयत्न करे। अस्तु, केवल साख समितियां ही सदस्य बनाई जावे। किन्तु यह नियम अवश्य रक्खा जावे कि जो साख समितियो के सदस्य नही है उनकी पैदावार भी समिति बेचेगी। इसके अतिरिक्त जो लोग व्यापारी

नही है और जो समिति से प्रतिद्वंदता नही करते उनको सदस्य बना लिया जावे ।

विक्रय समितियो के लिये पूँजी की समस्या अत्यन्त कठिन है । जब कि किसान अपनी पैदावार समिति के पास लाता है तभी वह रुपया चाहता है, समिति को यथेष्ट धन पेशगी दे देना पड़ता है । समिति की अपनी निजी पूँजी बहुत कम होती है और भारतवर्ष मे वह दिन दूर है जब कि सहकारी समितियो के पास यथेष्ट डिपाजिट आजावेगी । सैन्ट्रल बैक समितियो को केवल उतनी ही साख देते है जितनी क्रि उनकी पूँजी होती है । अस्तु, आवश्यकता इस बात को है कि समितियां अपने सदस्यो का दायित्व हिस्सो के मूल्य से दुगना या तिगुना रखे जिससे कि सैन्ट्रल बैक पूँजी से उतनी गुनी साख दे सके । सहकारी विक्रय समितियो से किसान को निम्न लिखित लाभ होते है । किसान जब अपनी पैदावार लाता है,समिति पैदावार को तौल कर रसीद दे देती है । पैदावार लेकर पेशगी कुछ रुपया दे दिया जाता है । तथा पैदावार को अधिक से अधिक मूल्य पर वेचा जाता है ।

**बंगाल की जूट समितियां**—बंगाल मे लगभग ६० विक्रय समितियां है । इनमे जूट वेचने वाली समितियां अधिक हैं । १९२७ मे इन समितियो ने एक होल सेल सोसायटी स्थापित की थी । यह सोसायटी एक विशेषज्ञ को नौकर रखती है जो कि वाजार भाव का अध्ययन करता है और सम्बन्धित समितियो को सलाह देता है । बंगाल मे धान वेचने वाली समितियां भी

स्थापित की गई है और उनकी भी एक केन्द्रीय समिति बन गई है।

पंजाब मे कुछ कमीशन पर बेचने वाली दूकाने स्थापित की गई है जो सदस्यो तथा ग़ैर-सदस्यो की पैदावार को बेचती है। वहां क्रय-विक्रय समितियां भी स्थापित की गई, जो अधिक सफल नही हुईं।

मदरास मे लगभग सवा सौ क्रय-विक्रय समितियां हैं किन्तु वे बहुत थोड़ा व्यापार करती है। मदरास मे भी यह नही कहा जा सकता कि इनकी दशा अच्छी है।

इनके अतिरिक्त बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त, तथा संयुक्तप्रान्त मे भी कतिपय समितियां स्थापित की गई किन्तु उनकी दशा अच्छी नहीं है।

## कृषि से सम्बन्धित अन्य समितियां।

पशु सुधार समितियां—प्रत्येक प्रान्त मे कुछ ऐसी समितियां स्थापित की गई है जो अच्छी नस्ल के पशु उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है। समितियो उत्तम जाति के सांड़ रखती है और सदस्यो के पशुओ की उन्नति करने के दूसरे उपाय भी करती है। पंजाब मे इस प्रकार की डेढ़ सौ से कुछ ऊपर समितियां है। अन्य प्रान्तो मे ऐसी समितियो की संख्या बहुत कम है। यह समितियां चरागाह ले लेती हैं और अपनी गायो की नस्ल को सुधारने का प्रयत्न करती हैं।

**नौगांव गांजा उत्पन्न करने वालों की समितियां—** यह एक महत्वपूर्ण उत्पादक समिति है। इसके ४००० से ऊपर सदस्य है और लगभग ६ लाख इस समिति की कार्यशील पूंजी है। इस समिति के पास गांजा और भांग उत्पन्न करने का एकाधिकार है। इस समिति को लाखो रुपया वार्षिक लाभ होता है, जिससे तीन अस्पताल, एक पशुओ का अस्पताल, चलते हैं। और तीन हाई स्कूलो, तथा ८७ ग्रामीय पाठशालाओ को सहायता दी जाती है।

बम्बई मे तीन सहकारी कपास के पेच खोले गये हैं। मदरास मे पांच औद्योगिक सहकारी समितियां हैं, जिनमे कल्ला-कुर्ची की समिति सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इसके पास चावल, मूंगफली, साफ करने, गन्ना पेरने, तथा खांड़ बनाने की मशीने है। बंगाल मे एक शक्कर का कारखाना तथा चावल की मिल है। बर्मा मे भी एक चावल की मिल सफलतापूर्वक कार्य कर रही है।

# पंद्रहवा परिच्छेद

## सहकारी श्रमजीवी तथा कृषि समितियां

योरोप मे इटली ने श्रमजीवियो का सहकारी समितियो के द्वारा संगठन करके इस ओर पथप्रदर्शक का कार्य किया है। संसार मे प्रत्येक देश के किसान अलहदा अलहदा खेती-बारी करते है, किन्तु इटली के कतिपय प्रदेशो मे सामूहिक खेती-बारी सफलतापूर्वक की जा रही है । साथ ही इटली मे मजदूरो ने सहकारी समितियां स्थापित करके सरकारी तथा अन्य संस्थाओ से सड़क, इमारते, तथा रेलवे लाइनो पर काम करने के लिये ठेके लेना प्रारम्भ कर दिया है और ठेकेदार को निकाल बाहर किया है। भारतवर्ष मे इस प्रकार की समितियो की अत्यन्त आवश्यकता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष मे भूमि कम होने के कारण प्रति किसान भूमि बहुत कम है, इस कारण आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती-बारी नही हो सकती। साथ ही वह थोड़ी सी भूमि भी छोटे छोटे भूमि के टुकड़ो मे बटी हुई है जिसके कारण भारतवर्ष मे खेती-बारी की अत्यन्त हीन दशा है। बिखरे हुए छोटे छोटे खेतो पर खेती-बारी करने से किसान अपना समय, श्रम, पशु शक्ति, तथा पूँजी का अपव्यय करता है और उत्पत्ति बहुत कम होती है। भूमि चकबन्दी समितियां इस ओर प्रयत्न कर रही है किन्तु चकबन्दी के कार्य मे इतनी कठिनाइयां उपस्थित हो रही है कि शीघ्र ही इससे समस्या हल होती नहीं

दिखलाई देती। सामूहिक खेती इस समस्या को हल करने का अत्यन्त सरल उपाय है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष मे साधारण मज़दूरो की दशा भी अत्यन्त शोचनीय है,ठेकेदार रेलवे कंपनियो से, सरकारी निर्माण विभाग से, तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से ठेका ले लेते है और मजदूरो को रख कर काम कराते है। यद्यपि भारतवर्ष मे इस प्रकार की समितियो का श्रीगणेश भी नही हुआ है फिर भी इनकी उपयोगिता के कारण हम यहां इनका विवरण देते हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सम्मिलित कृषि सहकारी समितियो को जन्म देने का श्रेय इटली को है। इटली में बड़े बड़े जमीदार अपनी जिमीदारी पर न रह कर नगरो मे विलासता का जीवन व्यतीत करते थे और अपनी भूमि को कुछ लोगो को उठा देते। यह लोग गांव वालो को मज़दूर रख कर उस भूमि पर खेती करवाते थे। किसान मजदूरो की अत्यन्त शोचनीय दशा थी, सम्मिलित कृषि सहकारी समितियो ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न किया है। सर्व प्रथम १८८६ मे क्रिमोना के किसान मज़दूरो ने एक समिति का संगठन करके एक जमींदार से एक बड़ी स्टेट लगान पर ले ली और अपने सदस्यो मे उसको बांट लिया। किन्तु ज़िमीदार से झगड़ा हो जाने के कारण यह प्रयत्न असफल रहा। इसके उपरान्त १८६४ मे मिलन मे सर्व प्रथम यह प्रयोग सफल हुआ। इसके उपरान्त यह आन्दोलन क्रमशः बढ़ता गया किन्तु पूँजी की कमी होने के

कारण आरम्भ मे यह धीरे धीरे ही फैल सका। योरोपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर इटली सरकार को बेकार सैनिकों को खेती-बारी मे लगाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। सरकार ने बहुत सी सरकारी भूमि तथा पूँजी देकर इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया। इसके उपरान्त क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ती ही गई और इस समय इटली मे लगभग ५०० (पांच सौ) समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

सम्मिलित सहकारी कृषि समितियां दो प्रकार की होती हैं। एक वह समितियां जिनमे भूमि को सदस्यो मे बांट दिया जाता है और प्रत्येक सदस्य अपने खेत पर खेती करता है तथा समिति को लागान देता है। दूसरे प्रकार की समितियां वह है जिनमें भूमि बांटी नहीं जाती वरन समिति एक मैनेजर रख कर सदस्यों के द्वारा समस्त भूमि पर खेती करवाती है और पैदावार समिति इकट्ठी करती है। समिति सदस्यो को निश्चित मजदूरी देती है। पहले प्रकार की समितियां कैथोलिक लोगो की हैं और दूसरे प्रकार की समितियां साम्यवादियो की है। समिति का रूप क्या होगा यह बहुत कुछ भूमि के ऊपर निर्भर है। जिस प्रकार की समिति के लिये भूमि उपयुक्त होगी उसी प्रकार की समिति का संगठन किया जावेगा। पहिले प्रकार की समितियो मे सदस्य मजदूरो की भांति न रहकर किसानो की भांति रहते है, किन्तु दूसरी प्रकार की समितियो मे सदस्य मजदूरो की भांति रहते है।

पहिले प्रकार की समितियां जमीदारो से पट्टे ले लेती है।

भूमि सदस्यो मे बांटी नही जाती, सामूहिक रूप से उस पर खेती होती है। समिति खेती बारी के औजार, यन्त्र, तथा पशु मोल लेती है। समिति के सदस्यो को इन औजारो तथा यन्त्रो की सहायता से समिति के मैनेजर की आधीनता मे खेती बारी करनी पड़ती है। प्रत्येक सदस्य को एक छोटा सा भूमि का टुकड़ा उसके कुटुम्ब की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए दिया जाता है। यह भूमि का बंटवारा केवल खेती बारी के लिये ही किया जाता है। प्रत्येक वर्ष भूमि का फिर से बंटवारा होता है। खाद और बीज समिति देती है। सदस्य अपने कुटुम्ब वालो की सहायता से खेत पर काम करता है। जुताई खाद डालने का काम, तथा फसल को साफ करके अनाज निकालने का कार्य समिति करती है परन्तु और सब काम किसान को करने पड़ते है। किसान को उस खेत की एक-तिहाई पैदावार दे दी जाती है, जो कि उसके वर्ष भर के भोजन के लिये काफी होती है। किसान को बीज तथा खाद का एक तिहाई मूल्य भी देना पड़ता है। जब समिति को सदस्य से कही काम लेना होता है तब सदस्य को समिति का कार्य करना पड़ता है। खेती बारी मैनेजर के कहे अनुसार ही करनी पड़ती है। चरागाह की भूमि सदस्यो मे नही बांटी जाती। आरम्भ मे इन समितियो को पूँजी प्राप्त करने मे कठिनाई का सामना करना पड़ा किन्तु योरुपीय महायुद्ध के उपरान्त सरकार सहायता देने लगी है। सदस्यो को उनके खेतो की एक-तिहाई पैदावार मजदूरी के रूप मे मिलती है तथा बाकी

मजदूरी सिक्के मे दी जाती है। सब पैदावार इकट्ठी की जाती है और बेचने पर जो लाभ होता है वह मज़दूरी के अनुपात मे बांट दिया जाता है। समितियां अपना बैंक तथा स्टोर भी रखती है।

सामूहिक रूप मे सम्मिलित खेती-बारी करने वाली समितियां एक बड़े कारखाने के समान है। सदस्यो को मैनेजर के अनुशासन मे कार्य करना पड़ता है। मैनेजर अधिकतर श्रमजीवी समुदाय का ही होता है किन्तु प्रबंध पटु तथा विशेषज्ञ होता है। यदि कोई सदस्य आज्ञा को नही मानता तो उसको चेतावनी दी जाती है, जुर्माना किया जाता है, मज़दूरी काट दी जाती है, तथा अधिक उद्दण्डता करने पर निकाल भी दिया जाता है। परन्तु यह नौबत बहुत कम आती है। समिति का सदस्य स्थानीय मजदूर सभा का सदस्य होता है। जब कभी समिति तथा सदस्यो मे झगड़ा होता है तो मजदूर सभा की सहायता तथा परामर्श से उसका फैसला हो जाता है। साधारणतः तो सदस्य तथा समिति मे कोई झगड़ा होता ही नही। इटली मे कुछ स्थानोपर यह भी प्रयत्न किया गया कि खेतो को सदस्यो मे बिना बाटे हुए सामूहिक-सम्मिलित खेती की जावे किन्तु सफलता नही मिली। फ्रांस, जरमनी, आयरलैड तथा रूमेनिया मे इस प्रकार की समितियां स्थापित की गई है।

भारतवर्ष के अन्दर बम्बई प्रान्त मे दो सम्मिलित खेती बारी करने वाली समितियां स्थापित की गई किन्तु वे सफल नही हुई।

भारतवर्ष मे इस प्रकार की समितियो की अत्यन्त आवश्यकता है किन्तु इन समितियो को सफलता पूर्वक चलाने के लिये योग्य मैनेजर तथा ऐसे कार्य कर्ताओं को आवश्यकता है कि जो गांवो मे इस प्रकार की समितियो की उपयोगिता का प्रचार करे।

**श्रमजीवी समितियां**—सहकारी श्रमजीवी समितियो को सर्व प्रथम स्थापित करने का श्रेय भी इटली को ही है। इन समितियो का उद्देश्य ठेकेदारो को हटा कर स्वयं ठेके लेकर अपने सदस्यो द्वारा काम कराना है। आरम्भ मे इन समितियो ने सड़को को बनाने, साधारण इमारतो को तैयार करने तथा अन्य साधारण कार्यों के ठेके लिये किन्तु अब तो यह समितियां बड़े से बड़े कार्य करती है। यहां तक कि रेलवे लाइन डालने, तथा कानो को खोदने का काम भी करने लगी है। यद्यपि यह आन्दोलन १८८० मे प्रारम्भ हुआ किन्तु १६०० से यह उन्नति करने लगा, और योरुपीय महायुद्ध के उपरान्त यह तीव्र गति से बढ़ने लगा। इस समय इटली मे लगभग ३००० समितियां कार्य कर रही है।

राज्य ने इन समितियो को खूब अपनाया है, राज्य इन समितियो को आर्थिक सहायता देता है तथा राजकीय, म्यूनिसपैलटियो, तथा अन्य संस्थाओ का सारा कार्य इन्ही समितियो को दिया जाता है।

प्रत्येक समिति एक मैनेजर नियुक्त करती है तथा एक कमेटी बनाती है। उस कमेटी मे स्थानीय मजदूर सभा के प्रतिनिधियो

को भी स्थान दिया जाता है। कमेटी मे कार्य करने के लिये कोई वेतन नही दिया जा सकता। वैतनिक कर्मचारी कमेटी की मीटिंग मे सम्मिलित हो सकते है किन्तु वोट नही दे सकते। कमेटी का प्रत्येक सदस्य एक एक सप्ताह समिति के कार्य की देख भाल करता है, उस समय सदस्य को खर्चा दिया जाता है।

समिति के सदस्य समिति के हिस्से खरीदते है जिनका मूल्य किश्तो मे चुका दिया जाता है, किन्तु इन समितियो को पूँजी की अधिक आवश्यकता रहती है क्योंकि सदस्यो को मजदूरी देनी होती है। राज्य नेशनल इंस्टिट्यूट आफ क्रैडिट (जातीय साख संस्था) के द्वारा इन समितियो को पूँजी उधार देता है। यह संस्था अपने इंजीनियरो के द्वारा समिति के ठेके की जांच कर लेती है। आरंभ मे जातीय साख संस्था समिति की साख पर थोड़ासा ऋण दे देती है। इसके उपरान्त जैसे जैसे समिति, कार्य करती जाती है, अपने कार्य का सर्टिफिकेट दिखलाकर जातीय साख संस्था से उधार ले लेती है। जिस संस्था के लिये समिति कार्य कर रही है उस संस्था के प्रमाण पत्र के आधार पर समिति को ऋण दे दिया जाता है और वह संस्था जातीय साख संस्था को यथा समय मूल्य चुका देती है। यदि समिति को अपने कार्य का पेमेन्ट-आर्डर (चालान) मिल जाता है तो जातीय संस्था उसकी जमानत पर रुपया दे देती है और स्वयं वसूल कर लेती है।

सदस्यो की मजदूरी तथा काम के घन्टे मजदूर सभा

(Trade Union) के परामर्श से नियत किये जाते हैं । भिन्न भिन्न कार्य के लिये भिन्न भिन्न मजदूरी निश्चित की जाती है । सदस्यो को छोटे छोटे समूहो मे बाट दिया जाता है प्रत्येक समूह के ऊपर एक सरदार रहता है जो औजारो की देख भाल करता है। समिति वार्षिक लाभ का १० प्रति शत सुरक्षित कोष मे रखती है, ४० प्रति शत दुर्घटना तथा पैशन फंड मे डालती है, तथा ५० प्रति शत मजदूरी के अनुपात से सदस्यो मे बांट देती है । यदि कभी समिति के पास काम कम होता है तो काम के घन्टे घटा दिये जाते है अथवा बारी बारी से सदस्यो को काम दिया जाता है ।

यह समितियां अधिकतर सड़क, बांध, पहाड़ी को काट कर समथल करने, पुल, इमारते, तथा बंजर और दलदल भूमि को ठीक करने का काम करती है । कुछ समितियो ने रेलवे लाइन डालने का काम भी सफलता पूर्वक किया है। इससे यह न समझना चाहिये कि केवल साधारण मजदूरो ने ही यह समितिया चलाई है । इटली मे बढ़ई, लुहार, राज, मल्लाह, गाड़ी वाले तथा बन्दरगाह मे काम करने वालो ने भी अपनी अपनी समितियां स्थापित की है ।

इन समितियो की स्थापना से यह लाभ हुआ है कि मजदूरो मे बेकारी कम हुई है उनकी मजदूरी बढ़गई है, तथा उनका जीवन अधिक सुखी बनगया है । प्रत्येक समिति पैशन फंड रखती है जो

कि सदस्य के बुढ़ापे मे काम आता है। इटली में यह समितिया भी दो प्रकार की है, साम्यवादी तथा कैथोलिक।

भारतवर्ष मे बम्बई तथा मदरास प्रान्तो मे इस प्रकार की समितियां स्थापित की गई है। बम्बई मे दो समितियां इस समय कार्य कर रही है, बेलगाव जिले मे हुकेरी श्रमजीवी समिति अछूतो के लिये स्थापित कीगई है। समिति सदस्यो को कुछ रुपया पेशगी दे देती है और बाद मे मजदूरी मे से काट लेती है। यह समिति ठेके लेती है। १६०० मे इस समिति को २०००) रुपये का लाभ हुआ। दूसरी समिति भड़ौच मे इमारतें बनाने वाले मजदूरो की है। बम्बई मे दो समितिया और भी स्थापित की गई थी किन्तु वे सफल नहीं हुई।

यदि प्रान्तीय सरकार, जिला बोर्ड, और म्यूनिस्पैलटी श्रमजीवी समितियो को प्रोत्साहन देने की नीति स्वीकार करले तब यह आन्दोलन सफलता पूर्वक सब प्रान्तो मे चलाया जा सकता है। यदि हमारे देश की प्रान्तीय सरकारे इन समितियो को आर्थिक सहयता देने लगे तो शीघ्र ही यह समितियो ठेके-दारों को हटा कर ठेके लेसकती हैं और मजदूर वर्ग की आर्थिक उन्नति कर सकती है।

---

# सोलहवां परिच्छेद

## कृषि से सम्बन्धित अन्य समितियां ।

**सहकारी सिंचाई समितियां**--भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश मे जहां खेती बारी वर्षा पर ही अवलम्बित है और जहां वर्षा अनिश्चित है, सिंचाई के महत्व को बतलाने की आवश्यकता नही है। देखना यह है कि किसान स्वयं सहकारिता के द्वारा किस प्रकार सिचाई के साधन उपलब्ध कर सकते है।

**बंगाल की सिंचाई समितियां**-- बंगाल मे सिचाई समितियां सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं । पश्चिमी बंगाल का प्रदेश कुछ नीचा है इस कारण वर्षा का पानी भूमि पर नहीं रुकता वरन शीघ्र ही बह जाता है। इस कारण साधारणतः वर्षा अच्छी होने पर भी जिस समय धान को पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती उस समय पानी की कमी होजाती है। यही कारण है कि पश्चिमी बंगाल मे कभी कभी अकाल पड जाता है।

यदि वर्षा के शुरू मे जो अत्याधिक जल गिरता है वह सिंचाई के लिये रोक लिया जावे तथा नदियो के द्वार समुद्र में न बह जाने दिया जावे तो यह समस्या हल हो सकती है। इसी उद्देश्य से पुराने समय के राजाओं, जमीदारों, तथा धनिक वर्ग ने वर्षा के के जल को रोक रखने के लिए बांध बनवाये थे। पश्चिमी बंगाल

मे अनुमान किया जाता है कि लगभग पचास हजार बांध हैं। कालांतर मे कई कारणो से सिचाई का यह उत्तम साधन नष्ट हो गया अधिकांश बांध मिट्टी से भर गये, और जमींदार उनमे धान की खेती कराने लगे। १६१६ मे बांकुरा जिले में अकाल पड़ा, उस समय अधिकारी वर्ग का इस ओर ध्यान गया और इन बांधो को फिर से उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया।

सहकारिता विभाग ने वर्दमान डिवीजन मे सहकारी सिचाई समितियां स्थापित की है जिनका उद्देश्य भरे हुये बाधो और तालाबो को फिर से खुदवाना, तथा नये तालाब बनवाना है। सिचाई समिति परिमित दायित्व वाली होती है, प्रत्येक सदस्य को अपनी भूमि के अनुपात मे ही समिति के हिस्से खरीदने होते है। समिति के पास निजी पूँजी तो होती ही है आवश्यकता पड़ने पर सैन्ट्रल बैंक से ऋण लिया जा सकता है। जब कि बांध या तालाब तैयार होजाता है तब प्रति एकड़ सिचाई क्या ली जाना चाहिये, यह निश्चय किया जाता है। समिति सदस्यो से सिंचाई की कीमत वसूल करके ऋण चुकाती है तथा बांध की मरम्मत करवाती रहती है। इस समय बंगाल मे लगभग १००० सिचाई समितियां कार्य कर रही है। अधिकतर समितियां बांकुरा तथा बीर भूमि के जिलो मे है। इन सिचाई समितियो के कारण लाखो बीघा जमीन पर सिंचाई होती है। बंगाल मे सिचाई समितियो की मांग तेजी से बढ़ रही है।

बंगाल के अतिरिक्त मदरास मे भी सिचाई समितियां स्थापित

की गई हैं जो सदस्यो की भूमि की सिंचाई करती हैं । वर्मा बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रान्त तथा मैसूर मे भी कतिपय सिंचाई समितियां कार्य कर रही है । पंजाब मे भी यथेष्ट संख्या मे सिचाई समितियां है जो नदियो की धाराओ की मिट्टी निकलवाकर उनसे सिंचाई करतो है ।

**खेती बारी की उन्नति करने वाली समितियां**—बम्बई प्रान्त मे सहकारी तथा कृपि विभाग के उद्योग से ताल्लुका-डैवलैपमैन्ट एसोसियेशन नामक संस्था को जन्म दिया गया है । १६२२ मे यह संस्थाएं स्थापित की गईं थीं, क्रमशः इनकी सख्या बहुत तेजी से बढ़ती जारही है । इनके सदस्य सहकारी समितियो के अतिरिक्त वे व्यक्ति भी होसकते है जो निश्चित फीस दे । इन संस्थाओ का उद्देश्य यह है कि उनके ताल्लुके मे खेती-बारी की उन्नति की जावे, सहकारी समितियो का संगठन किया जावे, तथा उनकी देख भाल की जावे ।

यह संस्थाऐ कृषि विपयक जानकारी को किसानो मे फैलाने का प्रयत्न करती हैं, सहकारी समितियो द्वारा अच्छा बीज, अच्छा यन्त्र, अच्छी खाद किसानो को देती है, पशुओ की नस्ल सुधारने का प्रयत्न करती है, गृह-उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करती है, तथा किसानो के कष्टो की ओर अधिकारियो का ध्यान आकर्पित करती हैं । किन्तु अभी तक यह संस्थाएं ऊपर लिखे हुए उद्देश्यो को पूरा नहीं कर सकी हैं ।

ताल्लुका ऐसोशियेशन को सरकार सहायता देती है। प्रारम्भ में यह विचार किया गया था कि ताल्लुका ऐसोसियेशन ही सहकारी साख समितियो की देख भाल करे किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ कि वे इस कार्य को नही कर सकती।

ताल्लुका ऐसोसियेशन की देख भाल करने के लिये डिवीजनल बोर्ड स्थापित किये गये है। बोर्ड के ६ सदस्य होते है। दो सरकारी (कृषि विभाग तथा सहकारिता विभाग के कर्मचारी) तथा चार गैर सरकारी, जिनको कृषि विभाग का डायरैक्टर, तथा सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार मनोनीति करता है। बोर्ड इन संस्थाओ के लिये कार्य-क्रम बनाता है, उनके कार्य का निरीक्षण करता है, तथा सरकारी सहायता को इन संस्थाओ मे बांटता है।

बम्बई के अतिरिक्त मदरास, बंगाल, बर्मा, तथा मध्यप्रान्त मे भी खेती-बारी की उन्नति करने वाली समितियां स्थापित की गई है। यह समितियां अच्छे यन्त्र, उत्तम जाति का बीज, तथा उपयोगी खाद अपने सदस्यो को देती है, और कोई कोई समिति कृषि विभाग की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से खेती करने का प्रदर्शन भी करती है।

पंजाब प्रान्त मे लगभग सवा सौ समितियां इस ओर कार्य कर रही है, उनको कुछ सफलता भी मिली है। यह समितिया अपने सदस्यो को उत्तम बीज बोने, उपयोगी यन्त्रो का उपयोग करने, तथा आधुनिक ढङ्ग से खेती करने के लिये प्रोत्साहित करती है। इन समितियो को केवल सदस्यो मे ही सफलता नहीं

मिली है वरन इनके कार्य का प्रभाव गांव के अन्य किसानों पर भी पड़ा है। कृषि विभाग इन समितियों को ट्रेंड ओवरसियर दे देते हैं, जो वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती करने वालों को परामर्श देते हैं।

बिहार उड़ीसा में सैन्ट्रल बैंक अपने से संबंधित समितियों के सदस्यों की खेती-बारी की उन्नति करने का प्रयत्न करते हैं। लगभग पचास सैन्ट्रल बैंकों ने कृषि विभाग की सहायता से अच्छी खाद, और उत्तम बीज को बेचना प्रारम्भ कर दिया है। यह बैंक प्रदर्शन ( डिमांस्ट्रेशन ) के द्वारा प्रचार कार्य भी करते हैं। इस कार्य के लिये, बैंकों ने कामदार नियुक्त किये हैं, जिनको कृषि विभाग आधुनिक ढङ्ग की खेती की शिक्षा देकर कार्य करने योग्य बना देता है।

संयुक्त-प्रान्त में इस ओर अधिक कार्य नहीं हुआ है। सहकारी साख समितियों के द्वारा कृषि विभाग के कर्मचारी आधुनिक ढङ्ग की खेती का प्रचार करते हैं। दो कृषि सुधार समितियां भी स्थापित की गई हैं।

अखंड साम्राज्य है। शिक्षा के बिना हमारे गांवो का जीवन कितना गिरता जा रहा है, यह पाठको से छिपा हुआ नहीं है। जब तक गांवो मे शिक्षा का प्रचार नही कर दिया जाता तब तक गांवो का सुधार होना कठिन है। सहकारिता के द्वारा गांवो में शिक्षा का प्रचार किया जा सकता है। क्या ही अच्छा हो कि यदि सरकार सहकारी शिक्षा समितियो को आर्थिक सहायता देकर गामीण शिक्षा का कार्य उनको सौप दे।

**पंजाब की शिक्षा समितियां**--पंजाब मे दो प्रकार की समितियां स्थापित की गई है। एक तो प्रौढ़ो के लिये, दूसरी बच्चो के लिये। प्रौढ़ो की शिक्षा समितियो के सदस्यो को प्रति मास फीस देनी पड़ती है, निर्धनो से फीस नही ली जाती, सदस्यो को स्कूल मे नियमित रूप से हाजरी देनी पड़ती है। जो मास्टर बालको के स्कूल का शिक्षक होता है उसी को कुछ मासिक वेतन देकर रख लिया जाता है। इस प्रकार के स्कूलो को आगे चल कर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ले लेता है। पंजाब मे लगभग १०० प्रौढ़ो को शिक्षा देने वाली समितियां कार्य कर रही है। सहकारी शिक्षा समितियो की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक उत्साही हो। देश मे इस समय शिक्षित नवयुवक वर्ग मे भीषण बेकारी फैली हुई है, यदि इस समय सर्व व्यापी ग्रामीण शिक्षा आन्दोलन किया जावे और योग्य शिक्षित नवयुवको को गांवो मे शिक्षा कार्य करने की शिक्षा दी जावे तो सफलता मिल सकती है।

**पंजाब में बालकों को अनिवार्य शिक्षा देने वाली समितियां**—इन समितियो के सदस्य बालको के माता पिता होते है। माता पिता को अपने बालको को स्कूल मे भेजने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, और प्रति मास कुछ फीस देनी पड़ती है जिससे शिक्षक का वेतन दिया जाता है। इस समय पंजाब मे डेढ़ सौ के लगभग समितियां शिक्षा देने का कार्य कर रही हैं।

**संयुक्त प्रान्त**—संयुक्त प्रान्त मे पंजाब की ही भांति प्रौढ़ो को शिक्षा देने वाली समितियां स्थापित की गई हैं। इन समितियो की संख्या तीस के लगभग है, जिनमे तीन स्त्रियो के लिये है। संयुक्त प्रान्त मे इन स्कूलो का उपयोग प्रचार कार्य के लिये खूब हो रहा है, कृषि, स्वास्थ, तथा शिक्षा विभाग के कर्मचारी इन स्कूलो में जाकर गांव वालो को उपयोगी बातें बतलाते है। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि शिक्षकों की पत्नियो को शिक्षा देकर उन्हे स्त्रियो की शिक्षा का कार्य सौंपा जावे।

**विहार उड़ीसा**—विहार उड़ीसा में साख समितियों ने गांवो में पाठशालायें स्थापित करके शिक्षा को खूब प्रोत्साहन दिया है। प्रति वर्ष यथेष्ट संख्या में पाठशालायें स्थापित की जाती हैं। सैन्ट्रल बैंक भी इन पाठशालाओं को प्रति वर्ष यथेष्ट आर्थिक सहायता देते है। खेद का विषय है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अभी तक इन पाठशालाओं को पर्याप्त सहायता नहीं दे रहे हैं। कुछ बैंक पाठशाला की इमारत के लिये भी आर्थिक सहायता देते हैं। है.

स्थानो मे समितियो के सदस्यो ने पाठशाला के लिये भूमि दान दे दी है।

**बंगाल**—बंगाल मे बहुत सी समितियां गांव की शिक्षा का आयोजन करती है, और रात्रि पाठशालाये भी चलाती है। बंगाल मे गांजा उत्पन्न करने वालो की समिति, तथा कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर की विश्व-भारती का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

**बम्बई**—बम्बई मे समितियां पाठशालाओ को आर्थिक सहायता देती है। धारवार जिले मे सहकारी शिक्षा समितियां भी स्थापित की गई है।

**काश्मीर**—काश्मीर में कुछ अनिवार्य सहकारी शिक्षा समितियां स्थापित की गई है, जिनके सदस्यो को अपने बालको को अनिवार्य शिक्षा दिलाने की प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रौढ़ो के लिये भी समितियां स्थापित की जा रही है। सहकारिता विभाग भविष्य मे शिक्षा विभाग की सहायता से अधिकाधिक समितिया स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है।

**सहकारी बीमा समितियां**—अन्य देशो मे मनुष्यो तथा पशुओ का जीवन बीमा करने के लिये भी सहकारी बीमा समितियां स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष मे पशुओ का जीवन बीमा करने वाली समितियो की बहुत आवश्यकता है। क्योकि इस देश की अधिकांश जनसंख्या खेती करती है। ग़रीब

किसान की अगर कोई क़ीमती चीज़ होती है तो वह गाय, बैल, तथा भैंस ही है। पशुओं की बीमारियां इस देश मे इतनी अधिक है कि प्रति वर्ष लाखो पशुओ की इन बीमारियो के कारण मृत्यु हो जाती है। ग़रीब किसान को कर्ज़ लेकर बैल खरीदने पड़ते है, इस कारण पशु बीमा समितियां किसान को इस जोखिम से बचाने के लिये ज़रूरी है। पंजाब तथा बर्मा में कुछ पशु बीमा समितियां स्थापित भी की गईं किन्तु उनको अधिक सफलता नहीं मिली। कारण यह है कि पशुओं की मृत्यु संख्या सम्बन्धी आंकड़े जब तक ठीक ठीक मालूम न हो तब तक यह हिसाब नहीं लगाया जा सकता कि अमुक उम्र के पशुओं का बीमा करने में कितनी जोखिम उठानी पड़ेगी।

हां मनुष्यो का जीवन बीमा बिना किसी कठिनाई के सहकारी बीमा समितियां कर सकती हैं और अन्य बीमा कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा मे सफल भी हो सकती हैं। क्योकि सहकारी जीवन बीमा समितियो का खर्चा कम होता है। बम्बई प्रान्त में एक सहकारी जीवन बीमा समिति स्थापित की गई है जो सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। किन्तु अन्य प्रान्तो मे इस ओर ध्यान नही दिया गया। जब कि बीमा का कारबार देश मे तेजी मे बढ़ रहा है, तब बीमा सहकारी समितियो की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

# सत्तरहवां परिच्छेद

## उत्पादक सहकारी समितियां।

भारतवर्ष मे उत्पादक सहकारी समितियो का अभी श्रीगणेश ही समझना चाहिये। सहकारिता विभाग का ध्यान इस ओर विशेष रूप से नही गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक सहकारिता आन्दोलन किसान की आवश्यकताओं को पूरा करने मे ही लगा रहा है। इस कारण गृह उद्योग धंधो की ओर विशेष ध्यान नही गया। किन्तु आज हमारे कारीगरो की ( जो कि गृह-उद्योग-धन्धो मे लगे हुए हैं ) उतनी ही शोचनीय दशा हो रही है जितनी कि हमारे किसानो की। गृह-उद्योग धन्धो को एक तो बड़े बड़े कारखानो की प्रतिद्वन्दता करनी पड़ती है दूसरे कारीगर व्यापारियो के ऋणी होने के कारण उनके चंगुल मे फंसे रहते हैं। अस्तु, उनको दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है और क्रमशः गृह-उद्योग-धन्धे नष्ट होते जारहे है। यदि हम देश के इन धन्धो को अनिवार्य मृत्यु से बचाना चाहते है तो हमे उनकी रक्षा के लिये सहकारिता आन्दोलन की शरण मे जाना होगा। तभी गृह-उद्योग-धन्धे पनप सकेगे तथा कारीगरो के दिन फिरेगे।

गृह-उद्योग-धन्धो मे लगे हुए कारीगरो की दशा कितनी गिरी हुई है इसका एक उदाहरण यहां दिया जाता है। पंजाब मे जुलाहो की कहीं कही बस्तियां बसी हुई है। यह जुलाहे

कारखानेदार अथवा कपड़े के व्यवसायी के चिरदास होते हैं। कारखानेदार इन जुलाहो को कुछ रुपया पेशगी दे देता है जिसे बाक़ी कहते हैं। जुलाहे से शर्त यह की जाती है कि वह केवल कारखानेदार को ही तैयार माल बेचेगा। जुलाहा कारख़ानेदार से ही सूत उधार ले जाता है और उसकी आज्ञानुसार ही कपड़ा तैयार करके उसी के हाथ कपड़ा बेचता है। कारखानेदार सूत का अधिक मूल्य लगाता है और कम से कम बुनवाई देता है। अस्तु, निर्धन जुलाहो को बहुत कम मज़दूरी मिलती है और वे कारखानेदार के चिरदास बने रहते है। यही हाल और सब धन्धो का है।

गृह-उद्योग-धन्धे दो प्रकार के होते है, एक तो वह धन्धे कि जिनमे लगे हुए मनुष्य केवल उसी पर निर्भर रहते है और वही उनका मुख्य पेशा होता है, दूसरे वह धन्धे कि जिनको किसान खेती-बारी से अवकाश पाने पर करता है। खेती उसका मुख्य धंधा होता है और गौण रूप से अपने अवकाश का उपयोग करने के लिये वह और कोई धन्धा कर लेता है। यह तो किसी से छिपा हुआ नहीं है कि भारतीय किसान अत्यन्त निर्धन है, इस कारण ग्रमीण धंधे आवश्यक हैं।

बात यह है कि भारतवर्ष मे लगभग ७६ प्रति शत जन संख्या केवल खेती बारी पर निर्भर है। गृह-उद्योग-धन्धो के नष्ट हो जाने के कारण उनमे लगी हुई जनसंख्या खेती-बारी की ओर चली आई। खेती के योग्य भूमि कम है और खेती करने वालो

की जनसंख्या पिछले ८० वर्षों मे लगातार बढ़ती गई इस कारण किसानो के पास इतनी कम भूमि रह गई है कि उस भूमि पर इतनी पैदावार नही होती कि वे अपने कुटुम्ब का भली भाति भरण पोषण कर सके। खेती बारी मौसमी धंधा है, यदि किसान के पास यथेष्ट भूमि हो, तो भी वर्ष के कुछ महीनो मे वह अवश्य बेकार रहेगा क्योकि उन दिनो खेतो पर कुछ काम नही होता। भारतवर्ष मे किसान वर्ष मे चार महीने बेकार रहता है और कही कही तो इस अनिवार्य बेकारी का समय ६ महीने तक होता है। जब भारतीय किसान की औसद दैनिक आय दो आने से अधिक नही है तब यदि वह अपने अवकाश के समय को और किसी धंधे मे लगा कर अपनी थोड़ीसी आय को बढ़ा सके तो यह धंधे निर्धन किसान के आर्थिक उद्धार का कारण बन सकते है। आज भारतवर्ष को ग्रामीय-उद्योग-धंधों की जितनी आवश्यकता है उतनी अन्य किसी भी देश को नही है। किन्तु यह धंधे तभी पनप सकते है जब कि इनका संगठन सहकारिता के सिद्धातो के अनुसार हो।

किसानो के लिये निम्न लिखित उपयोगी धन्धे हैं–घी, दूध का धंधा, मुर्गी पालने का धंधा, शहद की मक्खियां पालने का धंधा, भेड़ पालने का धंधा, रेशम के कीड़ो को पालने का धंधा, गुड़ बनाना, धान ( चावल ) साफ करना, रुई ओटना, सूत कातना, तेल निकालना, रस्सी बंटना, डलिया बनाना, चटाई बनाना, तथा चटाई तैयार करना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धंधे भी हैं जो किसानों के लिए तो उपयोगी नहीं हैं किन्तु जिनमें कारीगर लगे हुये हैं। भाग्यवश कुछ ऐसे गृह-उद्योग-धन्धे नष्ट होने से बचगये हैं, यद्यपि असंगठित होने के कारण उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमें निम्न लिखित धंधे मुख्य है।

सूती, ऊनी, तथा रेशमी कपड़े बुनने का धंधा, दरी, तथा कालीन बनाने का धंधा, छींट तथा अन्य प्रकार की छपाई तथा रंगाई का धंधा, फूल, पीतल, तांबे, तथा लोहे के बर्तन, खिलौने, तथा मूर्तियां बनाने का धंधा, जरी तथा काढ़ने का धंधा, सोने, चांदी के जेवर बनाने का धंधा, लकड़ी का सामान बनाने का धंधा, मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाने का धंधा, तथा चमड़े की वस्तुएं बनाने का धंधा, इत्यादि।

माल खरीदते हैं वह भी अधिकतर उधार, इस कारण उन्हें कच्चे माल का अधिक मूल्य देना पड़ता है, फिर भी माल अच्छा नहीं मिलता। तैयार माल के बेचने में तो कारीगर को अत्यन्त कठिनाई होती है। वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है इस कारण वह आधुनिक ढंग से बेच नहीं सकता। औद्योगिक उन्नति के युग में माल के लिये बाज़ार में मांग पैदा करनी पड़ती है; केवल माल तैयार करने से कुछ नहीं होता। माल को बाज़ार में खपत करने के लिए विज्ञापनबाज़ी करनी होती है, एजेन्ट तथा कनवैसर भेजने पड़ते हैं, माल का प्रदर्शनियों, तथा दूकानों में प्रदर्शन करना पड़ता है। किसान यह सब कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है और वह इस कला को जानता भी नहीं।

तीसरी कठिनाई जो कि इन धन्धों की उन्नति में बाधक होती है वह है संगठन का अभाव। कारीगर पुराने ढंग से पुरानी डिज़ाइन का माल तैयार करता है। जनता की रुचि बदलती रहती है किन्तु अशिक्षित कारीगर को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता, यदि वह जान भी जाता है कि जनता कौनसी वस्तु मांगती है तो उसे नवीन वस्तु के तैयार करने की शिक्षा देने वाला कोई नहीं होता। बुनकर को ही ले लीजिये। नई डिज़ाइन के कपड़े वह तैयार नहीं कर सकता। आधुनिक समय में जब कि फ़ैशन शीघ्रता पूर्वक बदलता रहता है बुनकर कभी अपने धन्धे की उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि वह जनता की रुचि के अनुसार

बढ़िया डिज़ाइन तैयार नहीं करेगा। अस्तु कारीगर को परामर्श तथा नवीन प्रणाली से माल तैयार करने की शिक्षा देने के लिये एक संगठन की आवश्यकता है।

भारतीय औद्योगिक कमीशन ने प्रान्तों में गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिये तथा मिलों और कारखानों की उन्नति के लिये औद्योगिक विभाग स्थापित करने की सलाह दी थी। यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में औद्योगिक विभाग स्थापित हो गये किन्तु अभी तक वे गृह-उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये कुछ भी नहीं कर सके। हां पंजाब, मदरास, बिहार, उड़ीसा, तथा मैसूर में इस आशय के एक्ट अवश्य पास किये गये हैं कि जो प्रान्तीय सरकारों को उद्योग धन्धों की सहायता करने का अधिकार देते है। अभी इस दिशा में अधिक कुछ नहीं हो सका है।

**सहकारी उत्पादक समितियां**—यदि गृह-उद्योग-धंधों का संगठन सहकारी समितियों के द्वारा किया जावे तो यह सब कठिनाइयां दूर की जा सकती है। उत्पादक सहकारी समितियां प्रत्येक धन्धे में लगे हुये कारीगरों का संगठन करेगी। एक समिति एक ही धन्धे का संगठन कर सकेगी। समिति परिमित-दायित्व वाली होगी। प्रत्येक सदस्य समिति का हिस्सा खरीदेगा। समिति डिपाजिट भी स्वीकार करेगी, तथा सैन्ट्रल बैंकों से पूँजी उधार लेगी। हिस्सा-पूँजी, डिपाजिट, तथा ऋण, समिति की कार्य-शील पूँजी होगी। केवल सदस्यों को साख देने का प्रबंध कर देने से ही समिति उनकी अवस्था को नहीं सुधार सकती। समिति

को वे सब कार्य करने होगे जो कि व्यवसायी करता है। व्यव-
सायी कारीगर को ऋण देता है, कच्चा माल बेचता है, तथा तैयार
माल खरीदता है। यदि समिति केवल साख का ही प्रबंध करके
रह जायगी तो कारीगर कच्चा माल खरीदने, तथा तैयार माल
बेचने मे लूटा जावेगा और जो कुछ उसे कम सूद देने के कारण
लाभ हुआ वह व्यवसायी की भेट हो जावेगा। यदि उत्पादक
समितियां वास्तव मे कारीगर की आर्थिक उन्नति करना चाहती
है तो उन्हे व्यवसायी को क्षेत्र से बिलकुल ही हटाना होगा,
अर्थात् उसके सब कार्य अपने हाथ मे लेने होगे। भारतवर्ष मे
एक तो उत्पादक सहकारी समितियां बहुत कम है, दूसरे इन
समितियो ने यह भूल की कि वे केवल साख का ही प्रबंध कर के
रह गई। सदस्यो के लिये कच्चे माल को खरीदने तथा तैयार
माल बेचने का कोई प्रबंध नही किया। फल यह हुआ कि यह
समितियां असफल हो गई।

जब तक कि उत्पादक सहकारी समितियां सदस्यो के लिये
उचित मूल्य पर कच्चा माल खरीदने का, तथा तैयार माल बेचने
का प्रबंध नही करती तब तक गृह-उद्योग धन्धे पनप नही सकते।
किन्तु इतने से ही धन्धे का संगठन पूर्ण नही हो सकता। समिति
को कारीगरो को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से वस्तुये तैयार करने
की शिक्षा दिलानी होगी और उत्तम औजारो तथा यन्त्रो का
प्रचार करना होगा।

यह सब कार्य केवल सहकारी समिति सफलतापूर्वक नही कर

सकती। क्योंकि तैयार माल के बेचने के लिये विज्ञापन देने, बाजार का अध्ययन करने, एजेन्ट तथा कनवैसर भेजने, तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है। जो कि एक समिति की शक्ति के बाहर की बात है। अस्तु, समितियों को एक यूनियन में अपने को संगठित कर लेना आवश्यक है। यूनियन कुछ कर्मचारी रखकर यह सब कार्य करेगी। उदाहरण के लिये यदि बुनकरों की एक यूनियन स्थापित की जावे तो यूनियन बुनाई कला को जानने वाले कुछ ऐसे विशेषज्ञ नौकर रक्खेगी कि जो घूम घूम कर कुछ समय प्रत्येक समिति के सदस्यों को नई डिजाइन का कपड़ा तैयार करना, अच्छे करघे के लाभ, तथा अन्य आवश्यक सुधारों की शिक्षा देंगे। यूनियन विज्ञापन के द्वारा समितियों के कपड़े का प्रचार करेगी, भिन्न भिन्न स्थानों पर स्टोर स्थापित करके कपड़े को बेचने का प्रबन्ध करेगी तथा एजेन्ट और कनवैसर रक्खेगी। यूनियन बाजार का अध्ययन करके समितियों को यह सूचना दिया करेगी कि किस प्रकार के कपड़े की बाजार में अधिक मांग है। समितियां उसी प्रकार के कपड़े को सदस्यों से तैयार कराया करेंगी। यूनियन प्रति वर्ष प्रदर्शनी का आयोजन करेगी। इससे दो लाभ होंगे, एक तो उस क्षेत्र के कारीगर एक दूसरे के काम को देख सकेंगे और प्रतिस्पर्धा की भावना से अपनी उन्नति करेंगे, दूसरे माल का प्रचार होगा। समिति, कच्चा माल व्यापारियों से न खरीद कर, वरन उत्पन्न करने वालों से खरीदकर सदस्यों को

देगी। सदस्यो को कच्चा माल उचित मूल्य पर मिलेगा। तैयार माल सदस्य समिति को दे जावेगा। समिति कुछ रुपया उसी समय सदस्य को देगी। बाकी का माल बिकने पर चुकाया जावेगा। समिति प्रति शत कुछ कमीशन लेगी। वर्ष के अन्त मे जो लाभ होगा वह सदस्यो मे उस अनुपात से बांट दिया जावेगा कि जिस अनुपात मे वे समिति के पास तैयार माल बेचने लावेगे। इस प्रकार उत्पादक सहकारी समितियां गृह-उद्योग-धन्धो का संगठन कर सकती है। यदि हम चाहते है कि ग्रामीय-उद्योग-धन्धो तथा गृह-उद्योग धन्धे पनपें तो हमे उत्पादक सहकारी समितियां स्थापित करनी होगी। योरोप मे इस प्रकार की समितियां अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

**बुनकर समितियां**—भारतवर्ष मे बुनाई का धन्धा अत्यन्त प्राचीन है। किसी समय हमारे बुनकरो की ख्याति संसार भर मे फैली हुई थी और भारतवर्ष मे बना हुआ कपड़ा संसार की अलभ्य वस्तु समझी जाती थी। किन्तु राजनैतिक पतन के साथ ही हमारे धन्धो का भी पतन हो गया और सस्ते विलायती मिलो मे बने हुए कपड़ो ने तो इस धन्धे की कमर ही तोड़ दी। किन्तु इस गये गुजरे जमाने मे भी बुनाई का धन्धा जीवित है। अर्थशास्त्रज्ञो की सम्मति है कि इस गृह-उद्योग धन्धे ने ऐसी प्रतिकूल अवस्था में भी आश्चर्यजनक जीविन शक्ति का प्रदर्शन किया है, इससे यह ज्ञात होता है कि यदि इस धन्धे का ठीक प्रकार से संगठन किया जावे तो यह मिलो की प्रतिद्वंद्वता

मे टिक सकता है। करघो द्वारा बुनाई के धन्धे की महत्ता तो इसी से प्रकट है कि वर्ष भर मे भारतवर्ष मे जितने कपड़े की खपत होती है उसका ४० प्रति शत भारतीय मिलें तैयार करती हैं, ३५ प्रति शत विदेशो से आता है, और २५ प्रति शत करघो पर तैयार होता है।

अनुमान किया जाता है कि भारतवर्ष मे लगभग एक करोड़ बुनकर इस धन्धे मे लगे हुए है। इसमे रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा तैयार करने वाले, तथा दरी और कम्बल तैयार करने वाले सभी सम्मिलित है। अस्तु, यह स्वाभाविक था कि पहले बुनकर सहकारी समितियां स्थापित की जाती। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त मे बुनकर सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। बुनकर सहकारी समितियो की संख्या भिन्न भिन्न प्रान्तो मे ५० से १०० तक हैं; किन्तु किसी किसी प्रान्त मे इससे भी अधिक समितियां स्थापित करदी गई हैं। पंजाब मे लगभग २०० समितियां कार्य कर रही है। किन्तु इन समितियो को सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह है कि बहुत कम स्थानो पर समितियां व्यवसायियो को हटा सकी हैं। अब कुछ स्थानों मे विशेषकर पंजाब में यह प्रयत्न हो रहा है कि समितियों को यूनियन मे संगठित किया जावे, तैयार माल बेचने का आयोजन किया जावे, कारीगरों को औद्योगिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जावे, और तैयार माल को बेचने का आयोजन हो। तब यह समितियां अपने उद्देश्य मे सफल हो सकती हैं।

बुनकर समितियो के अतिरिक्त कुछ फुटकर उत्पादक समितियां भी स्थापित की गई है। किन्तु यह संख्या मे कम हैं। प्रत्येक प्रान्त मे एक या दो चमारो, वढ़इयो, खिलौने वनाने वालो, तथा लकड़ी पर खुदाई का काम करने वालो की समितियां स्थापित करदी गई है। वंगाल मे ६५ समितियां रेशम तैयार करने वालो की है। इसके अतिरिक्त मैसूर, काशमीर, तथा मदरास मे भी रेशमी कपड़ा तैयार करने वालो की कुछ समितियां हैं।

अभी तक उत्पादक सहकारी समितियो को सफलता नही मिली है और न यह आन्दोलन फैल ही रहा है। जब तक ऊपर लिखे अनुसार इन समितियो का पूर्ण सगठन नही होता तथा सरकारी औद्योगिक विभाग इन समितियो को सहायता नही देता तब तक सफलता मिलना कठिन है। औद्योगिक विभाग औद्योगिक परामर्श तथा पूॅजी देकर इन समितियो की सहायता कर सकता है। बिना राज्य की सहायता के हमारे गृह-उद्योग-धन्धो का उद्धार होना कठिन है। यदि औद्योगिक विभाग के द्वारा सरकार इन धन्धो को पूॅजी न देना चाहे तो औद्योगिक वैक खोले जावें, और उनके द्वारा इन धंधो को सहायता दीजावे।

---

# अठारहवां परिच्छेद

## उपभोक्ता स्टोर्स तथा गृह-निर्माण समितियां

मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य उपभोक्ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओ को पूरा करना पड़ता है इस कारण प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ वस्तुओ का उपभोग करना होता है। यदि देखा जावे तो उत्पादन करने वाले, तथा उपभोग करने वालो का घनिष्ट संबध है। एक वर्ग दूसरे वर्ग पर निर्भर है, किन्तु उत्पादन करने वालो तथा उपभोग करने वालो के बीच मे इतने दलाल हैं कि वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते है। दलाल ( अर्थात् व्यापारी ) जो मूल्य उत्पादको को देते है उससे बहुत अधिक उपभोक्ताओ से वसूल करते है। यही नही कि उपभोक्ताओ को वस्तुओ का मूल्य अधिक देना पड़ता है, वरन वस्तुओ मे मिलावट होती है तथा वे अच्छी नही होती। सहकारी स्टोर्स दलालो को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर वस्तुओ के देने मे सफल हुए है।

सर्व प्रथम इंगलैड मे राचडेल नामक स्थान के बुनकरो ने अपनी आवश्यक वस्तुऐ ख़रीदने के लिये सहकारी स्टोर्स चलाया था। इस कारण इन बुनकरो को ही इस आन्दोलन का सूत्रधार माना जाता है। संसार को उपभोक्ता सहकारी स्टोर्स जैसी उपयोगी संस्था देने वाले इन बुनकरो का इतिहास अत्यन्त आकर्षक है।

सन् १८४४ ईसवी मे राचडेल के अट्ठाइस फलालैन बुनने वाले बुनकरो ने जो कि अत्यन्त निर्धन थे, किन्तु जिनमे विश्वास-

धैर्य, साहस, बुद्धिमत्ता कूट कूट कर भरी थी, एक दूकान खोली। इन बुनकरो के पास केवल २८ पौंड पूँजी थी, किन्तु उनमें उत्साह बहुत था जिसके कारण वे सफल हो गये।

इसके पूव राबर्ट ओवन के नेत्रत्व मे कुछ स्टोर्स खुले थे किन्तु वे सब ही असफल हुए। कारण यह था कि यह स्टोर्स वस्तुएं उधार देते थे और उनका मूल्य बाजार से कम रखते थे। राचडेल के बुनकरो ने इस पद्धति को बदल दिया। उन्होंने वस्तुओ को बाज़ार भाव पर बेचना प्रारम्भ किया। और वर्ष के अन्त मे खर्च काट कर जो लाभ होता उसको सदस्यों मे उनकी खरीद के अनुपात से बांट देते थे। स्टोर्स वस्तुएं उधार नही बेच सकता था।

उन २८ बुनकरो ने एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रक्खा। २ पैस प्रति सप्ताह किश्त लेकर पूँजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पांच वस्तुओ को बेचने का प्रबन्ध किया। वे थी मक्खन, शक्कर, ओट (अनाज) का आटा, मोमबत्ती, तथा गेहूँ का आटा। स्टोर्स सौदा उधार नही देता था, किन्तु वस्तुएं शुद्ध तथा तौल मे पूरी होती थी। यदि कभी स्टोर्स को अधिक पूँजी की आवश्यकता होती तो किसी सदस्य से निश्चित सूद की दर पर उधार ले ली जाती। प्रत्येक सदस्य की एक वोट थी। एक तिहाई लाभ सुरक्षित कोष मे रक्खा जाता था, एक तिहाई सदस्यो को बांट दिया जाता था, और एक तिहाई शिक्षा पर व्यय कर दिया जाता था। सदस्यो को उत्साहित किया जाता था कि वे अपने लाभ का हिस्सा स्टोर्स

मे जमा कर दे, इस प्रकार स्टोर की पूँजी बढ़ती गई। सदस्यो की जमा, और हिस्सा पूँजी पर निश्चित सूद दिया जाता है।

राचडेल के बुनकरो ने अपने स्टोर का प्रबन्ध ऐसा अच्छा किया कि शीघ्र ही नये सदस्य बनने लगे तथा स्टोर की उन्नति होने लगी। क्रमशः स्टोर सब आवश्यक वस्तुएं सदस्यो को देने लगा तथा बिक्री बढ़ने लगी। जब बुनकरो ने देखा कि बिक्री बहुत होने लगी तब उन्होने वस्तुओ को उत्पन्न करना शुरू किया। आरम्भ मे स्टोर ने जूते बनाने तथा कपड़े सीने के विभाग खोले और क्रमशः उत्पादन कार्य बढ़ता ही गया। राचडेल स्टोर की आशातीत सफलता देखकर उत्तर इङ्गलैड मे शीघ्र ही बहुत से स्टोर्स खुल गये।

इन स्टोर्स की सफलता देखकर फुटकर विक्रेता चौके और उन्होने इनका विरोध करना शुरू किया। जब फुटकर विक्रेता विरोध मे सफल न हुए तब उन्होने थोक व्यापिरियो पर यह जोर डाला कि वे स्टोर्स को वस्तुएं अधिक मूल्य पर दें। अब सहकारी स्टोर्स के सामने एक नई समस्या उपस्थित हुई। इस समस्या को हल करने के लिये इङ्गलैड तथा स्काटलैड के स्टोर्स ने दो होल-सेल-सोसाइटी स्थापित की। होल्ज़-सेल-सोसायटी थोक व्यापारियो से माल न लेकर सीधे मिलों और कारखानो से माल खरीदकर अपने सदस्य स्टोर्स को बेचने लगी। इस प्रकार थोक व्यापारियों को भी सहकारी आन्दोलन ने अपने स्थान से हटा दिया और उनके लाभ को उपभोक्ताओ के लिये

सुरक्षित कर लिया। इसके उपरांत इङ्गलैंड तथा स्काटलैंड के स्टोर्स ने मिल कर सहकारी यूनियन की स्थापना की। इस यूनियन का मुख्य कार्य विज्ञापन, प्रचार शिक्षा, तथा आन्दोलन की देख रेख करना है।

क्रमशः आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ता गया और स्टोर्स की संख्या बढ़ती ही गई। तब होल-सेल सोसायटियो ने उत्पादन कार्य भी अपने हाथ मे ले लिया।

१८७३ मे इंगलैंड की होल-सेल-सोसायटी ने उत्पादन कार्य करने का निश्चय किया। उसी वर्ष सोसायटी ने मैनचैस्टर स्थिति बिस्कुट तथा अन्य प्रकार की मिठाई बनाने का कारखाना खरीद लिया, कुछ समय के उपरात एक बूट फैक्टरी खोली गई। क्रमशः उत्पादनकार्य उन्नति करता गया तथा दो बूट–फैक्टरिया और खोली गई। इसके उपरांत साबुन, मुरब्बे, मोमबत्ती, कपड़े धोने का पाउडर, फलैनल, मोजे, बनियन, फर्नीचर, कपड़े, बुरुश, तम्बाकू, सिगरेट, आटा, छापेखाने, लोहे, टिन, तेल, तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं बनाने के कारखाने खोले गये। यही नही होल-सेल सोसायटी ने १९२७ मे एक कोयले की खान भी ख़रीद ली।

१८७६ मे होल-सेल-सोसायटी ने अपनी वस्तुओ को लाने तथा लेजाने के लिये जहाज खरीदे। किन्तु हालही मे दो जहाजो को छोड़कर और सब जहाज बेच दिये गये। होल-सेल-सोसायटी ने इंगलैंड मे अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फार्म्स खरीद लिये है।

गेहूँ उत्पन्न करने के लिये सोसायटी ने कनाडा मे दस हज़ार एकड़ से अधिक का एक फार्म ख़रीदा है। पश्चिम अफ्रीका मे भी भूमि ख़रीद ली गई है। होल-सेल-सोसायटी ने जीवन, अग्नि, दुर्घटना, तथा अन्य प्रकार का बीमा करना आरम्भ कर दिया है। इस कार्य के लिये स्काटलैंड तथा इंगलैंड होल-सेल-सोसायटियो ने एक सम्मिलित विभाग खोल दिया है।

इङ्गलैंड की होल सेल सोसायटी, बैंकिंग, गृह-निर्माण, पत्रिका प्रकाशन, तथा बीमारो के लिये स्वास्थ्य-गृह बनाने का कार्य भी करती है।

स्काटलैंड होल सेल सोसायटी ने भी अपने सदस्यो के लिये आवश्यक वस्तुये बनाने के लिये कारखाने चलाये है, तथा भूमि मोल ले कर खेती-बारी करना आरम्भ किया है।

इन दोनो सोसायटियो ने कुछ कार्य सम्मिलित रूप से किये है। इन दोनो सोसायटियो ने ल्यूटन मे कोको का एक कारख़ाना खोला है।

होल सेल सोसायटी के सदस्य-स्टोर्स, सोसायटी के हिस्से खरीदते है। जिस स्टोर्स के जितने सदस्य होते है उसी के अनुपात मे स्टोर्स को हिस्से खरीदने पड़ते हैं। केवल स्टोर्स ही इसके सदस्य बन सकते है। स्टोर्स को माल बाज़ार के थोक भाव से बेचा जाता है। वार्षिक लाभ स्टोर्स मे उनकी ख़रीद के अनुपात मे बांट दिया जाता है। होल सेल सोसायटी ने सदस्य स्टोर्स की सुविधा के लिये शाखाये खोल दी हैं, तथा प्रत्येक प्रमुख व्यापा-

मण्डी मे वस्तुओ को खरीदने के लिये एजैंसिया स्थापित करदी है।

होल सेल सोसायटियो के कारखानो मे मजदूरो की दशा साधारण कारखानो से अच्छी है, और उनको मजदूरी भी कुछ अधिक मिलती है। काम करने के घन्टे भी कुछ कम होते हैं, तथा उनके स्वास्थ्य तथा आमोद प्रमोद का प्रबंध किया जाता है। प्रत्येक मजदूर को वर्ष मे दो सप्ताह की वेतन सहित छुट्टी मिलती है। मजदूरो के लिये प्राविडैंड फंड भी होता है। स्काटलैंड की सोसायटी के कारखानो मे मजदूर, सोयायटी के हिस्से ले सकते है और प्रबंध कारिणी समिति मे उनके भी प्रतिनिध रहते है।

सदस्य-स्टोर्स अपने प्रतिनिध चुन कर होल सेल-सोसायटी की मीटिंग मे भेजते है। यह प्रतिनिध बोर्ड आफ डायरैक्टर्स का चुनाव करते है। भिन्न भिन्न विभागो तथा कारखानो के मैनेजरो की नियुक्त डायरैक्टर करते है। डायरैक्टर लोग भिन्न भिन्न विभागो की देख भाल करते है।

**भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर्स**—भारतवर्ष मे सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स असफल रहे है। भारतवर्ष मे कही कही यदि एक या दो स्टोर्स सफल दृष्टि गोचर होते है तो आन्दोलन सफल नही कहा जा सकता। इन स्टोर्स की सफलता का कारण इनकी स्थानीय परिस्थिति मे छिपा हुआ है। अधिकतर कालेजो तथा रेलवे के स्टोर्स सफल हुये है। इन स्टोर्स को दूकानदारो से प्रतिस्पर्धा नही करनी पड़ती तथा उन्हे बहुत सी अन्य सुविधाएं प्राप्त होती है।

भारतवर्ष मे यह अन्दोलन योरोपीय महायुद्ध के बाद बहुत बढ़ा। कारण यह था कि उस समय सरकार ने भोज्य पदार्थों का नियन्त्रण अपने हाथ मे ले लिया था किन्तु जैसे ही यह नियन्त्रण हटा स्टोर्स की संख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर्स बंद हो गये और बहुतो का दिवाला निकल गया।

इन स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते है। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीजे बेचने के लिये खोला गया है, फल यह होता है कि जब बाजार भाव सस्ता होने लगता है तो स्टोर्स की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है, और सदस्य स्टोर्स से चीजे न खरीद कर दूसरे दूकानदारों से खरीदने लगते है। स्टोर्स फेल हो जाता है।

सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुओं को बाजार भाव पर बेचा जावे। किन्तु चीजे अच्छी हो और तौल से पूरी दी जावे। असफलता का दूसरा मुख्य कारण है सौदा उधार देना। सौदा उधार देना स्टोर तथा सदस्य दोनो के लिये हानिकारक है। सदस्य को ऋण लेने की आदत पड़ जाती है। जब वह दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उधार लेने लगता है तो वह व्यर्थ के कामो मे रुपया फेकने लगता है। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियो से माल उधार लेना पड़ता है।

इन स्टोर्स का प्रबंध भी ठीक नहीं रहता है और

अधिक होता है यह भी उनकी असफलता का मुख्य कारण है।

**मदरास का ट्रिप्लीकेन स्टोर**—भारतवर्ष मे केवल ट्रिपलीकेन सहकारी स्टोर ने बड़ी मात्रा मे काम करके आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त की है। यही एक बड़ा स्टोर ऐसा है जिसे हम पूर्ण रूप से सफल कह सकते है। यह स्टोर ६ अप्रेल १६०४ मे खोला गया। आरम्भ मे दो कर्मचारी रक्खे गये, एक मैनेजर दूसरा बेचने वाला, दोनो का वेतन आठ रुपया मासिक था। स्टोर के जन्मदाताओ ने अपना बहुत सा समय स्टोर की देख भाल मे देना शुरू किया। जहां तक होता व्यय कम किया जाता था। १६०५ मे स्टोर रजिस्टर कर लिया गया। अभी तक साधारण जनता इसको केवल खिलवाड़ समझती थी किन्तु जब उन्होने एक स्टोर को चलते देखा तब लोग प्रभावित हुये और सदस्यो की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। आज ट्रिपलीकेन स्टोर की २५ शाखाये कार्य कर रही है। उन मे ६ के पास अपनी निजी इमारत है, बाक़ी किराये की इमारतो मे काम करती है। १६२६ मे स्टोर ने ११९५१२८ रुपये की चीजे बेची। २५ जनवरी १६३० को स्टोर की जुबली मनाई गई। उस अवसर पर जुबली हाल की नीव मदरास गवर्नर ने डाली थी। इस हाल के बनवाने मे स्टोर ने लगभग २५ हजार रुपये व्यय किये है।

१६२५ मे ट्रिपलीकेन स्टोर के ५७८१ सदस्य थे, स्टोर की चुकाई हुई पूँजी ( paid up capital ) एक लाख से कुछ

अधिक थी। स्टोर के पास दो लाख से अधिक की डिपाज़िट थी। १६२६ मे सुरक्षित कोप मे ८४ हज़ार रुपये जमा थे तथा एक दूसरा फंड भी खोला गया है जिसमे लगभग ४० हज़ार रुपये जमा है। स्टोर मे लगभग १४० कर्मचारी काम करते है जिनका वार्षिक वेतन ४५,००० हजार रुपये के लगभग होता है। स्टोर तथा उसकी शाखाओ के साथ एक वाचनालय भी रहता है। स्टोर अनाज, चांवल, गुड़ शक्कर, तेल, मसाला, सूखे फल, चाय, कहवा, साबुन, तथा कुछ पेटैन्ट औषधियां बेचता है।

मैसूर :—मैसूर मे स्टोर आन्दोलन कुछ सफल हुआ है। इन मे बंगलोर का स्टोर उल्लेखनीय है, यद्यपि यह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। इसके अतिरिक्त अन्य स्टोर अधिकतर रेलवे, मिलो तथा आफिसो के कर्मचारियो के लिये हैं और अधिकारियो के संरक्षण मे कार्य कर रहे है। मैसूर मे स्टोर सौदा उधार भी दे देते है।

बम्बई:—बम्बई मे स्टोर आन्दोलन असफल रहा, इसका मुख्य कारण यह है कि परचूनी की दूकाने बम्बई मे अत्याधिक है। इस कारण थोक तथा फुटकर मूल्य मे कम अन्तर है। दूकानदार घर पर सामान पहुंचा देता है, और मास के अन्त मे हिसाब कर ले जाता है। इन दूकानदारो से प्रतिस्पर्धा करना कठिन है क्योकि इनका खर्चा बहुत कम है।

संयुक्त प्रान्त :—संयुक्त प्रान्त मे केवल चार स्टोर्स कार्य कर रहे हैं उनमे तीन की दशा अत्यन्त शोचनीय है।

मदरास मे ट्रिपलीकेन के अतिरिक्त अन्य ६० स्टोर कार्य कर रहे है। मैसूर मे ७०, बंगाल मे ६०, बम्बई मे ३५, पंजाब मे २० आसाम मे लगभग २०, तथा मध्य प्रान्त मे २०। किन्तु यह सब स्टोर असफल ही रहे हैं।

स्टोर की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सदस्य स्टोर के प्रति अपना कर्तव्य समझें। प्रबंध कारिणी समिति के सदस्य अपना समय स्टोर के प्रबंध मे लगावे, तथा व्यय जहा तक हो कम किया जावे। किन्तु सब से आवश्यक बात यह है कि सौदा उधार न दिया जावे।

---

## सहकारी गृह निर्माण समितियां।

भारतवर्ष मे सहकारी गृह निर्माण समितियां केवल बम्बई प्रान्त मे पाई जाती हैं। गृह निर्माण समितियां दो प्रकार की होती है। एक प्रकार की समितियां तो वह होती है जिनमे व्यक्ति मकान मालिक होता है। दूसरे प्रकार की समितियां वह होती है जिनमे समिति सामूहिक रूप से मकानो की मालिक होती है।

**व्यक्तिगत स्वामित्व वाली समितियां**—पहले प्रकार की समितियां भी दो प्रकार की होती है। एक तो स्थायी दूसरी अस्थायी।

अस्थायी—अस्थायी गृह निर्माण समितियां वह है जो कि

एक निश्चित संख्या मे सदस्य बनाती हैं। प्रत्येक सदस्य को मासिक या सप्ताहिक चन्दा देना होता है। नया सदस्य नही बनाया जाता। यदि कोई सदस्य समितिको छोड़दे तो उसके स्थान पर नया सदस्य लिया जा सकता है। जब चन्दा जमा होजाता है तब लाटरी डालकर रुपया एक सदस्य को दे दिया जाता है और उस का मकान बनजाता है। मकान समिति के पास गिरवी रहता है और सदस्य सूद सहित ऋण किश्तो मे चुकाता रहता है। इसी प्रकार सब सदस्यो के मकान तैयार होजाते है। समिति उस समय तक नही तोड़ी जाती जब तक कि सबकी किश्तें न चुकजावे। सब ऋण चुक जाने पर रुपये का हिसाब किया जाता है तथा लाभ को बांटकर समिति तोड़ दी जाती है।

**स्थायी समिति**--स्थायी समिति मे सदस्यो की संख्या निश्चित नही होती। सदस्यो को समिति के हिस्से खरीदने पड़ते है। समिति डिपज़िट लेती है तथा ऋण भी लेती है। समिति नये सदस्य बनती जाती है और जैसे जैसे रुपया मिलता जाता है सदस्यो को ऋण देती है। कुछ बड़ी समितियां इंजीनियर, सर्वे करनेवाले तथा अन्य कर्मचारियो को नौकर रखती है जो कि सदस्यो को परामर्श देते है। सदस्यो को इस सहायता के लिये एक निश्चित फीस देनी पड़ती है। सदस्यो को मकान के ऊपर ऋण दिया जाता है और एक निश्चित समय मे रुपया चुका देना पड़ता है। समिति मकान की लागत का तीन चौथियाई ऋण देती है, एक

चौथियाई सदस्य को लगाना पड़ता है। प्रत्येक इमारत का बीमा कराया जाता है। बीमा समिति के नाम होता है।

कुछ समितियां मकान स्वयं बनवाती है। सदस्यो की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुये मकान बनवाये जाते है। सदस्य उन मकानो मे किरायेदारो की तरह रहते है। सदस्य यदि चाहे तो प्रति मास किराये के अतिरिक्त कुछ रुपया मकान के मूल्य को चुकाने के लिये दे सकते है। जब मकान का मूल्य चुक जाता है तब मकान सदस्य का हो जाता है। किन्तु इस प्रकार वही समितियां मकान बना सकती है कि जिनके पास यथेष्ट पूँजी हो। इङ्गलैंड के उपभोक्ता स्टोर तथा फ्रैंडली सोसायटिया अपनी बेकार पूँजी को मकानो मे लगा देती है।

इस प्रकार की समितियो का, कि जिनमे सदस्य मकान का मालिक हो जाता है एक बड़ा दोष यह है कि सदस्य को यह अधिकार हो जाता है कि यदि सदस्य चाहे तो मकान को बेच दे। इसका फल यह होता है कि समितियो द्वारा बनाये हुये मकान ऐसे लोगो के पास पहुँच जाते है जो कि उनको बेचकर लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। इस दोष को दूर करने के लिये बम्बई मे एक नवीन योजना काम मे लाई गई है।

इस योजना मे समिति बहुतसी भूमि या तो पट्टे पर लेती है या फिर मोल ले लेती है। समिति उस भूमि पर सड़के बनाती है, फिर भूमि को छोटे छोटे प्लाटो मे बांट देती है। यह प्लाट सदस्यो

मे बांट दिये जाते हैं। कुछ भूमि सार्वजनिक हित के लिये समिति अपने हाथ मे रखती है। उदाहरण के लिये पार्क, वाचनालय, खेलने के लिये तथा अन्य ऐसे ही कार्यों के लिये भूमि रखली जाती है। यदि समिति ने भूमि पट्टे पर ली है तो सदस्य को प्लाट समिति के पट्टे से एक साल कम के पट्टे पर मिलेगा। यदि समिति ने भूमि मोल ली है तो सदस्य को ९९९ साल के पट्टे पर प्लाट दिया जाता है। सदस्य को प्लाट इस शर्त पर मिलता है कि जब कभी वह भविष्य मे मकान अथवा प्लाट को बेचे तो खरीदने का पहिला अधिकार समिति को, अथवा समिति जिस सदस्य के लिये कहे, उसको होगा। प्रान्तीय सरकार इस प्रकार को, समितियो के सदस्यो को उनकी दी हुई पूँजी से दुगना ऋण देती है। किन्तु किसी एक सदस्य को १०,०००) रु० से अधिक ऋण नही दिया जा सकता। सदस्य को २० साल मे ऋण चुका देना पड़ता है। समिति या तो स्वयं मकान बनाती है अथवा निर्धारित प्लाट पर सदस्यो को मकान बनाने देती है। जब मकान बन जाते है तो समिति उस छोटे से उपनिवेश की म्यूनिसपैल्टी का कार्य करती है।

**सामूहिक स्वामित्व वाली समितियां**— इस प्रकार की समिति एक बड़ा प्लाट खरीदती है और उस पर सदस्यो की आवश्यकतानुसार मकान बनाती है। सदस्य मकानो मे किराये-दारो की भांति रहते है। सदस्यो को मकान की लागत का $\frac{1}{5}$ से लेकर $\frac{1}{3}$ तक पूँजी, समिति को देनी होती है। बाकी की पूँजी

समिति इमारतो की जमानत पर डिबैंचर बेच कर इकट्ठी करती है। इंगलैंड मे इन समितियो के डिबैंचर जनता खूब खरीदती है। किन्तु भारतवर्ष मे ऐसा नही है। इस कारण प्रान्तीय सरकार समितियो को ५॥ प्रति शत सूद पर ऋण दे देती है। १६१७ मे भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पास करके प्रान्तीय सरकारो को गृह-निर्माण-समियो को ऋण देने का अधिकार दे दिया।

इस प्रकार की समितियो मे समिति ही इमारतो की मालिक होती है। सदस्य ही समिति को चलाते है इस कारण उनसे अधिक किराया नही लिया जा सकता। मकानो का किराया, एक निश्चित सिद्धान्तपर निश्चित किया जाता है। यदि कोई सदस्य चाहे तो नोटिस देकर मकान छोड़ सकता है। समिति वह मकान किसी दूसरे सदस्य को दे देती है। नया सदस्य जो पूँजी देता है वह जाने वाले सदस्य को दे दीजाती है।

बम्बई मे सबसे पहले सारस्वत सहकारी गृह-निर्माण समिति स्थापित हुई। समिति ने इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्टसे ६६६ साल के पट्टे पर भूमि लेकर इमारते बनवाई। यह समिति सामूहिक स्वामित्व वाली है। सदस्यो ने एक तिहाई पूँजी दी, तथा बाकी ऋण लिया गया। मकानो का किराया निर्धारित करते समय रैन्ट, टैक्स, रेट्स, अग्नि बीमा, मरम्मत, पूँजी पर सूद, तथा सिंकिंग-फंड इत्यादि सब खर्चों का हिसाब लगाया जाता है।

(सिंकिंग फंड इस लिये आवश्यक होता है कि ८० या १०० वर्षों के उपरान्त जब इमारतो को फिर से बनवाना पड़ेगा तब

पूंजी कहां से आवेगी। अस्तु, इमारतो की लागत का ½ प्रति शत एक फंड मे जमा करदिया जाता है जो कि इकट्ठा होता रहता है। प्रान्तीय सरकार ने ऋण देने के अतिरिक्त लैंड ऐक्युज़िशन ऐक्ट मे संशोधन करके सहकारी समितियो को अपने लिये भूमि पाने की सुविधा प्रदान करदी है।

बम्बई प्रान्त मे ६७ गृह निर्माण समितियां हैं, इनकी कार्य-शील पूंजी लगभग ६३ लाख है। इनमे २३ बम्बई तथा उसके सब-अर्ब मे हैं, १६ अहमदाबाद मे, ६ करांची मे तथा बाक़ी अन्य स्थानो मे हैं।

बम्बई मे जब गृह निर्माण समितियो की स्थापना होगई तब दूसरे प्रांतो मे भी यह आन्दोलन आरम्भ हुआ। मदरास मे १३० समितियां कार्य कर रही है जिनकी कार्यशील पूंजी लगभग ४० लाख रुपया है। बम्बई तथा मदरास को छोड़कर दूसरे प्रांतो मे एक या दो समितियो से अधिक स्थापित नहीं हुई है। हां, देशी राज्यो मे मैसूर मे अवश्य १८ समितियां है किन्तु यह समितियां केवल गृह निर्माण कार्य के लिये ऋण देती है।

लाहौर मे एक माडैल टाऊन समिति स्थापित की गई है। समिति के ६०० से ऊपर सदस्य हैं, लगभग ३३ लाख के लग-भग कार्यशील पूंजी है, १०० के ऊपर गृह निर्माण होचुके है। समिति ने एक क्लब, ८ मील के लगभग सड़क, एक ट्यूब वैल, एक औषधालय, तथा एक स्कूल भी बनाया है। लाहौर तथा

उस माडैल टाऊन के बीच मोटर लारी भी चलाई गई है । यह समिति बड़ी मात्रा मे गृहनिर्माण कार्य कर रही है।

**ग्रामीण गृहनिर्माण समितियां**—१९२७ मे जो भयंकर बाढ़ गुजरात तथा सिन्ध मे आई, उसमे बहुत से गांव बह गये। इन उप-प्रान्तो मे गांवो को फिर से बसाने के लिये गृह-निर्माण समितियां स्थापित की गई है। प्रान्तीय सरकार ने समितियो को ऋण देना स्वीकार करलिया है । समितियां व्यक्तिगत स्वामित्व वालो होती है और १५ या २५ वर्ष बाद तोड़दी जावेगी। सरकार समिति की पूँजी का ८० प्रति शत ऋण दो साल के लिये बिना सूद के देगी, तदुपरान्त ४ प्रति शत सूद लिया जावेगा । इन समितियो मे लाभ बांटा नही जा सकता, केवल सुरक्षित कोप मे जमा किया जाता है जो कि समिति के टूटने पर सार्वजनिक कार्यों मे व्यय कर दिया जावेगा। इसी प्रकार की कुछ समितिया मदरास के मालाबार प्रदेश मे भी स्थापित की गई है। सिन्ध में २५ गृह-निर्माण समितियां कार्य कर रही है और इतनी ही गुजरात मे है।

इङ्गलैंड तथा अन्य पश्चिमी देशो मे उपभोक्ता स्टोर तथा गृह-निर्माण समितियां अधिकतर मिल मज़दूरो के लिये स्थापित की गई है। किन्तु अभी तक भारतवर्ष मे कोई समिति मज़दूरो के लिये नही खोली गई है।

---

# उन्नीसवां परिच्छेद

## सहकारी शिक्षा, निरीक्षण तथा प्रचार।

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन को भारतीय सरकार ने चलाया, दूसरे देशो की भांति इस देश मे यह आन्दोलन जनता ने स्वयं नही चलाया। कारण यह था कि भारतीय जनता विशेष कर किसान अशिक्षित, तथा कर्ज़दारी के बोझ से ऐसा दबा हुआ है कि उसको अपने आर्थिक सुधार की आशा ही नही रही। ऐसी दयनीय दशा मे आत्मनिर्भरता तथा स्वावलम्बन के भाव ग्रामीण जनता मे से लुप्त हो चुके थे, इस कारण राज्य को ही इस आन्दोलन का श्रीगणेश करना पड़ा।

जब राज्य ने इस आन्दोलन को अपने हाथ मे लिया तो यह स्वाभाविक था कि रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा हो जावे। आरम्भ मे रजिस्ट्रार को आन्दोलन चलाने के लिये प्रचार कार्य, समितियो का संगठन, उनकी देख भाल, निरीक्षण, आय-व्यय निरीक्षण, सहकारिता आन्दोलन से संबंध रखने वाले साहित्य का अध्ययन, जनता मे आन्दोलन के विषय मे रुचि उत्पन्न करना, अपने अधीनस्थ कर्मचारियो का शिक्षण, तथा अन्य प्रान्तो मे आन्दोलन की गति विधि का अध्ययन करने का कार्य और आन्दोलन समितियो के लिये पूँजी जुटाने का काम भी करना पड़ता था। यदि समिति तथा उसके सदस्यों मे कोई झगड़ा हो तो उसका फैसला रजिस्ट्रार ही करता,

तथा समिति की दशा खराब हो जाने पर वही उसको तोड़ता तथा 'लिक्यूडेटर' बनता था।

जैसे जैसे आन्दोलन बढ़ता गया इस बात का अनुभव होने लगा कि रजिस्ट्रार इतने कार्यों को भली भांति नही कर सकता। यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि रजिस्ट्रार के बोझ को कुछ हलका कर दिया जावे तथा आन्दोलन को क्रमशः जनता के हाथ मे दे दिया जावे। अस्तु, सैन्ट्रल बैक तथा प्रान्तीय बैको के स्थापित होते ही पूॅजी जुटाने का कार्य रजिस्ट्रार के हाथ से निकल गया।

सहकारिता आन्दोलन जनता का आन्दोलन है और इस आन्दोलन को बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी होना चाहिये। समितियो को डिपाजिट आकर्पित करके कार्य-शील पूॅजी इकट्ठी करनी चाहिये। प्रबंध कारिणी समिति को समिति की देख भाल करना चाहिये। समितियो की सम्मिलित यूनियन को आय-व्यय निरीक्षण करना चाहिये, तथा सहकारिता की शिक्षा भी यूनियन को देनी चाहिये। रहा प्रचार कार्य, उसके लिये सफलता पूर्वक कार्य करती हुई सहकारी समिति ही सर्वोत्तम साधन है। किन्तु भारतवर्ष मे अशिक्षा, तथा रूढ़ियो मे फंसे हुये भाग्यवादी ग्रामीण जन यह कार्य नही कर सकते थे। इस कारण यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि जो कार्य कि एक समिति नहीं कर सकती वह यूनियन करे। इस उद्देश्य से भारत-वर्ष मे भिन्न भिन्न कार्यों को करने के लिये यूनियन स्थापित की

गई :— गारंटी देने वाली यूनियन, तथा सुपरविजन ( देख भाल करने वाली ) यूनियन ।

**गारंटी यूनियन**—यद्यपि गारंटी देने वाली यूनियन देख भाल का भी कार्य करती है किन्तु इसका मुख्य कार्य सैन्ट्रल बैंक को अपनी सहकारी समितियो को दिये हुए ऋण की गारंटी देना है, इस कारण इसको गारंटी यूनियन कहते है । सहकारी साख समितियां मिलकर एक गारंटी यूनियन की स्थापना करती है। जो भी समिति यूनियन की सदस्य बनती है उसको अपनी साधारण सभा की बैठक मे इस आशय का प्रस्ताव पास करना पड़ता है कि यदि कोई समिति अपना ऋण नही चुका पावेगी तो समिति उस दिवालिया समिति के ऋण को चुकाने की गारंटी देगी । समिति कितना रुपया चुकाने की गारंटी दे, इसका निश्चय भी साधारण सभा करती है। इस प्रकार यूनियन से संबंधित प्रत्येक समिति एक निश्चित रक़म की गारंटी देती है और यह सब मिला कर यूनियन की गारंटी होती है। यदि गारंटी यूनियन की कुल गारंटी ५००० रु० है तो सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन उसका ६ गुना अर्थात् ३०,००० रु० से अधिक उन समितियो को नहीं देगी। किन्तु यह आवश्यक नही है कि किसी एक समिति को उसकी गारंटी से ६ गुने से अधिक न दिया जावे । समितियों को उनकी आवश्यकता तथा उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार अधिक भी दिया जा सकता है। समिति की साख का अनुमान सैन्ट्रल बैंक प्रति वर्ष करता है और उसी के अनुसार ऋण दिया

जाता है किन्तु समिति को गारंटी से १२ गुने से अधिक ऋण नही दिया जाता।

सर्व प्रथम गारंटी यूनियन बर्मा मे स्थापित की गई। इसके उपरान्त बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बरार, मध्य प्रान्त, बंगाल, तथा बिहार उड़ीसा मे भी इनका प्रयोग किया गया किन्तु वे असफल हुई। इन कारण वे क्रमशः टूट गई और आगे फिर इन प्रान्तो मे इस प्रकार की यूनियन स्थापित नही की गई और न अन्य प्रान्तो तथा देशी राज्यो ने ही इन्हे अपनाया। जब कि साख समितिया अपरिमित दायित्व वाली होती है और बैंक उनके सदस्यो की हैसियत की जांच के उपरान्त साख निर्धारित करते है तब बैंक को कोई जोखिम नही रहती और न गारंटी की ही आवश्यकता रहती है। दूसरा दोष गारंटी यूनियन का यह है कि यदि कोई समिति अपना ऋण नही चुकाती तो जब तक कि उस समिति को या तो दिवालिया बना कर अथवा उसको फिर से संगठित करके उसका हिसाब ठीक नही कर दिया जाता तब तक बैंक किसी भी समिति को ऋण नही देता। समिति को लिक्यूडेट करने मे कभी कभी बहुत समय लग जाता है, इस कारण कभी कभी कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है।

इन्ही कारणो से यह यूनियन सफल नही हुई। केवल अपने जन्म स्थान बर्मा मे वे कार्य करती रही। विद्वानो की सम्मति से बर्मा मे सहकारिता आन्दोलन को जो भयंकर असफलता मिली हैं उसमें इन गारंटी यूनियन्स का भी हाथ है।

**सुपरवाइज़िंग यूनियन (देख भाल करने वाली यूनियन)**—सुपरवाइजिंग यूनियन निम्न लिखित कार्य करती है:—ग्रामीय सहकारी समितियो की देख भाल करना तथा उनको उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र मे नई सहकारी समितियों का संगठन करना तथा उनकी उन्नति करना, अपने से संबंधित समितियो की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, तथा उनके सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करके समिति की साख को निर्धारित करना, समितियो को उनके प्रबन्ध के विषय मे तथा कार्य संचालन के विषय मे उचित परामर्श देना, समिति के सदस्यो तथा उनके पंचायतदारों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबंध करना, समितियो को यदि आवश्यकता हो तो क्रय विक्रय कार्य मे सहायता देना तथा समिति और सैन्ट्रल बैंक के बीच मे संबंध स्थापित करना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से संबंधित समितियां अपने प्रतिनिधियो को यूनियन की साधारण सभा मे भेजते है। यूनियन की साधारण सभा एक कार्य कारिणी समिति का निर्वाचन करती है, इस समिति पर उस क्षेत्र के सैन्ट्रल बैंक का भी एक प्रतिनिधि रहता है। यह सामति सारा प्रबंध करती है और सहकारी समितियो की देख भाल के लिये एक सुपरवाइजर नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति को अपनी कार्यशील पूँजी के अनुपात में यूनियन को चन्दा देना होता है। सैन्ट्रल बैंक भी यूनियन को को आर्थिक सहायता देते हैं।

यद्यपि इन यूनियनो को चलाने में कुछ व्यय अवश्य होता है किन्तु आन्दोलन को सफल बनाने के किये यह आवश्यक हैं। ग्रामीण सहकारी समितियों का संगठन करने तथा उनको सबल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि कोई उनकी देख भाल करे तथा उनको उचित परामर्श देता रहे।

मदरास प्रान्त मे ४०० से ऊपर यूनियन देख भाल कर रही है। एक यूनियन एक ताल्लुके से बडे क्षेत्र ने कार्य नहीं करती। २० से ४० समितियां तक एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मदरास मे यूनियनो ने जिला सघ बना लिये है। जिले मे जितनी यूनियन होती है उनका एक संघ बनाया जाता है जो कि यूनियन की देख भाल करते है।

संयुक्त प्रान्त मे कोई सुपरवाइजिग यूनियन नहीं है, बड़ौदा से केवल दो यूनियन है, ट्रावंकोर मे २० से ऊपर यूनियन देख भाल का कार्य कर रही है। बिहार मे दो प्रकार की यूनियन है, एक तो आय व्यय निरीक्षण करती है दूसरी देख भाल करती है, कुर्ग मे लगभग एक दर्जन यूनियन है, वे अधिक सफल नहीं हुई है। बम्बई मे इस प्रकार की यूनियन सफलता पूर्वक कार्य कर रही है वहां यह प्रयत्न किया जारहा है कि प्रान्त मे कोई ग्रामीय सहकारी साख समिति ऐसी न रहे जो किसी न किसी यूनियन से सम्बन्धित न हो। ऐसी आशा की जाती है कि शीघ्र ही वहां प्रत्येक समिति यूनियन से सम्बन्धित हो जावेगी। पंजाब

मे भी कोई यूनियन नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि पंजाब मे जहां सहकारिता आन्दोलन सबसे अधिक सफल हुआ है, वहां यूनियन स्थापित नही की गई। किन्तु वहां यह कार्य प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट करती है।

**अवैतनिक कार्य कर्ता**—प्रचार कार्य के लिये गैर सरकारी अवैतनिक कार्यकर्ता नियुक्त किये गये। जिन सज्जनो को इस आन्दोलन से प्रेम तथा सहानिभूति थी, उन्हे आरगैनाइजर नियुक्त कर दिया गया। अवैतनिक कार्य कर्ताओ का मुख्य कार्य नवीन समितियो का संगठन करना तथा पुरानी समितियो की देख भाल करना है। नई समितियो के संगठन का कार्य सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी भी करते है किन्तु प्रचार कार्य तथा संगठन कार्य मे भेद है। अवैतनिक कार्य कर्ता रजिस्ट्रार अथवा डिपटी रजिस्ट्रार की अधीनता मे कार्य करते हैं। कुछ दिनो के उपरान्त यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि प्रचार कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये इसको संगठन कार्य से पृथक कर दिया जावे। इसी उद्देश्य से प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट स्थापित की गई। यद्यपि इन प्रान्तीय सहकारी संस्थाओ के भिन्न भिन्न प्रान्तो मे भिन्न भिन्न नाम हैं, तथा उनके कार्यों में भी भिन्नता है, किन्तु सहकारिता का प्रचार करना उनका मुख्य कार्य है।

बम्बई मे प्रान्तीय सहकारिता इंस्टिट्यूट है; पंजाब, मदरास तथा संयुक्तप्रान्त मे प्रान्तीय सहकारिता यूनियन हैं, बंगाल और

आसाम मे प्रान्तीय कोआपरेटिव आरगैनीजेशन सोसायटी है, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त तथा बरार प्रान्तीय कोआपरेटिव फैडैरेशन और बर्मा मे कोआपरेटिव काऊंसिल है।

इनमे कुछ तो स्वतन्त्र संस्थाये है जो कि अपनी शाखाओ के द्वारा प्रचार कार्य करती है और कुछ समितियो की यूनियन है जो कि समितियो की ओर से कुछ कार्य करती है, तथा कुछ समितियो के संघ है। इस प्रकार सहकारिता आन्दोलन का कार्य तीन संस्थाओ के द्वारा हो रहा है। रजिस्ट्रार तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारी शासन कार्य करते है। सैन्ट्रल तथा प्रान्तीय संस्थाये प्रचार करती है।

रजिस्ट्रार को अब भी सुपरविजन, निरीक्षण, आय व्यय निरीक्षण, पंचायत, शिक्षा, तथा लिक्यूडेशन का कार्य करना पड़ता है। किन्तु निरीक्षण कार्य तो बहुत कुछ सैन्ट्रल बैको को देदिया गया है। आय व्यय निरीक्षण का कार्य रजिस्ट्रार अपने स्टाफ से करवाता है किन्तु पंजाब संयुक्त प्रान्त तथा बिहार उड़ीसा मे यह कार्य प्रान्तीय संस्थाये करती हैं। ४ तथा ५ अप्रेल १६३१ को हैदराबाद ( दक्षिण ) मे होने वाली अखिल भारत-वर्षीय सहकारिता सम्मेलन मे इस आशय का एक प्रस्ताव पास हुआ कि आय व्यय निरीक्षण तथा सुपरविजन का कार्य आडिट यूनियन, प्रान्तीय इंस्टिट्यूट के अधीन करें। सहकारिता की शिक्षा देने का कार्य अभी तक रजिस्ट्रार ही करता है, किन्तु कुछ

प्रान्तो मे वह यह कार्य इंस्टिट्यूट के सहयोग से करता है, बंबई मे तो यह कार्य प्रान्तीय इंस्टिट्यूट को ही सौप दिया गया है।

प्रान्तीय सहकारी संस्थाओ का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे क्रमशः इस आन्दोलन को अधिकारी वर्ग के हाथो से निकाल कर जनता का आन्दोलन बनादे।

---

## प्रान्तीय सहकारी संस्थायें

बम्बई:—बम्बई प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट के निम्न लिखित मुख्य कार्य हैं:—(१) शिक्षा, (२) प्रचार, (३) सुपरविज़न, (४) सुधार कार्य, (५) जनता की आन्दोलन के संबंध मे सम्मति प्रकट करना। समितियां तथा व्यक्ति दोनो ही इसके सदस्य हो सकते हैं। सदस्यो के चन्दे के अतिरिक्त सरकार से ३०,००० रु० वार्षिक सहायता इंस्टिट्यूट को मिलती है। कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्यूनिसिपल बोर्ड भी इंस्टिट्यूट को आर्थिक सहायता देते हैं। इंस्टिट्यूट की प्रत्येक जिलेमे शाखाएें हैं। इंस्टिट्यूट ने एक शिक्षा बोर्ड नियुक्त कर दिया है जिसकी देख रेख मे प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानो पर स्कूल खोले गये हैं जिनमे सहकारिता की शिक्षा दी जाती है। (सूरत, पूना, धारवार)। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी तथा देशी भाषाओ मे त्रैमासिक पत्रिकाएं प्रकाशित की

जाती हैं। प्रचार कार्य,जिला तथा डिवीजनल कार्यकर्त्ता शाखाओं की सहायता से करते है। इंस्टिट्यूट ने गृह-निर्माण तथा विक्रय समितियो की स्थापना की है, वह ग्राम सुधार कार्य के लिये आर्थिक सहायता देती है। इंस्टिट्यूट का प्रबंध करने के लिये दो समितियां है:—कांऊसिल जिसमे रजिस्ट्रार के १० मनोनीत सदस्य रहते है और कार्य कारिणी जिस मे रजिस्ट्रार के दो प्रतिनिधि रहते है।

पंजाब—पंजाब मे प्रान्तीय कोआपरेटिव यूनियन है इसका मुख्य काम प्रचार, शिक्षा, आय व्यय निरीक्षण तथा सुपरविजन ( देख भाल ) करना है। रजिस्ट्रार इसका सभापति होता है। यूनियन आय व्यय निरीक्षण तथा देख भाल का कार्य अपने कर्मचारियो से कराती है जिनकी संख्या लगभग ५०० है। प्रचार का काम इन्सपैक्टर करते है। यूनियन एक मासिक पत्र उर्दू मे निकालती है। इसके अतिरिक्त सिनेमा, मैजिक लैन्टर्न, व्याख्यान प्रदर्शन करने वाली ट्रेन, तथा पुस्तको को प्रकाशित करके प्रचार करती है। यूनियन प्रान्तीय सम्मेलन का भी आयोजन करती है। यूनियन को आडिट फीस मिलती है तथा प्रान्तीय सरकार अर्थिक सहायता देती है।

मदरास—मदरास यूनियन के मुख्य कार्य प्रचार, नई तथा विशेष प्रकार की समितियो को स्थापित करना, तथा सुपरवाइजिग यूनियन की सहायता करना है। यूनियन अंग्रेजी मे सहकारिता विषयक मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है, पंचायतदारो

की शिक्षा का प्रबंध करती है, सहकारिता के सिद्धान्त का प्रचार करती है, ग्राम संगठन केन्द्र चलाती है, तथा प्रान्तीय सहकारिता सम्मेलन का आयोजन करती है। ग्राम संगठन केन्द्रो का व्यय उस क्षेत्र का सैन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंक देता है। प्रत्येक ग्राम संगठन केन्द्र पर २००० रु० वार्षिक व्यय होता है। मदरास सरकार यूनियन को केवल १२०० रु० वार्षिक सहायता देती है।

बिहार-उड़ीसा में प्रान्तीय फैडरेशन है। प्रत्येक समिति अपना प्रतिनिधि कांग्रेस मे भेजती है जिसका वार्षिक अधिवेशन होता है। प्रांत को पांच डिवीजनो मे बांटा गया है। प्रत्येक डिवीजन मे एक बोर्ड स्थापित किया गया है। प्रचार कार्य के लिये प्रत्येक डिवीजन मे पांच कर्मचारी रक्खे गये है। प्रत्येक समिति को तथा सैन्ट्रल बैंक अपनी कार्य-शील पूंजी के अनुपात से फैडरेशन को चन्दा देना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार भी लगभग १०,००० रु० वाषिक सहायता देती है। सहकारिता की शिक्षा देने के लिये इंस्टिट्यूट स्थापित की गई है। फ़ैडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्रिका ( बिहार सहयोग ) तथा एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करती है।

बंगाल—बंगाल मे सहकारी आरगैनीजेशन सोसायटी है, यह प्रान्तीय संस्था अपने से सम्बन्धित समितियो की देख भाल करती है, दो पत्रिकाऐ प्रकाशित करती है, कलकत्ते मे एक पुस्तकालय चलाती है। व्याख्यान दाताओ को ज़िलो मे भेज कर

प्रचार कार्य करती है, प्रान्तीय सम्मेलन का आयोजन करती है, तथा कर्मचारियों की शिक्षा का प्रबन्ध करती है।

संयुक्त प्रान्त—यहां प्रान्तीय सहकारी यूनियन है, जिसका सभापति रजिस्ट्रार होता है, सैन्ट्रल बैंक तथा सहकारी समितियां उसके सदस्य होते है। यूनियन सम्बन्धित समितियो की देख भाल का कार्य करती है। यूनियन १०० से अधिक आय व्यय निरीक्षक नियुक्त करती है। प्रातीय सरकार यूनियन को लगभग ६६०००) रु० वार्षिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त सदस्यो से फीस लीजाती है। आय व्यय निरीक्षण कार्य के लिये अलहदा फ़ीस ली जाती है।

मध्य प्रान्त—यहां प्रांतीय फैडरेशन शिक्षा, तथा देख भाल का कार्य करती है। प्रान्त को पांच भागो मे बांटा गया है, और प्रत्येक डिवीजन मे एक इस्टिट्यूट स्थापित की गई है जो कि इस कार्य को करती है। इनमे बरार इंस्टिट्यूट सबसे अच्छा कार्य कर रही है। समितियो की देख भाल करने के लिये कर्मचारी नियुक्त किये गये है। फेडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्र ( ग्राम ) भी प्रकाशित करती है।

आसाम—यहां सुरमा घाटी की एक प्रान्तीय संगठन समिति ( Surma Valley Co-operative Organisation Society ) स्थापित की गई है। प्रत्येक समिति प्रान्तीय समिति को अपनी कार्यशील पूंजी के अनुपात मे चन्दा देती है। आसाम मे

शिक्षा का सर्वथा अभाव है, इस कारण समिति मैजिक लैनटर्न के द्वारा प्रचार कार्य करती है। इस कार्य के लिये उपदेशक भेजे जाते है। समिति एक बंगाली त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। इसी प्रकार की एक और समिति की स्थापना हुई है, जो आसाम के ऊपरी आधे हिस्से मे कार्य करती है।

बर्मा—बर्मा कोआपरेटिव काऊंसिल, आय व्यय निरीक्षण, प्रान्तीय सम्मेलन का आयोजन, तथा प्रचार कार्य करती किन्तु आन्दोलन की हीन दशा के कारण वह टूट गई।

**सहकारिता की शिक्षा**—सहकारिता आन्दोलन की पूर्ण सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सहकारिता आंदोलन को चलाने वाले कर्मकारी तथा समितियो और सैन्ट्रल बैंको के पंचायतदार तथा डायरैक्टर गण सहकारिता के सिद्धान्त को भली भांति जाने। यह कार्य केवल, शिक्षा के द्वारा होसकता है। किन्तु अभी सहकारिता की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नही हुआ है। प्रान्तोय सहकारी संस्थाये इस ओर प्रयत्न कर रही हैं और सहकारी विभाग के सहयोग से शिक्षा का आयोजन किया जा रहा है। किन्तु अभी इसका प्रारम्भिक काल ही है। वम्बई, पंजाव मद्रास, बिहार-उड़ीसा, हैदराबाद, बड़ौदा तथा मध्य प्रान्त मे स्थायीरूप से सहकारिता की शिक्षा देने के लिये कक्षाये खुलगई हैं। बंगाल, बर्मा तथा वरार मे प्रतिवर्ष कक्षाये नही खुलर्ती किन्तु कभी कभी कक्षाओ के खोलने का प्रबन्ध होता है और नये कर्मचारियो को शिक्षा दी जाती है।

जिन प्रान्तो मे स्थायी रूप से कक्षाये खोली गई है, वहा केवल सहकारिता विभाग के कर्मचारियो को ही शिक्षा नही दी जाती वरन् सैन्ट्रल बैंक के मैनेजरो तथा इंस्पैक्टरो और समितियो के मन्त्रियो को भी शिक्षा दी जाती है। बम्बई, मदरास, पंजाब, विहार-उड़ीसा, की प्रान्तीय सरकारी संस्थाये प्रति वर्ष एक परीक्षा लेती है और उत्तीर्ण विद्यार्थियो को प्रमाण पत्र दिया जाता है। इन कक्षाओ मे निम्न लिखित विषय पढ़ाये जाते है.— कोआपरेटिव आयव्यय निरीक्षण, कोआपरेटिव बैकिंग, कोआपरेटिव ला (कानून), कोआपरेटिव बुक कीपिग (वही खाता), कृषि, तथा ग्रामीय अर्थशास्त्र।

वह समय आगया है जब कि सहकारिता की शिक्षा का प्रत्येक प्रान्त मे उचित प्रबंध होना चाहिये। प्रत्येक प्रान्त मे एक कालेज स्थापित किया जाना चाहिये जिसका डिप्लोमा सहकारिता विभाग तथा सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारियो को प्राप्त करना आवश्यक हो।

# बीसवां परिच्छेद

## ग्राम सुधार और सहकारिता

भारतवर्ष गांवो का देश है, सात लाख गांवो मे देश की लगभग ६० फी सदी आबादी रह रही है। लेकिन गांवो मे ग़रीबी, कलह, बीमारियो, गंदगी, अशिक्षा, और पुरानी हानिकर रस्मो का ऐसा ज़ोर है कि गांवो की दशा बहुत गिरगई है। हमारे गांव मनुष्यो के रहने लायक़ नही रहे हैं, यही कारण है कि जो गांव का रहने वाला पढ़ लिख जाता है, वह गांव मे न रहकर शहर की ओर दौड़ता है। यही नही, वृद्ध अवस्था होने पर जब कि वह नौकरी या अपने धन्धे से छुट्टी लेता है, तब भी वह गांव को न लौटकर शहर मे बस जाता है। पढ़े लिखे लोगो की बात जाने दीजिये, ज़मीदार भी गांवो मे रहना नही चाहते, वे भी जमीदारी की आमदनी से शहरो मे ही रहना चाहते है। जो भी कारीगर गांव मे रहकर कुशलता प्राप्त कर लेता है वह भी शहर की ओर चल देता है। इस प्रकार आज हमारे गांवो से पूंजी, मस्तिष्क, तथा हुनर बाहर निकला चला जारहा है और गांवो में अशिक्षित तथा निर्धन किसान और कारीगरो के बीच मे चतुर साहूकार उनको लूटने के लिये रहजाता है। फल यह होरहा हैं कि गांवो मे निर्धन किसानो को रास्ता दिखलाने वाला कोई नहीं है। गांवो को उजड़ने से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि गांवो की दशा मे सुधार किया जावे जिससे कि पढ़े लिखे तथा पैसे वाले ग्रामीण गांव छोड़कर बाहर न जावें।

गांवो की दशा इतनी बुरी होते हुए भी सरकार और जनता सभी गांवो की ओर से उदासीन हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत शिक्षा स्वास्थ तथा सड़कें बनवाने का कार्य होता है, शहरो मे ही होता है, गांवो की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। इसका कारण यह है कि शहर वालो के पास पत्र हैं प्लेट-फार्म है तथा वे शोर मचाना जानते है, एसैम्बली तथा कौंसलो में हमारे प्रतिनिधि चिल्लाया करते हैं इस कारण सरकार को शहरों के लिये कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। शहरो मे शिक्षा, स्वास्थ तथा उद्योग-धन्धो और व्यापार की उन्नति के लिये सरकार को कुछ न कुछ करना ही पड़ता है, परन्तु गांवो की ओर से सभी उदासीन हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि कपड़े स्टील, तथा शक्कर के कारखानों को घाटा होने लगता है तो कारखानो के मालिक, व्यवस्थापिका सभा के सदस्य तथा समाचार पत्र आकाश पाताल एक कर देते है और इन धन्धों को संरक्षण मिलता है, किन्तु खेती बारी की ओर जिस पर इस देश का आर्थिक संगठन अवलम्बित है और जिसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है, कोई ध्यान तक नहीं देता। ग्रामीण जनता मूक तथा अशिक्षित है, इस कारण यह प्रतिवाद भी नहीं कर सकती। किन्तु कपतिय सज्जनो ने ग्रामीण जीवन के दुखदाई पतन को देखकर इस दिशा मे कार्य करना प्रारम्भ किया है। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन (दिसम्बर १६३४ ई०) ने महात्मा गांधी के नेतृत्व मे जो ग्रामीण-उद्योग संघ नामक संस्था को जन्म दिया है, इसके कारण

जनता और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ है। हम यहां पर संक्षेप मे देश के अन्तर्गत होने वाले ग्राम सुधार कार्य का दिग्दर्शन मात्र करावेंगे।

**गुरगांव में सुधार कार्य**—पंजाब के गुरगाव जिले मे श्रीयुत एफ. एल ब्राइन तथा श्रीमती ब्राइन ने १४०० गांवो मे सुधार कार्य अत्यन्त उत्साह पूर्वक किया है। गुरगांव जिले मे इस कार्य का संरक्षण करने तथा इस कार्य की देख भाल करने के लिये ग्रामीण-कौसिल स्थापित की गई है। इस कौसिल के सदस्य सरकारी कर्मचारी तथा गैर सरकारी सज्जन जो इस कार्य से सहानुभूति रखते हैं, होते है। सदस्यो को थोड़ी सी फीस देनी होती है। कौंसिल मे उन सब विभागो के अधिकारी, जिनका कि सम्बन्ध गांवो से रहता है, अवश्य रहते है; जैसे शिक्षा विभाग इत्यादि। कौंसिल ग्राम सुधार कार्य का वार्षिक प्रोग्राम तैयार करती है तथा जिले में यह कार्य किस प्रकार किया जावे इस विषय पर अपनी सम्मति देती है। कार्य को चलाने के लिये दो स्कूल खोले गये हैं। एक स्कूल ग्रामीण पुरुष कार्यकर्त्ताओ को तैयार करता है, तथा दूसरा स्कूल स्त्री कार्यकर्त्ताओं को तैयार करता है। यह कार्यकर्त्ता ही ग्राम सुधार का कार्य करते हैं। प्रत्येक ग्राम मे एक सहकारी साख समिति तथा एक स्कूल स्थापित किया जाता है। स्कूल के अध्यापक को ग्राम सुधार कार्य की शिक्षा दी जाती है तथा स्कूल को इस कार्य का केन्द्र बनाया जाता है। जो कुछ सुधार गांव मे आवश्यक समझे जाते हैं, उन

को शिक्षा बालक बालिकाओं को स्कूल मे दी जाती है । श्रीयुत ब्राइन लड़कियो की शिक्षा पर वहुत जोर देते है और सह-शिक्षा को आर्थिक दृष्टि से आवश्यक बतलाते है। खेती की उन्नति के लिये प्रत्येक गांव मे हिसार सरकारी फर्म के सांड खरीद कर रक्खे गये है जिनके संसर्ग से गांव के पशुओ की नस्ल को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। चरस की जगह कूओ से सिचाई करने के रहट का प्रचार किया गया है, अच्छा बीज सहकारी साख समितियो द्वारा बेचा जाता है तथा उधार भी दिया जाता है। किसानो को गोबर तथा गांव का दूसरा कूडा गड्ढो मे भर कर खाद बनाना सिखाया जाता है। गोबर थापने की आर्थिक हानियां बता कर कंडे जलाने से किसानो को रोका जाता है। इससे तीन लाभ होते है। खेतो के लिये बढ़िया यथेष्ट खाद मिलती है, गांव मे कूड़े तथा खाद के ढ़ेरो के कारण जो गंदगी रहती है वह दूर होती है, तथा स्त्रियो को कडे थापने के गंदे काम से छुट्टी मिलती है और वे इस समय को सीने पिरोने तथा घर को साफ रखने मे लगा सकती है। स्वास्थ्य के लिये श्रीयुत ब्राइन ऊपर लिखे हुये ढंग से गांव की सफाई रखने के अतिरिक्त, पिट-लैट्रिन ( गड्ढे वाले शौच गृह ) तैयार कराने पर बहुत जोर देते है तथा मैदान मे शौच जाने की रीति को छुड़वाते है। वर्षा ऋतु मे कुनीन तथा मच्छरदानी का उपयोग करने तथा प्लेग और चेचक का टीका लगवाने को कहा जाता है। गांव की लड़कियो को कपड़ा सीने, काढ़ने तथा बुनने का काम सिखाया जाता है

और घरों को अधिक सुन्दर रखने का ढंग बतलाया जाता है। इन सब बातों का प्रचार मैजिक लैनटर्न, व्याख्यानों, सिनेमा फिल्मों तथा गानों के द्वारा किया जाता है। रेडियो के उपयोग पर भी श्री ब्राइन की नजर है। मुकद्मेबाजी कम करने, जेवर मे रुपया व्यर्थ न गंवा कर साख समिति मे रुपया जमा करने तथा स्त्रियों के भारी कामों के बोझ को हलका करने को गांव वालों से कहा जाता है।

प्रान्तीय सरकार तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने इस कार्य के लिये आर्थिक सहायता प्रदान की। किन्तु श्रीयुत ब्राइन के चले जाने पर गुरगांव मे कार्य शिथिलता आ गई। अभी थोड़ा समय हुआ कि पंजाब सरकार ने प्रान्तीय ग्राम सुधार विभाग का कमिश्नर बना कर श्रीयुत ब्राइन को प्रान्त मे ग्राम सुधार कार्य करने के लिये फिर बुला लिया है।

**श्रीनिकेतन ( विश्व भारती ) का ग्राम सुधार कार्य—** महाकवि श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टगोर ने शांति निकेतन विश्व भारती ( विश्व विद्यालय ) के साथ ही साथ श्रीनिकेतन नामक ग्राम सुधार कार्य करने वाली संस्था को भी जन्म दिया है। श्रीनिकेतन मे ग्राम सुधार कार्य का केन्द्र स्थापित किया गया है जो वीरभूम जिले मे ग्राम सुधार कार्य को चलाता है। अभी तक ६ ग्राम सुधार समितियां स्थापित की गई है। श्रीनिकेतन मे एक केन्द्रीय उद्योग मन्दिर स्कूल स्थापित किया गया है जहां शिक्षा के साथ साथ ग्रामीय उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाती है और गांवों के

बालको को इस योग्य बनाया जाता है कि वे गांवो मे जाकर वहा का नेतृत्व करे । केन्द्रीय स्थान मे एक सैंट्रल सहकारी बैंक स्थापित किया गया है जिससे ग्रामीण सहकारी साख समितियां संबंधित हैं । यह समितियां गांवो मे साख का प्रबन्ध करती हैं । श्रीनिकेतन मे वृती बालक ( बालचर ) नामक संस्था को जन्म दिया गया है, जो नवयुवक इस ग्राम सुधार कार्य मे सहायता देना चाहते है, उन्हे शिक्षा दी जाती है और उनको गावो मे भेज कर कार्य कराया जाता है । गावो की सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, तथा अन्य आवश्यक कार्यों मे वृती बालको से खूब सहायता मिलती है । सहकारी साख समितिया तथा गैर साख समितियां, उत्तम बीज, हल, और खाद का प्रचार करती है तथा पैदावार को बेचने का प्रबन्ध करती है ।

**दक्षिण भारत मे वाई. एम. सी. ए. (Y. M. C. A.) का ग्राम सुधार कार्य**—दक्षिण भारत मे यंग मैन क्रिश्चियन एसोसियेशन ने ग्राम सुधार कार्य बड़ी सफलता से किया है। कुछ केन्द्रो मे अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। ट्रावंकोर राज्य मे मारतंडम, मालाबार मे आर्याकोड, निल्लौर मे इन्द्रकूपेट, तथा नीलगिरी ( मद्रास ) मे रामनाथपुरम, विशेष उल्लेखनीय हैं ।

वाइ. एम. सी. ए. के ग्राम सुधार कार्य करने का ढङ्ग गुरगाव की योजना से भिन्न है । जहां भी ग्राम सुधार कार्य करना होता है, वहां निरीक्षण करने के उपरान्त एक ऐसा केन्द्रीय गाव ढूंढ लिया जाता है जो समीपवर्ती गांवो के मध्य मे हो ।

केन्द्रीय गांव में ग्राम सुधार केन्द्र स्थापित किया जाता है। इस केन्द्र के द्वारा ही समीपवर्ती गांवो मे ग्राम सुधार कार्य होता है।

केन्द्र प्रदर्शन तथा प्रयोग करने का स्थान होता है। केन्द्र मे अच्छी जाति के गाय और बैल रक्खे जाते है जिनके द्वारा समीपवर्ती गांवो के पशुओ की नस्ल अच्छी बनाई जाती है। केन्द्र मे मुर्गी पालने के धन्धे को वैज्ञानिक ढङ्ग से चलाने की शिक्षा देने के लिये अच्छी जाति के मुर्गे मंगा कर रखे जाते हैं, जिनसे समीपवर्ती गांवो मे मुर्गियो की नस्ल अच्छी हो। मुर्गी के लिये स्वास्थप्रद घर बिना अधिक व्यय किये किस प्रकार बनाये जाते है तथा उनका पालन किस प्रकार करना चाहिये, इसकी व्यवहारिक शिक्षा केन्द्र मे दी जाती है। इसके अतिरिक्त शहद की मक्खी पालकर शहद निकालने का धन्धा किस प्रकार चलाया जाता है, इसका प्रदर्शन भी केन्द्र मे किया जाता है। केन्द्र मे बुनाई की शिक्षा भी दी जाती है। अस्तु, केन्द्र प्रदर्शन तथा शिक्षा कार्य करता है। समीपवर्ती गांवो के जो निवासी इन धन्धों को सीखना चाहते है उनको यह धन्धे सिखा दिये जाते है, और जब केन्द्र मे सीखे हुए ग्रामीण लोग उन धन्धो को करने लगते हैं तब सहकारी विक्रय समितियां स्थापित करके उनकी पैदावार को बेचने का प्रबंध किया जाता है। मारतंडम मे अंडे बेचने वाली समिति समीपवर्ती गांवो के अंडो को मदरास भेजती है। अकेले इस धन्धे से गांव वालो की यथेष्ट आय वृद्धि हुई है। केन्द्र मे चारे की ऐसी फसलें तैयार की जाती हैं जो कि

एक मास मे तैयार हो जावे, और गांव वालो को अपने पशुओ के चारे के लिये उन फसलो को एक छोटे से भूमि के टुकड़े पर बराबर पैदा करने के लिये उत्साहित किया जाता है। केन्द्र मे खाद बनाने के ढंग तथा गावो मे गढ़े खोद कर शौचगृह तैयार करने का भी प्रदर्शन किया जाता है। केन्द्र मे एक स्कूल तथा एक पुस्तकालय भी रहता है। स्कूल तथा पुस्तकालय की इमारत इस प्रकार की होती है कि आसानी से प्रत्येक गांव मे कम व्यय करके बनाई जा सके। इन इमारतो को गाव वाले ही तैयार कर लेते है तथा सामान भी वही लगाया जाता है जो कि गांव मे मिलता है। इस कारण नाम मात्र की लागत मे इमारते तैयार तैयार हो जाती है। केन्द्र का पुस्तकालय समीपवर्ती गांवो के पुस्तकालयो को पुस्तके प्रति सप्ताह भेजता रहता है। चलते फिरते पुस्तकालयो के ढंग पर यह कार्य होता है। केन्द्रीय पुस्तकालय प्रत्येक गांव के पुस्तकालय को पुस्तको का एक सैट भेज देता है। १५ दिन के उपरान्त प्रत्येक गांव के पुस्तकालय को केन्द्रीय पुस्तकालय द्वारा बतलाये हुये गांव को अपने पास वाला सैट भेज देना पड़ता है। इस प्रकार हर एक गांव मे १५ दिन बाद नया सैट आजाता है। केन्द्र का मन्त्री समीपवर्ती गांवो मे वाई. एम. सी. ए. स्थापित करता है। इन संस्थाओ के द्वारा केन्द्र के कार्यों का प्रचार किया जाता है। प्रत्येक ग्राम मे एक सहकारी साख समिति स्थापित कीजाती है, स्कूल तथा पुस्तकालय खोले जाते है। रात्रि को इन्ही स्कूलो की इमारतो मे पुरुषो को व्याख्यान,

मैजिक लैनटर्न, तथा छोटे छोटे प्रहसनो के द्वारा अपने जीवन को अधिक सुखी बनाने के लिये प्रेरित किया जाता है। पंचायतें स्थापित कीजाती है, गांव के बालको मे सेवा भाव भरने के लिये स्काउटिंग की शिक्षा दी जाती है, तथा सफाई और स्वास्थ के नियमो का प्रचार किया जाता है। केन्द्र का मन्त्री समीपवर्ती गांवो मे कुछ ऐसे उत्साही कार्यकर्त्ता तैयार कर देता है जो केन्द्र की योजना का गांवो मे प्रयोग करते रहते है। केन्द्र से इन गावो की संस्थाओ को परामर्श तथा सहायता मिलती रहती है।

इनके अतिरिक्त और बहुतसी संस्थाएं तथा व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार देश के भिन्न भिन्न भागो मे ग्राम सुधार कार्य कर रहे है।

बगाल मे सर डेनियल हैमिल्टन ने सुन्दरबन के नम डेल्टा प्रदेश मे आधुनिक ढंग की बस्तियां बसाई है, सहकारी साख समितियां स्थापित की गई है, पंचायतो के द्वारा लड़ाई झगड़ो का का फैसला किया जाता है, मकान साफ़ रक्खे जाते है। किसानो की पैदावार वेचने के लिये विक्रय सहकारी समितियां स्थापित की गई है। शिक्षा देने के लिये वर्नाक्यूलर स्कूल तथा अंग्रेजी स्कूल खोले गये है तथा बीमारियो को रोकने के लिये औषधालयो का भी आयोजन किया गया है। कोयम्बटूर में भी एक संस्था ग्राम सुधार कार्य कर रही है। श्रीयुत रामदास पंतलू की भी एक योजना है जिसके अनुसार मद्रास प्रान्त मे कार्य हो रहा है। श्री एम. के. राय ने उड़ीसा मे 'ग्राम शिक्षा कार्य

किया है। पूर्व गोदावरी जिले मे अलाभारू ग्राम सुधार योजना विशेष उल्लेखनीय है। इस योजना को ग्राम सुधार कार्य मे विशेष सफलता प्राप्त हुई है। अलाभारू मे जो कुछ भी ग्राम सुधार कार्य हुआ, उसका श्रेय श्री एच. एन. सत्यनारायण को है। प्रदेश घना आबाद है, प्रत्येक गांव मे सहकारी समितियां स्थापित करदी गई है जो सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। कुओ का खोदना, तालाबो का बनाना, सड़के निकालना, बालको की शिक्षा पुस्तकालय व्याख्यानो का प्रबन्ध, भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितिया, सहकारी भूमि बन्धक बैंक इस योजना की विशेषताएं है। ग्राम सुधार कार्य को चलाने के लिये राम मन्दिर नामक संस्था को जन्म दिया गया है। राम मन्दिर की देख रेख मे ही यह कार्य होरहा है। जुआ तथा शराब का सफलता पूर्वक बहिष्कार किया गया है। संक्षेप मे हम यह कह सकते है कि अलाभारू की योजना भारतवर्ष मे एक सफल योजना है।

पूना जिले मे डैकन ऐग्रीकल्चर ऐसोसियेशन ( दक्षिण कृषि सभा )ग्राम सुधार कार्य कर रही है। इसके सभापति श्री० जी. के. देवधर है। इसके अतिरिक्त देवधर मालाबार रिकंसट्रकशन ट्रस्ट मालाबार के पांच केन्द्रो मे मोपलाओ के बीच ग्राम सुधार कार्य कर रहा है। हैदराबाद मे डोरनाकल विलेज वैलफेयर ऐसोसियेशन भी ग्राम शिक्षा, उद्योग-धन्धो की उन्नति तथा स्वास्थ्य रक्षा का कार्य करती है।

सरोज नलनीदत्त ऐसोसियेशन ( कलकत्ता ) अधिकतर

बंगाल और आसाम मे ग्रामीण स्त्रियो मे शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य, गृह-उद्योग-धन्धो का प्रचार तथा स्त्रियो की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न कर रही है। यह बंग लक्ष्मी नामक पत्रिका भी निकालती है।

बंगाल मे आसंसोल के समीप ऊपा ग्राम मे ईसाई मिशनरियो के द्वारा श्रीनिकेतन क ढंग पर काम किया जा रहा है।

**संयुक्त प्रान्त में ग्राम संगठन कार्य**--बनारस जिले मे श्रीयुत बी. एन. मेहता आई. सी. एस. ने जब कि वे ज़िलाधीश थे, बड़े उत्साह के साथ सहकारिता विभाग के सहयोग से ग्राम सधार कार्य किया था। श्रीयुत मेहता की योजना गुरगांव की योजना से कुछ मिलती जुलती है। योजना इस प्रकार है:—बनारस मे एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की गई है। इस संस्था का उद्देश्य बनारस ज़िले मे ग्राम सुधार कार्य करना है। सरकारी कर्मचारी तथा ग़ैर सरकारी सज्जन जो भी इस कार्य से सहानुभूति रखते है इसके सदस्य हो सकते है। यह केन्द्रीय संस्था गांवो की सारी समस्याओ को हल करती है। इसमे डाक्टर, स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी, कृषि विशेषज्ञ, पशुओ के विपय मे जानकारी रखने वाले, अध्यापक, कला कौशल के विशेपज्ञ सभी सदस्य है। यह संस्था गांवो के सारे रोगो का इलाज ढूँढ़ निकालती है और गांवो मे कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता उस इलाज को गांव वालो को बतलाते हैं। ग्राम सुधार कार्य करते हुए जो कोई कठिनाई उपस्थित होती है, वह केन्द्रीय संस्था के सामने उपस्थित

जाती है। संस्था उस विषय के जानकारों की राय लेती है और उस कठिनाई को हल करता है।

बनारस मे ही एक ट्रेनिंग क्लास खोला गया है जिसमे गांवो मे कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते है। यह कार्यकर्त्ता संस्था द्वारा बनाये हुये प्रोग्राम के अनुसार गावो मे सुधार कार्य करते है। गावों मे सफाइ, स्वास्थ्य खेती बारी मे सुधार, पंचायतो की स्थापना इत्यादि समस्याओ के विषय मे संस्था बतलाये हुये ढग से प्रचार करना इन कार्यकर्त्ताओ का काम होता है।

श्रीयुत मेहता ने ग्राम सुधार कार्य मे गांव की पाठशाला की मदद लेने पर बहुत जोर दिया है। उनका कहना है कि गांव की पाठशाला को ग्राम सुधार कार्य का केन्द्र बनाना चाहिये। बनारस जिले मे जहां जहां ग्राम सुधार किया गया, वहा वहा पाठशालाये खोली गई और बच्चो के साथ ही प्रौढ़ो को भी शिक्षा दी गई। जब माता पिता शिक्षा के महत्व को समझ लेते है तब वे अपने बच्चो को पाठशाला भेजने मे आनाकानी नही करते। पाठशाला का शिक्षक गांव वालो मे उन सब बातो का प्रचार करता है जिनकी गांव मे आवश्यकता होती है। गांवो मे जलाने के लिये ईंधन कम होने के कारण गांव के लोग गोबर के कंडे जलाते हैं, जिससे बहुमूल्य खाद नष्ट होता है। इस समस्या को हल करने के लिये श्री मेहता ने यह योजना निकाली कि कि ग्राम निवासियो को यह बतलाया जावे कि वृक्ष लगाना पुण्य का काम है, इस लिये

वर्ष मे एक दिन वृक्ष लगाने का त्यौहार मनाया जावे। उस दिन गांव का रहने वाला हर एक पुरुष एक एक वृक्ष लगावे। इस प्रकार थोड़े दिनो मे ईंधन की समस्या हल हो सकती है और गोबर खाद के लिये बच सकता है। बनारस जिले मे गांवो की सफाई के लिये दिवाली और होली के त्यौहारो का विशेष उपयोग किया गया है। दिवाली और होली के त्यौहारो पर हर एक गृहस्थ अपने घर की सफाई करता है. बनारस मे गांव वालो को यह समझाया गया कि घर के साथ गांव की सफाई करना भी उनका धर्म है। इस प्रकार वर्ष मे गांवो की दो बार सफाई हो जाती है।

बनारस की ग्राम सुधार संस्था गांव मे कार्य करने वालो को, सहकारिता विभाग की सहायता से उन सब विषयो की शिक्षा देती है जो कि गांवो मे कार्य करने वालो के लिये आवश्यक है। यह उपदेशक (कार्यकर्त्ता) घूम घूम कर गांवो मे मैजिक लैन्टर्न द्वारा तथा अन्य साधनो से प्रचार करते है। दाइयो को आधुनिक ढंग से बच्चा जनाने की शिक्षा दी जाती है। श्रीयुत मेहता ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि गांव वालो के अन्ध विश्वासो तथा समाज की बुरी रूढ़ियो को नष्ट करने के लिये यह आवश्यक है कि गांव की किम्वदन्तियां, ग्राम्य गीतों, तथा कहावतो का ही उपयोग किया जावे। ऐसे गीत, किम्वदन्तियां और कहावते इकट्ठी की जावे जो कि अन्ध-विश्वासो के विरुद्ध हो और उनको गाकर तथा सुना कर उनका प्रचार किया जावे। श्रीयुत मेहताजी ने इस प्रकार की कहावते इकट्ठी भी की हैं।

जच्चा को जिस प्रकार रखना चाहिये, बच्चो का पालन किस प्रकार करना चाहिये, तथा हैजा प्लेग और चेचक इत्यादि रोगो से किस प्रकार बचना चाहिये, यह सब बाते गांव वालो को बतलाई जाती है तथा औषधियां बांटने का भी प्रबंध किया जाता है।

श्री० मेहताजी ने देशी खेलो के द्वारा गांव के बालको के स्वास्थ्य को सुधारने का प्रयत्न किया है। गांवो मे अखाड़े खोले गये है जिनमे गांव के युवक कुश्ती लड़ते है।

सहकारिता विभाग की सहायता से गांवो मे साख समितियां, रहन सहन सुधार समितिया और कहीं कही क्रय विक्रय समितियां भी स्थापपित की गई है।

श्रीयुत् मेहता जब तक बनारस के जिलाधीश रहे तब तक तो ग्राम सुधार कार्य बड़े उत्साह से होता रहा किन्तु उनके बनारस से चले जाने के उपरान्त कार्य मे कुछ शिथिलता आ गई।

**प्रतापगढ़ मे ग्राम संगठन कार्य**—संयुक्त प्रान्त मे बनारस के अतिरिक्त प्रतापगढ़ ज़िले मे सहकारिता विभाग ने ग्राम संगठन कार्य किया है। लगभग पांच वर्ष हो गये जब प्रतापगढ़ ज़िले मे ग्राम संगठन कार्य आरम्भ किया गया था। सहकारिता विभाग ने अपनी बहुत सारी शक्ति इस कार्य मे लगा दी है।

रहन सहन सुधार समितियो की अधिक संख्या मे स्थापना

की गई है। यह समितियां गांवो की सफाई करवाती हैं; गड्ढ़ो मे खाद तैयार करवाती हैं, तथा ग्रामीणो को सामाजिक कार्यों पर फिजूलखर्च करने से रोकती है। गांव वालो के आपस के झगड़ो का निबटारा करने के लिये पंचायते स्थापित की गई है। इन गांवो मे साख समितियो के द्वारा किसान को समुचित साख देने का प्रयत्न किया जा रहा है। कृषि विभाग के सहयोग से उत्तम बीज, खाद, तथा यन्त्रो का प्रचार किया जा रहा है और स्वास्थ्य विभाग की सहायता से गांवो की सफाई कराने तथा बीमारियो को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है। कुछ लोगो का यह कहना है कि सहकारिता विभाग को अब अपनी शक्ति अन्य ज़िलो मे लगानी चाहिये।

इन दो स्थानो के अतिरिक्त फैजाबाद जिले मे भी ग्राम संगठन कार्य शुरू किया गया है। गोडा ज़िले से कोर्ट आफ वार्डस ने "मेरी उम्मेद" नामक आदर्श गांव बसाया है।

राजपूताने के जयपुर राज्य मे "वनस्थली" नामक गांव के आस पास ग्राम संगठन कार्य हो रहा है। शिक्षा, उद्योग-धन्धो की उन्नति, सफाई, रीति रस्मो मे सुधार, और साख का प्रबंध करना ही इस योजना की मुख्य बाते है।

अभी तक जिन स्थानो पर भी ग्राम संगठन कार्य किया गया है, वह केवल प्रयोग मात्र है, कही भी विस्तृत क्षेत्र मे ग्राम संगठन कार्य नही हुआ है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) ग्राम उद्योग-संघ द्वारा इस कार्य को बड़े क्षेत्र मे करना चाहती है,

परन्तु अभी इसके विषय मे कुछ कहा नहीं जासकता क्योंकि ग्राम-उद्योग-संघ अभी तक अच्छी तरह काम शुरू भी नहीं कर सका है।

गांवो के प्रति जनता की रुचि देखकर भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारो का ध्यान भी इस ओर गया है। सन् १९३५-३६ के बजट मे भारत सरकार ने ग्राम सुधार कार्य के लिये एक करोड़ रुपया प्रान्तीय सरकारो को दिया है । भारत सरकार से मिले हुए धन के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारो ने भी कुछ धन इस कार्य के लिये अपने बजटो मे रखा है और अपने अपने प्रान्तो मे योजनाये तैयार करके काम शुरू कर दिया है।

ग्राम संगठन कार्य चाहे जिस प्रकार किया जावे, परन्तु दो बाते अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिये :—

(१) गांवो का सुधार तभी सफलतापूर्वक हो सकता है जब कि गांव की सब समस्याओ को एक साथ हल किया जावे। गांव की एक आध समस्या को लेकर कार्य करने से कोई लाभ न होगा।

(२) ग्राम संगठन का आधार सहकारिता आन्दोलन होना चाहिये। यदि सहकारिता आन्दोलन की नींव पर ग्राम संगठन की दीवार खड़ी न की गई तो ग्राम संगठन कार्य का प्रभाव स्थायी न होगा।

# इक्कीसवां परिच्छेद

## उपसंहार

भारतवर्ष मे सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ हुए ३१ वर्ष के लगभग समय होगया, किन्तु आन्दोलन ने इस देश के आर्थिक जीवन मे कोई विशेष परिवर्तन उपस्थित कर दिया हो, ऐसा दिखलाई नही देता। इसका कारण यह है कि आन्दोलन अभीतक शक्तिहीन है। बर्मा मे तो आन्दोलन की मृत्यु ही होगई। वहां अधिकांश सहकारी समितियां दिवालिया होगईं; कुछ वर्षों से वहां का सहकारी विभाग केवल समितियो को दिवालिया बनाकर उस संबंध की ही कार्यवाही कर रहा है। बर्मा का तो प्रान्तीय बैंक तक फेल होगया। वहां आन्दोलन नये सिरे से चलाया जावे तब भविश्य मे कुछ आशा की जासकती है। किन्तु एक बार हजारों समितियो के दिवालिया होजाने पर नई समितियो की स्थापना करना कठिन होगा।

आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार-उड़ीसा तथा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त मे भी आन्दोलन शक्तिहीन है। इन प्रान्तो मे आन्दोलन फैल नही रहा है। साख समितियो की अवस्था भी सन्तोषजनक नही है। किन्तु प्रयत्न करने से समितियो की अवस्था सुधर सकती है और आन्दोलन को मजबूत बनाया जा सकता है।

बड़े प्रान्तो मे पंजाब और बम्बई में पूर्ण रूप से नहीं, किन्तु साधारण रूप से आन्दोलन सन्तोषजनक है, इनके उपरांत क्रमशः

मदरास, संयुक्त प्रान्त तथा बंगाल का नम्बर आता है । यद्यपि इन प्रान्तो मे भी बहुत संख्या मे समितियां, ऐसी है कि जिनकी दशा सन्तोपजनक नही है और प्रति वर्ष सैकड़ो समितियां दिवालिया होती हैं किन्तु फिर भी आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय नही है। अजमेर-मेरवाड़ा कुर्ग तथा देहली प्रांतो मे आदोलन की दशा साधारण है।

देशी राज्यो मे भी आन्दोलन की दशा सन्तोपजनक नही है भूपाल मे आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय है । ग्वालियर, इन्दौर, तथा काश्मीर मे आन्दोलन अभी शक्तिहीन है, मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, तथा ट्रावंकोर राज्यो मे आन्दोलन की साधारण दशा है। अधिकतर देशी राज्यो मे आन्दोलन अभी आरम्भ ही नही हुआ।

तीस वर्षो के उपरान्त सहकारिता आन्दोलन को देश मे एक प्रबल, शक्तिशाली आन्दोलन बनजाना चाहिये था । आन्दोलन को स्वयं अपने आप बढ़ना चाहिये था। ग्रामीण जनता को स्वयं सहकारी समितियो की माग करनी चाहिये थी, महाजन को इस आन्दोलन से डरना चाहिये था तथा सहकारी समितियो के सदस्यो की आर्थिक स्थिति सुधरना चाहिये था किन्तु अभीतक ऊपर लिखे चिन्ह दृष्टिगोचर नही होरहे है इस कारण हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि आन्दोलन की दशा संतोषजनक नही है।

आन्दोलन की असफलता के कारण बहुत से है, भिन्न भिन्न विद्वानो ने भिन्न भिन्न कारणो को मुख्य माना है,जिनके विपय मे

आगे लिखा जावेगा। किन्तु अभी तक विद्वानो का ध्यान ग्रामीण ऋण की ओर यथेष्ठ आकर्षित नही हुआ है; यह, लेखक की सम्मति मे आन्दोलन की असफलता का मुख्य कारण है। यहां ग्रामीण ऋण के विषय मे वे सब बातें दोहराने की आवश्यकता नहीं जो कि तीसरे परिच्छेद मे लिखी जाचुकी है, केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि किसान महाजन के चंगुल मे बुरी तरह से फंसा हुआ है, वह चोटी से लेकर एड़ी तक ऋण मे डूबा हुआ है। महाजन के शोषण करने का ढंग ऐसा विचित्र तथा भयंकर है कि किसान कभी ऋण मुक्त नही हो सकता। इस का फल यह हुआ है कि किसान तथा अन्य निर्धन वर्गों का जीवन निराशावादी बनगया है। जिनको विश्वास नही, जिनको आशा नही कि हमारी दशा सुधर सकती है, उनमे सहकारिता आन्दोलन कैसे सफल हो सकता है! अस्तु, इस समस्या को हल करने का सर्व प्रथम प्रयत्न होना चाहिये।

भारतीय किसान तथा निर्धन वर्गों मे अशिक्षा का अखंड साम्राज्य है। शिक्षा प्रत्येक आन्दोलन की पूर्ण सफलता के लिये आवश्यक है। सहकारिता आन्दोलन मे तो शिक्षा की और भी आवश्यकता है, क्यो कि सदस्यो को स्वयं सहकारी साख समितियो को चलाना पड़ता है। समितियो के हिसाब रखने के लिये उनकी कार्यवाही लिखने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। भारतवर्ष मे सहकारी साख समितियो के लिये सदस्य मन्त्री नहीं मिलते,इस कारण बाहर के आदमी को मंत्री नियुक्त करना पड़ता

है। आठ या दस समितियो का एक ही मन्त्री होता है, फल यह होता है कि मन्त्री ही इन समितियो का कर्ता धर्ता बनजाता है और सदस्यो को कार्य करने की शिक्षा नही मिलती। इन ग्रूप-सैक्रेटरियो के विरुद्ध बहुत शिकायत है किन्तु वे जमे हुए है। हैनरी वुल्फ जैसे प्रसिद्ध विद्वान का मत है कि अशिक्षा आन्दोलन की गति धीमी अवश्य रखती है किन्तु आन्दोलन की असफलता या सफलता इस पर निर्भर नही है क्योकि किसान अशिक्षित होते हुए भी बुद्धि का तेज होता है। यदि उसे सहकारिता के सिद्धान्तो की शिक्षा ठीक प्रकार से दीजावे तो वह समिति को भली प्रकार चला सकता है।

भारत मे बहुत से विद्वानो का मत है कि आन्दोलन सार्व-जनिक न हो कर एक सरकारी नीति ( State policy ) के रूप मे चलाया जा रहा है, यही आन्दोलन की निर्बलता है। है भी यह बहुत कुछ सत्य। यदि देखा जावे तो सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। समितियो का निरीक्षण करना, नई समितियो का रजिस्टर करना, खराब समितियो का तोड़ना, तथा उनका आडिट कराना उसके मुख्य कार्य है। रजि-स्ट्रार अधिकतर कोई सिविलियन होता है अथवा उसी ग्रेड का कोई कर्मचारी, उसके नीचे डिप्टी रजिस्ट्रार तथा इन्सपैक्टर होते है। असिस्टेट रजिस्ट्रार तथा डिप्टी रजिस्ट्रार प्रान्तीय सिविल सर्विस के होते है। कोई भी सिविलियन अधिक दिनो तक रजि-स्ट्रार नही रह पाता, क्योकि वह अपनी उन्नति को आन्दोलन

के लिये नहीं छोड़ सकता। फल यह होता है कि रजिस्ट्रार जल्दी जल्दी बदला करते है और एक नीति स्थायी रूप से काम मे नही लाई जाती। रजिस्ट्रार को नियुक्त होते समय सहकारिता का ज्ञान नहीं होता, ( श्री० कैल्वर्ट, स्टिकलैंड, तथा डार्लिंग इसके अपवाद स्वरूप है )। डिप्टी रजिस्ट्रारो को आन्दोलन से कोई विशेष प्रेम नही होता, क्योकि वे दूसरे विभागो मे जाने की चेष्टा करते रहते है। एक डिप्टी कलैक्टर डिप्टी रजिस्ट्रार बनने पर प्रसन्न नही होता। किसी भी आन्दोलन के लिये यह आवश्यक है कि उसके संचालक उत्साह और लगन के साथ उसमे जुटे। अधिकतर सहकारिता विभाग के कार्यकर्ताओ मे इस बात का अभाव है। जो सज्जन कि इस आन्दोलन मे अवैतनिक कार्य करते हैं वे सेवाभाव से काम नहीं करते वरन सरकार को प्रसन्न करके पदवी इत्यादि प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। यहां यह कह देना आवश्यक होगा कि बम्बई तथा मदरास प्रान्त मे तथा अन्य प्रान्तो मे भी कुछ ऐसे सज्जन अवश्य मिलेगे कि जो शुद्ध सेवा भाव से काम कर रहे है। श्रीयुत् देवधर, सर लल्लू भाई सांवल दास, श्री० एस. एस. तलमाकी, श्रीयुत् रामदास पंतलू, तथा मदरास के श्री टी. के. हनुमन्त राव और सर्वैन्ट-आफ-इण्डिया सोसायटी के कार्यकर्ताओ की जितनी प्रशंसा की जावे, वह थोड़ी है, किन्तु अधिकतर कार्यकर्ता पहिली श्रेणी के है।

इस सबका फल यह हुआ है कि सहकारी साख समिति का सदस्य समिति को अपनी संस्था न समझ कर सरकारी बैंक

समझता है। वह तो समझता है कि जिस प्रकार सरकार तक़ावी बांटती है उसी प्रकार यह सरकारी बैंक ऋण देता है। इसका अर्थ यह है कि सहकारी समिति का सदस्य सहकारिता के मूल सिद्धान्त से अपरिचित है। वह यह नही समझता कि यह स्वावलम्बन का सिद्धान्त है। हम लोग मिलकर अपने पैरो स्वयं खड़े हुए है और अपनी आर्थिक उन्नति का प्रयत्न कर रहे है। इस अनिभिज्ञता का मुख्य कारण यह है कि सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी तथा अन्य संगठनकर्त्ता सदस्यो को सहकारिता के सिद्धान्तो की शिक्षा नही देते, जो अत्यन्त आवश्यक है और जिस पर मैकलेगन कमेटी ने विशेष जोर दिया था। इसके अतिरिक्त सुपरवाइजर, सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी तथा अन्य कार्यकर्त्ता सदस्यो को यह नही बतलाते कि यह समिति तुम्हारी है, तुम्ही इसके मालिक हो, तुम इसका प्रबन्ध स्वयं जैसा चाहो कर सकते हो। इसका कारण यह है कि कर्मचारीगण यह समझते है कि ऐसा करने से सदस्यो पर रौब नही रहेगा तथा सैन्ट्रल बैंक का रुपया वसूल नही होगा। ऐसी परिस्थिति मे भला किसान यह कैसे समझ सकता है कि समिति का वही मालिक है और समिति उसी की चीज है। जब तक कि किसान ऐसा न समझने लगे, उनमे स्वावलम्बन के भाव जागृत न हो उठे, तब तक यह आन्दोलन सहकारिता आन्दोलन नही कहा जा सकता। कोई भी आन्दोलन इस प्रकार सफल नही हो सकता। जर्मनी मे सहकारिता आन्दोलन के जन्मदाता श्री० रैफीसन तथा श्री० स्कूलज ने किसी

स्वार्थवश उसे नही चलाया था, वे अपने निर्धन भाइयो की सेवा के लिये सरकारी नौकरियों को ठुकरा कर उसके जन्मदाता बने थे। आन्दोलन के असफल होने का एक यह मुख्य कारण है कि इसमे कार्य करने वालो मे लगन नही है। श्री० रैफीसन सरकारी सहायता के दोषो को जानते थे। वे कहते थे कि यह आन्दोलन स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भरता के सिद्धान्त पर खड़ा किया गया है, सरकारी सहायता लेने से आन्दोलन में निर्बलता आ जावेगी। यही कारण था कि उन्होने यह नियम बनाया कि सरकारी सहायता न ली जावे। भारतवर्ष मे स्थिति ऐसी थी कि बिना सरकारी सहायता के आन्दोलन का देश मे प्रवेश भी नही हो सकता था। सभी विद्वान् एक स्वर से इस बात को स्वीकार करते है कि प्रारम्भिक काल मे सरकारी सहायता के बिना आन्दोलन चलाया नही जा सकता किन्तु यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि अब आन्दोलन को जनता के हाथो मे सौप देना चाहिये। परन्तु शाही कृषि कमीशन की सम्मति इसके बिलकुल विरुद्ध है। कमीशन ने तो यहां तक कह दिया है कि अवैतनिक कार्यकर्त्ताओ को आन्दोलन मे आने के लिये उत्साहित नही करना चाहिये।

इस सम्बन्ध मे एक बात उल्लेखनीय है, कहीं कहीं सहकारी समितियो का उपयोग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रान्तीय कौंसिल, तथा एसैम्बली के चुनाव सम्बन्धी प्रचार मे किया जाने लगा है। सेन्ट्रल बैंको के डायरैक्टर तथा अन्य प्रभावशाली **कार्यकर्ता**

अपने चुनाव मे समितियो का उपयोग करते है। पंजाब के रजिस्ट्रार महोदय ने पिछली रिपोर्ट मे इस ओर संकेत किया। अभी तक यह रोग अधिक नहीं है किन्तु सम्भव है कि भविष्य मे यह भयंकर रूप धारण करे, इस कारण अभी से इसे रोकने का प्रयत्न होना चाहिये।

सहकारिता आन्दोलन की असफलता का एक कारण सहकारी समिति के सदस्यो के साथ असभ्य व्यवहार भी है। सहकारिता का सिद्धान्त तो यह है कि समिति के सदस्य अपनी आवश्यकताओ का अनुमान लगा कर अपने सम्मिलित अपरिमित दायित्व पर बैंक से कर्ज ले ले, रुपये को आवश्यतानुसार आपस मे बांट ले और अदायगी के समय हर एक सदस्य अपनी किश्त दे दे तथा पंचायत समिति के ऋण की किश्त बैंक को चुका दे, क्योंकि सारे सदस्य समिति के ऋण के देनदार है। इस कारण यदि कोई सदस्य अपनी किश्त नही चुकाता तो अन्य सदस्य उस पर जोर डालेगे और उससे वसूल कर लेगे। किन्तु इसके विपरीत होता यह है कि बैंक के कर्मचारी उस गांव मे पहुंचते है, जिसके सदस्यो पर ऋण होता है। बैंक के मैनेजर अथवा प्रबंधक ( सुपरवायजर ) मालिक की भाति बैठते है और सदस्य हाथ बाध कर दूर खड़ा रहता है जो समय पर रुपया अदा नहीं कर पाते उन पर फटकार पड़ती है, गाली दी जाती है, और कभी कभी पिटवाया भी जाता है। इससे दो बड़ी हानियां होती है, एक तो सदस्य की दृष्टि मे समिति का मूल्य नही रहता, वह महाजन

की तरह ही बैंक के कर्मचारी को ऋण-दाता समझता है। दूसरे जो किसान यह सब देखते हैं वह यह समझते है कि समिति से तो महाजन ही अच्छा है क्योकि वह सबो के सामने अपमानित तो नहीं करता। यही कारण है कि सहकारिता आन्दोलन अभी तक जनता को आकर्पित नहीं कर सका। संयुक्त प्रान्त के आन्दोलन की जांच करने के लिये जो ओकडन कमेटी बिठलाई गई, उसने एक स्थान पर रिपोर्ट मे लिखा है कि अन्दोलन स्वयं फैल नहीं रहा है। सोचने की बात है यह है कि यदि आन्दोलन को ग्रामीण जनता लाभदायक समझती तो आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ता। किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है, इससे यह अनुमान सहज मे ही हो सकता है कि आन्दोलन के संचालन मे कही न कही दोप अवश्य है। पंजाब, बम्बई, तथा मदरास को छोड़ कर अन्य प्रान्तो मे तो सहकारी साख समितियो ने महाजन का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया है। महाजन की स्थिति गांवो मे उतनी ही मजबूत है जैसी कि पहिले थी, वह सहकारी साख समितियो मे भयभीत नही हुआ है। इन सब बातो से यह स्पष्ट हो जाता है कि आन्दोलन मे जीवन शक्ति की कमी है।

भारतीय सहकारिता आन्दोलन की एक कमी यह भी है कि आन्दोलन साख समितियो तक ही सीमित रहा। गैर साख समितियां संख्या मे बहुत कम है। बात यह थी कि ग्रामीण ऋण की इतनी भयंकर समस्या सामने उपस्थित थी कि आरम्भ से केवल साख समितिया ही स्थापित करने का प्रयत्न किया गया

और आज भी कार्यकर्त्ताओ का ध्यान साख समितियो की ओर ही अधिक है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश मे साख समितियां अत्यन्त आवश्यक है, उनके महत्व को कोई अस्वीकार नही कर सकता किन्तु ग़ैर साख समितियो की भी उतनी ही आवश्यकता है। गांव का महाजन किसान को केवल ऋण ही नही देता, वह गांव का दूकानदार भी होता है, अर्थात् किसान को आवश्यक वस्तुएं वेचता है और उसके खेतो की पैदावार ख़रीदता है। जब तक कि सहकारी समितियां क्रय-विक्रय को भी अपने हाथ मे लेकर महाजन को उसके स्थान से हटा नही देती, तब तक महाजन का बल नष्ट नही होगा और न किसान की आर्थिक दशा ही सुधर सकती है। यही नही, और भी दिशाओ मे सहकारिता आन्दोलन को किसानो की सहायता करनी है। साथ ही साथ गृह-उद्योग धन्धो मे लगे हुए कारीगरो के लिये उत्पादक समितियो की भी नितान्त आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि कुछ दिनो से सहकारिता विभाग तथा अन्य कार्यकर्त्ता गैर-साख-समितियो की आवश्यकता का अनुभव करने लगे है और इस ओर प्रयत्न भी किया जा रहा है।

एक दोष जो कि इस आन्दोलन मे घुस आया है, वह है कागजी लेन देन — जब समिति के सदस्य रुपया अदा नही करते तो समिति बैंक से उतना ही ऋण ले लेते है जितनी किश्त उन्हे चुकानी होती है। बैंक के बही खाते मे पिछली किश्त चुकता दिखा दी जाती है, और उतना ही रुपया नये ऋण के रूप मे

दिखला दिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि रुपया वसूल नहीं होता, केवल लिखा-पढ़ी करली जाती है और अधिकारियो को धोखा दिया जाता है।

कही कही पंचायतदार बेईमानी करते हैं, कही कही महाजन ही समिति को हथियाने का प्रयत्न करता है, किन्तु भाग्यवश अब यह दोष कम दृष्टिगोचर हो रहे है।

ऊपर लिखी हुई समालोचना से पाठकगण यह न समझ ले कि आन्दोलन से देश को कोई लाभ ही नही हुआ है। यह तो मानना ही होगा कि आन्दोलन अभी निर्बल है, दोष-पूर्ण संगठन तथा कार्यकर्त्ताओ की अकर्मण्यता के कारण यह अभी तक सबल नही हो सका है। फिर भी आन्दोलन से देश को बहुत लाभ हुआ है। साख समितियो के विषय मे लिखते हुए हमने इस विषय मे शाही कृषि कमीशन की सम्मति लिखी थी। कृषि कमीशन की सम्मति मे "सहकारिता आन्दोलन के विषय मे जानकारी बढ़ रही है, मितव्ययिता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बैंकिग के सिद्धान्तो की शिक्षा दी जा रही है, जहां आन्दोलन की नींव दृढ़ है वहां महाजन ने सूद की दर घटा दी है, तथा महाजन का प्रभुत्व कम हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसानो की मनोवृत्तियां बदल रही है।" कृषि कमीशन की तो यह राय है कि किसानो का उद्धार सहकारिता आन्दोलन की सफलता पर ही निर्भर है, यदि यह आन्दोलन असफल हुआ तो भारतीय किसान वर्ग के सुधार की सारी आशायें नष्ट हो जावेगी।

आन्दोलन के दोषो की ओर संकेत करते हुए कृषि कमीशन ने कहा है कि आन्दोलन की आर्थिक दशा संतोषजनक है; हां, उसके सचालन मे बहुत से दोष है।

अभी तक सहकारिता आन्दोलन का प्रचार बहुत कम हो पाया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सहकारी साख समितिया, ग्रामीण जनता को जितने ऋण की आवश्यकता होती है, उसका केवल पांच फी सदी ऋण देती है। सहकारी साख समितियो के सदस्यो की एक शिकायत यह रही है कि जब उनको रुपये की आवश्यकता होती है तब उन्हे रुपया नही मिलता, लिखा-पढ़ी तथा जाच मे बहुत समय लग जाता है। किसान को समय पर रुपया मिलना चाहिये — रुपया समय पर न मिलने पर उसे बहुत कठिनाई होती है इस कारण विवश होकर उसे महाजन से रुपया लेना पड़ता है।

**अन्तिम शब्द**—भारतवर्ष मे लगभग ७ लाख गांव है, अधिकांश ( ६० प्रतिशत ) जन संख्या गांवो मे निवास करती है। आज हमारे गावो की दशा अत्यन्त पतित है और उनमे रहने वाली जनता के अधिकांश भाग का जीवन निर्धनता, अज्ञान तथा गदगी से भरा हुआ है, उसका शोषण अत्यन्त निर्दयता से हो रहा है। ऐसी दशा मे ग्रामीण जनता जीवित है, यही क्या कम आश्चर्य की बात है। आयरिश किसानो के उद्धारकर्त्ता, आयरलैड मे सहकारिता आन्दोलन के जन्मदाता, सर होरेस-प्लैकट के शब्दो मे किसान के उद्धार के लिये तीन वस्तुओ की आवश्यकता

है, अच्छी खेती ( Better farming ), अच्छा जीवन (Better living) तथा अच्छा व्यापार (Better business)। भारतीय ग्रामीण को इनकी अत्यन्त आवश्यकता है।

हर्ष का विषय है कि कुछ दिनो से शिक्षित भारतीयो का ध्यान ग्राम्य जीवन को सुधारने की ओर गया है। किन्तु यह सर्वमान्य बात है कि ग्राम संगठन का कार्य बिना सहकारिता के हो ही नही सकता। यदि हम चाहते है कि हमारे ग्रामीण भाइयों की दशा सुधरे तो हमे सहकारिता आन्दोलन मे लग जाना चाहिये। जो चमत्कार कि सहकारिता आन्दोलन ने आयरलैंड, जर्मनी और इटली मे कर दिखलाया वह भारतवर्ष मे भी हो सकता है। किन्तु अभी तक हमारे शिक्षित वर्ग ने इस ओर ध्यान ही नही दिया। यदि हमारा शिक्षित वर्ग विशेपकर नवयुवक समुदाय इस ओर लग जावे तो थोड़े समय मे आन्दोलन गांवो की कायापलट करदे। जिस सहकारिता आन्दोलन मे राष्ट्र निर्माण की इतनी शक्ति है उस आन्दोलन की ओर से कोई भी देश-भक्त उदासीन किस प्रकार रह सकता है ? जिस दिन हम भारतवासी सहकारिता आन्दोलन के मर्म को समझ लेगे और आन्दोलन का प्रचार गांव गांव मे कर सकेगे, उस दिन भारतीय ग्राम जीवन सुखमय हो जावेगा।

---

# शब्दावली

| | |
|---|---|
| अन्तर्राष्ट्रीय | International |
| अपरिमित दायित्व | Unlimited liability |
| आडिट यूनियन | आय व्यय निरीक्षण करने वाली यूनियन |
| आय व्यय निरीक्षण | Auditing |
| आर्थिक | Economic |
| उत्पत्ति | Production |
| उत्पादक | Productive |
| उत्पादक सहकारी समितियां | Producers' Co-operative Societies |
| उपभोक्ता | Consumer |
| उपभोक्ता स्टोर्स | Consumers' Stores |
| उपभोग | Consumption |
| एकाधिपत्य ( एकाधिकार ) | Monopoly |
| औद्योगिक संगठन | Industrial organisation |
| क्रय-विक्रय समितियां | Purchase and Sale Societies |
| कार्यशील पूँजी | Working capital |
| गैर-साख-समितियां | Non-Credit-Societies |
| गृह-उद्योग-धन्धे | Cottage-industries |

| | |
|---|---|
| गृह-निर्माण समितियां | House-building Societies |
| घन | Cubic |
| घन फुट | Cubic foot |
| चल जायदाद | Moveable property |
| चल पूँजी | Fluid Resources |
| चल सम्पत्ति | Moveable Property |
| चालू जमा | Current deposit |
| ज़मानत | Security |
| ट्रेड यूनियन | मज़दूर सभा |
| दायित्व | Liability |
| देनी | Liabilities |
| द्रव्य बाजार | Money market |
| धन वितरण | Distribution of wealth |
| नक़द साख | Cash-credit |
| निरीक्षण कौंसिल | Supervising Council |
| परिमित दायित्व | Limited Liability |
| पूँजीपति | Capitalist |
| प्रतिद्वंद्विता / प्रतिस्पर्धा | Competition |
| प्रबन्धकारिणी समिति | Managing Committee |
| प्रारम्भिक सहकारी समिति | Primary co-operative Society |

| | |
|---|---|
| बट्टा खाता | Bad debt |
| बन्धक बांड | Mortgage bond |
| भूमि बन्धक बैंक | Land Mortgage Banks |
| मितव्ययिता | Thrift |
| मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी | Joint Stock Company |
| मिश्रित पूँजी वाले बैंक | Joint Stock Banks |
| मुद्दती जमा | Fixed deposit |
| रहन सहन सुधार समितिया | Better-living Societies |
| रक्षित कोष | Reserve Fund |
| लगान क़ानून | Tenancy Act |
| लायसैंस | अनुमति |
| लेनी | Assets |
| लेनी देनी का लेखा | Balance Sheet |
| विनिमय | Exchange |
| विनिमय व्यापार | Exchange business |
| व्यापारिक | Commercial |
| शक्तातिजीवन | Survival of the fittest |
| श्रमजीवी | Labourer |
| श्रम विभाग | Division of labour |
| श्रम समितियां | Labour Societies |
| सहकारिता | Co-operation |
| सहकारिता आन्दोलन | Co-operative movemen |

| | |
|---|---|
| सहकारिता के सिद्धान्त | Principles of Co-operation |
| सहकारितावादी | Co-operators |
| सहकारी कृषि समितियां | Co-operative farming Societies |
| सहकारी श्रमजीवी समितियां | Co-operative labour Societies |
| साख | Credit |
| साधारण सभा | General meeting |
| साधारण साख | Normal credit |
| साम्यवाद | Socialism |
| सुरक्षित कोष | Reserve Fund |
| संघ | Federation |
| संतुलन | Balancing |
| संतुलन केन्द्र | Balancing centre |
| स्थिर सम्पत्ति | Immoveable property |